हिन्दी लावनी-साहित्य
पर
हिन्दी संत-साहित्य का प्रभाव

(मैसूर विश्वविद्यालय से पी एच् डी उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

लेखक

डा० पुण्यमचन्द 'मानव

एम० ए० पी एच० डी०

मानव कार्यालय, बाग कोठी, भिवानी (हरियाणा)

प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक सदन

मोती कटरा, आगरा–३

○ प्रकाशक
प्रतापचन्द जैसवाल

○ कार्यालय :
सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा—३

○ प्रथम संस्करण
एक हजार प्रतियाँ

○ सम्वत् २०२६

○ सन् १९७२

○ मूल्य पच्चीस रुपये

○ मुद्रक
पाराशर प्रिंटिंग प्रेस, धूलियागंज आगरा–३

❋ समर्पण ❋

स्व० पूज्या माताजी

महादेवी—सुखदेवी जी

को,

जिनके प्रति मेरी शैशवकालीन स्मृतियाँ

आज भी पूर्ववत् आभारी हैं,

अत्यन्त विनम्र श्रद्धा-सहित

समर्पित

—पुण्यमचन्द 'मानव'

संक्षेप और संकेत

अ० द० हि० क०—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि
हि० सा० इ०—हिन्दी साहित्य का इतिहास
हि० सा० आ० इ०—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
प्रे० त० ला० स०—प्रेम तरंग लावनी सख्या
ह० लि० ला० ग्र०—हस्त लिखित लावनी ग्रन्थ
रा० हि० र०—रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ
हि० का० नि० स०—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय
उ० भा० स० प०—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा
म० का० ध० सा०—मध्यकालीन धर्म साधना
म० व० ला० प्रे०—मध्यम् वर्गीय लावनी प्रेमी

म०—महाराज— (इस रंगत की लावनियों में ही प्राय यह संकेत दिया गया है)

मि०—मिलान (किसी भी लावनी के किसी भी चौक की अन्तिम पंक्ति, जिसका तुकान्त टेक के तुकान्त से मिलता हो)

हि० सा० को०—हिन्दी साहित्य कोश
लो० सा० वि०—लोक साहित्य विज्ञान
गु० स० तु०—गुलजार सखुन तुर्रा
ह० लि० ला०—हस्तलिखित लावनी
श्री० म० भ० गी०—श्रीमद्भगवद् गीता
रा० च० मा०—रामचरित मानस
वि० वि०—विचार विमर्श
ना० भ० स०—नारद भक्ति सूत्र
क० च० बो०—कबीर चरित बोध
ना० स० सा०—नाथ और सन्त साहित्य
गो० सि स०—गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह
ऋ० स०—ऋग्वेद संहिता
द्वि० स०—द्वितीय संस्करण
जा० ग्र०—जायसी ग्रन्थावली
सा० ला० प्रे०—साधारण लावनी प्रेमी
मा०—मास्टर
क० व०—कबीर वचनावलि
भ० मा०—भक्तमाल
ह० लि०—हस्तलिखित
क० कौ०—कविता कौमुदी
पृ०—पृष्ठ
का० रू०—काव्य के रूप
ला० द०—लावनी का दंगल
स० का०—सन्त काव्य
क० ग्र०—कबीर ग्रन्थावली
दो०—दोहा
सो०—सोरठा
छ० स०—छन्द-सख्या
स० क०—सन्त कबीर
स० वा०—सन्त वाणी
य० स०—यजुर्वेद संहिता
प०—पण्डित

विषय-क्रम

पृष्ठ सख्या

दूसरा परिच्छेद—हिन्दी लावनी साहित्य मे रगतें, रस और अलकार विधान

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाचवा अध्याय

छठा अध्याय

पृष्ठ-संख्या

तीसरा परिच्छेद—लावनी और लावनीकारों का विवेचनात्मक अध्ययन

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पांचवा अध्याय

छठा अध्याय

चौथा परिच्छेद—हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी

(प्रथम खंड) संत साहित्य का प्रभाव

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

पृष्ठ संख्या

दूसरा परिच्छेद—हिन्दी लावनी साहित्य मे रगतें, रस और अलकार विधान

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाचवा अध्याय

छठा अध्याय

पृष्ठ संख्या

तीसरा परिच्छेद—लावनी और लावनीकारों का विवेचनात्मक अध्ययन

चौथा परिच्छेद—हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी (प्रथम खंड) संत साहित्य का प्रभाव

(द्वितीय खड)

हिन्दी लावनी साहित्य पर अन्य हिन्दी भक्त कवियों का प्रभाव

दो शब्द

डा० पुष्पम चन्द 'मानव' ने जब मुझसे अपने शोध प्रबन्ध—हिन्दी लावनी साहित्य पर सन्त साहित्य का प्रभाव पर दो शब्द लिखने के लिए कहा तो मुझे थोडा सकोच हुआ था। कुछ इसलिए कि साहित्य का पाठक होने के बावजूद, मैं अपने को, ऐसे विशिष्ट विषय पर लिखे गये शोध प्रबन्ध के बारे मे कुछ कहने का अधिकारी नही समझता, फिर व्यस्तता, चाहने पर भी, ऐसे काम के लिए समय देगी इसमे मुझे सन्देह था। लेकिन श्री मानव सानुरोध अपना शोध प्रबन्ध रख गये तो एक दिन मैंने इसे यू ही उठा कर पढना शुरु किया। मुझे इसमे ऐसा रस मिला कि मैं बराबर इसे पढता चला गया।

सबसे पहले मैं उस अपार श्रम के लिए लेखक की सराहना करूँगा, जो उन्होंने इस ग्रन्थ की विपुल सामग्री जुटाने के लिए ही प्रकट किया है। चूकि लोक साहित्य के इस अग पर कोई ग्रन्थ पहले से सकलित नही है और न ही इस विषय पर पहले शोध हुआ है इसलिए लेखक को न केवल अपने प्रदेश के कस्बे-कस्बे और गाँव-गाँव घूम कर, हर तरह की लावनिया इकटठी करनी पडी है वरन् बुजुर्ग लावनीबाजो से सम्पर्क स्थापित कर उनकी मदद से उसने लावनी साहित्य के इतिहास की एक सुनिश्चित रूपरेखा भी खोजी है जो सीधी सस्कृत साहित्य तक चली गयी है। इस सदर्भ मे विद्वान लेखक ने सन्त कबीर गोसाइं तुलसीदास सूरदास तथा अन्य सन्त कवियो की लावनिया का उल्लेख करने के साथ साथ खडीबोली के जनक-बाबू हरिश्चन्द्र और उनके समकालीनों की सरस लावनियाँ भी दी हैं।

फिर उस सूझ-बूझ के लिए भी मैं लेखक की प्रशसा करूँगा, जिससे काम लेकर उन्होंने इस विपुल सामग्री को सुचारु रूप से विभाजित किया है और उसे वर्ग और श्रेणी बद्ध करके, विभिन्न लावनिया के आकार प्रकार का विशद उल्लेख करते हुए बडी सूक्ष्मता से उन्हे व्याख्यायित किया है।

किसी देश प्रदेश की सस्कृति को जानने के लिए इतिहास उतना साथ नही देता जितना लोक साहित्य और लोक-कला। लावनियाँ देश के विभिन्न प्रदेशो मे गायी जाती हैं। लेखक ने गुजराती, पजाबी, मराठी राजस्थानी, उर्दू और कन्नड भाषाओ की लावनियो के नमूने भी प्रस्तुत किये हैं और जैसा कि उन्होंने प्रदर्शित किया है लावनी हमारे शास्त्रीय सगीत की एक रागिनी होने के कारण गुरु हरिदास और उनके पटट

शिष्य तानसैन के समय से प्रमुख सगीतनो द्वारा गायी जाती रही है और यूं समूचे देश के लोक-काव्य का एक अभिन्न अग बन गयी है और इसके द्वारा देश के सास्कृतिक इतिहास के अजाने पन्ने अनायास आँखो के सामने खुल जाते हैं। लेकिन देश की समस्त भाषाओ के लावनी-साहित्य अथवा विशाल हिन्दी प्रदेश के समूचे लावनी साहित्य की खोजबीन करना किसी एक शोधकर्ता के बस की बात नही, इसलिए प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता ने, उचित ही, अपने जन्म प्रदेश हरियाणा और उसके साथ लगने वाले उत्तर प्रदेश के कुछ भूखण्डो की प्रचलित लावनियो को ही अपने शोध का विषय बनाया है।

ग्रन्थ के रचयिता स्वय सहृदय कवि हैं और उनके ग्रन्थ को पढते हुए लगता है कि कभी युवावस्था मे वे स्वय भी लावनीबाज रहे हैं। क्योकि बिना प्रत्यक्ष ज्ञान और व्यक्तिगत अनुभूति के, महज शोध के बल पर, लावनीबाजो उनकी सभाओ, अखाडों और दगलो का इतना तथ्यपरक और मनोरजक चित्रण नही किया जा सकता। डा० मानव ने लोक-काव्य की इस विधा का सगोपाग वर्णन ही नहीं किया, इसके प्रत्येक अग का इसके आकार प्रकार छन्द और लय आदि का, इसे गाते हुए इसके साथ बजाये जाने वाले वाद्य-यन्त्रो का इसके द्वारा छुए जाने वाले सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, वैधानिक और आध्यात्मिक विषयो का भी विशद वर्णन किया है। यही नही उन्होने चित्र-लावनियो को समझाते हुए उनके नक्शे भी दिये हैं और इतनी विपुल सामग्री इकटठी करके, उसका वर्गीकरण और व्याख्या करते हुए, अपने प्रमुख विषय हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सत साहित्य के प्रभाव का भी ऐसी खूबी गहराई और विशदता के साथ निरूपण किया है कि न केवल उससे लोक साहित्य के पाठको का ज्ञान बढता है, वरन् उनका पर्याप्त मनोरजन भी होता है।

इतनी सरस सामग्री इतने श्रम से एक जगह सकलित करके अपने विषय का सफलतापूर्वक प्रतिपादन करने के लिए मैं डा० मानव को हार्दिक बधाई देता हू और आशा करता हू कि प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी के शोध-साहित्य मे अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान ही नही बनायेगा अपितु विद्वान आलोचको से वह प्रशसा भी प्राप्त करेगा, जिसका यह निश्चय ही अधिकारी है।

२९ जून १९७१

धर्मवीर
(राज्यपाल, मैसूर राज्य)

हिन्दी लावनी-साहित्य पर हिन्दी सन्त-साहित्य का प्रभाव

प्राक्कथन

इस शोध प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है "हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव" जिसके चुनाव तथा अध्ययन के उद्देश्य पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रसिद्ध 'धर्मनीति का शब्द कोष' (Encyclopaedia of Religion and Ethics) के सम्पादक जेम्स हैस्टिंग्स महोदय के प्रति सारा विश्व चिर कृतज्ञ है कि उन्होंने पहली बार यह लिखकर कि "इतिहास यदि किसी राष्ट्र के जीवन का लिपिबद्ध प्रमाण है तो लोक साहित्य उस राष्ट्र के प्रागैतिहासिक जीवन का परिचायक है।" लोक साहित्य (Flok literature) के अध्ययन की महत्ता तथा आवश्यकता की ओर साहित्य के अध्येताओं का ध्यान आकृष्ट किया। उसके उपरान्त विश्व के सभी प्रगतिशील राष्ट्रों में लोक साहित्य के सरक्षण, सम्पादन, अनुसधान एव प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ हुआ।

आधुनिक युग में, जबकि जगत के छोटे बड़े सभी राष्ट्रों में, किसी न किसी रूप में, साम्यवाद के सिद्धान्तों तथा लोकतन्त्रात्मक राज्य शासन व्यवस्था के तत्त्वों को सर्वाधिक मान्यता दी जा रही है, लोक साहित्य को वही स्थान और महत्व दिया जा रहा है जो परम्परागत काव्य शास्त्रबद्ध विशुद्ध साहित्य को दिया जाता है। विगत चार पाँच दशाब्दियों में भारत की विभिन्न भाषाओं में पाये जाने वाले लोक साहित्य के अध्ययन का अनेक विद्वानों तथा संस्थाओं के द्वारा स्तुत्य कार्य हुआ है। भारत की शायद ही कोई ऐसी भाषा है जिसमें किसी न किसी रूप में लोक साहित्य उपलब्ध नहीं होता हो। 'लावनी-साहित्य' भारत के लोक साहित्य की एक अत्यन्त समृद्ध तथा लोकप्रिय विधा है जो न्यूनाधिक मात्रा में सभी भाषाओं में प्राप्त है।

'हिन्दी' भारत के विशाल भू भाग में बोली जाने वाली एक ऐसी भाषा है जिसकी अनेक प्रादेशिक बोलियाँ भी समृद्ध हैं। यद्यपि हिन्दी के लोक साहित्य पर अनेक विद्वानों ने अनुसन्धान का कार्य किया है तो भी यह कहना पड़ता है कि 'लावनी साहित्य' पर जो भी अध्ययन हुआ है वह अधूरा ही है। प्रस्तुत शोध का यही उद्देश्य है कि लावनी साहित्य के उस अंश का उद्घाटन किया जाये जो अब तक अछूता पड़ा

शिष्य तानसैन के समय से प्रमुख सगीतज्ञो द्वारा गायी जाती रही है और यूँ समूचे देश के लोक काव्य का एक अभिन्न अग बन गयी है और इसके द्वारा देश के सास्कृतिक इतिहास के अजाने पन्ने अनायास आँखो के सामने खुल जाते हैं। लेकिन देश की समस्त भाषाओ के लावनी-साहित्य अथवा विशाल हिन्दी प्रदेश के समूचे लावनी साहित्य की खोजबीन करना किसी एक शोधकर्ता के बस की बात नही इसलिए प्रस्तुत ग्रथ के रचयिता ने, उचित ही, अपने जन्म प्रदेश हरियाणा और उसके साथ लगने वाले उत्तर प्रदेश के कुछ भूखण्डो की प्रचलित लावनियो को ही अपने शोध का विषय बनाया है।

ग्रथ के रचयिता स्वय सहृदय कवि है और उनके ग्रथ को पढते हुए लगता है कि कभी युवावस्था मे वे स्वय भी लावनीबाज रहे हैं। क्योकि बिना प्रत्यक्ष ज्ञान और व्यक्तिगत अनुभूति के, महज शोध के बल पर, लावनीबाजो, उनकी सभाओ, अखाडों और दगलो का इतना तथ्यपरक और मनोरजक चित्रण नही किया जा सकता। डा० मानव ने लोक-काव्य की इस विधा का सगोपाग वणन ही नही किया, इसके प्रत्येक अग का, इसके आकार प्रकार छद और लय आदि का, इसे गाते हुए इसके साथ बजाये जाने वाले वाद्य-यन्त्रो का इसके द्वारा छुए जाने वाले सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक, वधानिक और आध्यात्मिक विषयो का भी विशद वणन किया है। यही नही उन्होने चित्र लावनियो को समझाते हुए उनके नक्शे भी दिये हैं और इतनी विपुल सामग्री इकटठी करके, उसका वर्गीकरण और व्याख्या करते हुए, अपने प्रमुख विषय हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सत साहित्य के प्रभाव का भी ऐसी खूबी, गहराई और विशदता के साथ निरूपण किया है कि न केवल उससे लोक साहित्य के पाठको का ज्ञान बढता है वरन् उनका पर्याप्त मनोरजन भी होता है।

इतनी सरस सामग्री इतने श्रम से एक जगह सकलित करके अपने विषय का सफलतापूवक प्रतिपादन करने के लिए मैं डा० मानव को हार्दिक बधाई देता हू और आशा करता हू कि प्रस्तुत ग्रथ हिन्दी के शोध-साहित्य मे अपना एक महत्त्वपूण स्थान ही नही बनायेगा अपितु विद्वान आलोचको से वह प्रशसा भी प्राप्त करेगा जिसका यह निश्चय ही अधिकारी है।

२६ जून १६७१

धमवीर
(राज्यपाल, मैसूर राज्य)

हिन्दी लावनी-साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव

प्राक्कथन

इस शोध प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है "हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव" जिसके चुनाव तथा अध्ययन के उद्देश्य पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रसिद्ध 'धर्मनीति का शब्द कोष' (Encyclopaedia of Religion and Ethics) के सम्पादक जेम्स हैस्टिंग्स महोदय के प्रति सारा विश्व चिर कृतज्ञ है कि उन्होंने पहली बार यह लिखकर कि "इतिहास यदि किसी राष्ट्र के जीवन का लिपिबद्ध प्रमाण है तो लोक साहित्य उस राष्ट्र के प्रागैतिहासिक जीवन का परिचायक है।" लोक साहित्य (Flok literature) के अध्ययन की महत्ता तथा आवश्यकता की ओर साहित्य के अध्येताओं का ध्यान आकृष्ट किया। उसके उपरान्त विश्व के सभी प्रगतिशील राष्ट्रों में लोक-साहित्य के सरक्षण, सम्पादन, अनुसधान एव प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ हुआ।

आधुनिक युग मे, जबकि जगत के छोटे बडे सभी राष्ट्रों में, किसी न किसी रूप में, साम्यवाद के सिद्धान्तों तथा लोकतन्त्रात्मक राज्य शासन-व्यवस्था के तत्त्वो को सर्वाधिक मान्यता दी जा रही है, लोक साहित्य को वही स्थान और महत्त्व दिया जा रहा है, जो परम्परागत काव्य शास्त्रबद्ध विशुद्ध साहित्य को दिया जाता है। विगत चार पाँच दशाब्दियो में भारत की विभिन्न भाषाओं में पाये जाने वाले लोक साहित्य के अध्ययन का अनेक विद्वानो तथा सस्थाओ के द्वारा स्तुत्य कार्य हुआ है। भारत की शायद ही कोई ऐसी भाषा है जिसमे किसी न किसी रूप मे लोक साहित्य उपलब्ध नहीं होता हो। 'लावनी-साहित्य' भारत के लोक साहित्य की एक अत्यन्त समृद्ध तथा लोकप्रिय विधा है जो न्यूनाधिक मात्रा में सभी भाषाओं मे प्राप्त है।

'हिन्दी' भारत के विशाल भू भाग में बोली जाने वाली एक ऐसी भाषा है जिसकी अनेक प्रादेशिक बोलियाँ भी समृद्ध हैं। यद्यपि हिन्दी के लोक साहित्य पर अनेक विद्वानों ने अनुसन्धान का कार्य किया है तो भी यह कहना पडता है कि 'लावनी साहित्य पर जो भी अध्ययन हुआ है वह अधूरा ही है। प्रस्तुत शोध का यही उद्देश्य है कि लावनी साहित्य के उस अश का उद्घाटन किया जाये जो अब तक अछूता पडा

शिष्य तानसन के समय से प्रमुख सगीतज्ञो द्वारा गायी जाती रही है और यूँ समूचे देश के लोक-काव्य का एक अभिन्न अग बन गयी है और इसके द्वारा देश के सांस्कृतिक इतिहास के अजाने पन्ने अनायास आँखो के सामने खुल जाते हैं। लेकिन देश की समस्त भाषाओ के लावनी-साहित्य अथवा विशाल हिन्दी प्रदेश के समूचे लावनी साहित्य की खोजबीन करना किसी एक शोधकर्ता के बस की बात नही, इसलिए प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता ने, उचित ही अपने जन्म प्रदेश हरियाणा और उसके साथ लगने वाले उत्तर प्रदेश के कुछ भूखण्डो की प्रचलित लावनियो को ही अपने शोध का विषय बनाया है।

ग्रन्थ के रचयिता स्वय सहृदय कवि हैं और उनके ग्रन्थ को पढ़ते हुए लगता है कि कभी युवावस्था म वे स्वय भी लावनीबाज रहे हैं। क्योकि बिना प्रत्यक्ष ज्ञान और व्यक्तिगत अनुभूति के, महज शोध के बल पर, लावनीबाजो, उनकी सभाओ, अखाड़ों और दगलो का इतना तथ्यपरक और मनोरजक चित्रण नही किया जा सकता। डा० मानव ने लोक-काव्य की इस विधा का सगोपाग वर्णन ही नहीं किया, इसके प्रत्येक अग का, इसके आकार प्रकार छद और लय आदि का, इसे गाते हुए इसके साथ बजाये जाने वाले वाद्य-यन्त्रो का, इसके द्वारा छुए जाने वाले सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, वैधानिक और आध्यात्मिक विषयो का भी विशद वर्णन किया है। यही नही उन्होने चित्र लावनियो को समझाते हुए उनके नक्शे भी दिये हैं और इतनी विपुल सामग्री इकट्ठी करके, उसका वर्गीकरण और व्याख्या करते हुए, अपने प्रमुख विषय हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सत साहित्य के प्रभाव का भी ऐसी खूबी, गहराई और विशदता के साथ निरूपण किया है कि न केवल उससे लोक साहित्य के पाठको का ज्ञान बढता है वरन् उनका पर्याप्त मनोरजन भी होता है।

इतनी सरस सामग्री इतने श्रम से एक जगह सकलित करके अपने विषय का सफलतापूर्वक प्रतिपादन करने के लिए मैं डा० मानव को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हू कि प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी के शोध-साहित्य मे अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान ही नही बनायेगा अपितु विद्वान आलोचको से वह प्रशसा भी प्राप्त करेगा, जिसका यह निश्चय ही अधिकारी है।

२६ जून १६७१

धर्मवीर
(राज्यपाल, मसूर राज्य)

हिन्दी लावनी-साहित्य पर हिन्दी सन्त-साहित्य का प्रभाव

प्राक्कथन

इस शोध प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है "हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव" जिसके चुनाव तथा अध्ययन के उद्देश्य पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रसिद्ध 'धर्मनीति का शब्द कोष' (Encyclopaedia of Religion and Ethics) के सम्पादक जेम्स हैस्टिंग्स महोदय के प्रति सारा विश्व चिर कृतज्ञ है कि उन्होंने पहली बार यह लिखकर कि "इतिहास यदि किसी राष्ट्र के जीवन का लिपिबद्ध प्रमाण है तो लोक-साहित्य उस राष्ट्र के प्रागतिहासिक जीवन का परिचायक है।" लोक साहित्य (Flok literature) के अध्ययन की महत्ता तथा आवश्यकता की ओर साहित्य के अध्येताओं का ध्यान आकृष्ट किया। उसके उपरान्त विश्व के सभी प्रगतिशील राष्ट्रों म लोक-साहित्य के सरक्षण, सम्पादन, अनुसधान एव प्रकाशन का काय प्रारम्भ हुआ।

आधुनिक युग मे, जबकि जगत के छोटे बडे सभी राष्ट्रा म, किसी न किसी रूप म, साम्यवाद के सिद्धान्तो तथा लोकतन्त्रात्मक राज्य शासन-व्यवस्था के तत्त्वो को सर्वाधिक मान्यता दी जा रही है, लोक साहित्य को वही स्थान और महत्त्व दिया जा रहा है, जो परम्परागत काव्य शास्त्रबद्ध विशुद्ध साहित्य को दिया जाता है। विगत चार-पाँच दशाब्दियो म भारत की विभिन्न भाषाओ मे पाय जाने वाले लोक साहित्य के अध्ययन का अनेक विद्वानो तथा सस्थाओ के द्वारा स्तुत्य काय हुआ है। भारत की शायद ही कोई ऐसी भाषा है जिसमे किसी न किसी रूप म लोक साहित्य उपलब्ध नही होता हो। 'लावनी-साहित्य' भारत के लोक साहित्य की एक अत्यन्त समृद्ध तथा लोकप्रिय विधा है जो न्यूनाधिक मात्रा मे सभी भाषाओं मे प्राप्त है।

'हिन्दी' भारत के विशाल भू भाग मे बोली जाने वाली एक ऐसी भाषा है जिसकी अनेक प्रान्तिक बोलियाँ भी समृद्ध हैं। यद्यपि हिन्दी के लोक साहित्य पर अनेक विद्वानों ने अनुसन्धान का काय किया है तो भी यह कहना पड़ता है कि 'लावनी साहित्य' पर जो भी अध्ययन हुआ है वह अधूरा ही है। प्रस्तुत शोध का यही उद्देश्य है कि लावनी साहित्य के उस अश का उद्घाटन किया जाये जो अब तक अछूता पड़ा

है, जिससे इस क्षेत्र के भावी अध्ययन का पथ प्रशस्त हो सके। अतः यह कहा जा सकता है कि यह विषय मौलिक ही नही वरन् हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि म भी इसकी देन महत्त्वपूर्ण है।

जसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है हिन्दी भाषा का क्षेत्र अति विशाल है और उसमे विपुल मात्रा मे लावनी साहित्य रचा गया है। इस 'शोध प्रबन्ध' म समस्त सामग्री का सँजोया जाना सम्भव न जानकर उतने ही लावनी-साहित्य को इस अध्ययन का आधार बनाया गया है, जितना सीमित भू भाग मे सगृहीत किया जा सका है। शोध प्रबन्ध को अत्यधिक उपयोगी तथा ठोस बनाने की दृष्टि से भी हिन्दी लावनी-साहित्य के क्षेत्र का सीमा निर्धारण आवश्यक समझा गया, यही कारण है कि हरयाणा प्रदेश के नगरो म अम्बाला, नारनौल, दादरी और भिवानी तथा उनके निकटवर्ती क्षेत्र, साथ ही उत्तर प्रदेश के आगरा नगर म उपलब्ध लावनी-साहित्य का इस शोध प्रबन्ध मे उपयोग किया गया है।

इस प्रबन्ध को चार परिच्छेदो म विभक्त किया गया है और विषय के स्पष्टीकरण की सुविधा की दृष्टि से इन परिच्छेदो को भी विषय क्रमानुसार छब्बीस अध्यायो मे बाटा गया है।

प्रथम परिच्छेद में हिन्दी लावनी-साहित्य का उद्भव और विकास'—विषयक चर्चा क अन्तगत इस परिच्छेद के प्रथम अध्याय मे लोक साहित्य और लावनी का सम्बन्ध स्थापन किया गया है। दूसरे अध्याय में—गीतिकाव्य, लोकगीत और लावनी विषयक चर्चा करके इनका पारस्परिक अन्तर स्पष्ट किया गया है। तीसरे अध्याय म लावनी-साहित्य के उद्भव और विकास का विवेचन करते हुए तद्विषयक अपनी कुछ विशेष मान्यताएँ स्थापित की गयी हैं। चौथे अध्याय म—लावनी के अग—'कलगी' और 'तुर्रा' आदि पर विचार किया गया है। पाँचवे अध्याय म लावनी—दगल—(सभा)—आयोजन तथा आवश्यक वाद्य आदि विषयक निरूपण किया गया है। छठे अध्याय म लावनी की अखाडेबाजी, लयात्मकता और लावनी म नाम की छाप आदि पर चर्चा की गयी है। सातवे अध्याय मे—अमीर खुसरो सन्त कबीर तुलसीदास और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके साथियो की कविताओ म लावनी के तत्त्वों का होना प्रमाणित किया गया है। आठवें तथा अन्तिम अध्याय म लावनी की प्राचीन और वतमान स्थिति, 'लावनी सकलन की प्रवृत्ति और पेशेवर लावनीबाज आदि शीर्षको के अन्तगत विचार किया गया है।

द्वितीय परिच्छेद में—हिन्दी लावनी साहित्य म—'रगतें, रस और अलकार विधान' शीर्षक से विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस परिच्छेद के प्रथम अध्याय म—लावनियो में प्राप्त ३५ प्रकार की रगतो की लक्षण-उदाहरण-सहित व्याख्या की गयी है तथा मात्राओं आदि को स्पष्ट करने की दृष्टि स लघु गुरु आदि के

चिह्न भी यथा स्थान अंकित कर दिये गये हैं। दूसरे अध्याय मे 'रस व्यञ्जना' की चर्चा करते हुये रसो के उद्धरण स्वरूप लावनियाँ या लावनी-अंश प्रस्तुत किये गये हैं। तीसरे अध्याय म—अलकारो की चर्चा के अतगत अनेक अलकारो के अतिरिक्त चित्रालकार के उद्धरण स्वरूप भी दो सम्पूर्ण चित्र लावनियाँ चित्रित की गयी हैं, साथ ही चित्रो से लावनियो का प्रत्यक्षीकरण करने की सुविधा के निमित्त ये चित्रित लावनियाँ सरल एव स्पष्ट ढग से भी लिख दी गयी है।

चौथे अध्याय में—लावनी साहित्य म उपलब्ध अनेक बन्दिशो और सनअतो की चर्चा की गयी हैं पाँचवे अध्याय म—ज्योतिष सगीत पिंगल और आख्यानात्मकता आदि विविध भावो से पूर्ण अनेक प्रकार की लावनियाँ उद्धृत की गयी हैं। छठे अध्याय म लावनीगत विशेष तुकान्त, अभिनयात्मकता सम्वादात्मकता, स्पर्धात्मकता और 'हाजिर जवाबी के प्रसग' आदि की उद्धरणो सहित व्याख्या की गयी है।

तृतीय परिच्छेद में—लावनी और लावनीकारो तथा लावनीबाजो का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचन को प्रामाणिक बनाने के निमित्त, शोध के लिए चुने गये समस्त स्थानो पर हमने स्वय जाकर वृद्ध एव ख्याति प्राप्त लावनीकारो से साक्षात्कार करके जो जानकारी प्राप्त की हैं, इसमे उसी का उपयोग किया गया है। इस परिच्छेद के प्रथम अध्याय मे लावनीकार या ख्यालकार और लावनीबाज या ख्यालबाज जसे विशेष प्रचलित शब्दो का अन्तर स्पष्ट करते हुए विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में—भिवानी की अखाडेबाजी को पाच अखाडा मे विभक्त करके उन सबके सम्पूर्ण काय कलापो पर विस्तृत प्रकाश डालते हुये भिवानी के अन्य लावनीबाजो की भी सक्षिप्त विवेचना दी गयी है। तीसरे अध्याय म दादरी और इस क्षेत्र के ख्याति प्राप्त लावनीकारो तथा चौथे अध्याय म नारनौल और इस क्षेत्र के ख्याति प्राप्त लावनीकारो एव उनकी रचनाओ का दिग्दर्शन कराया गया है।

पाँचवे अध्याय में—'अम्बाला' और इस क्षेत्र के लावनीकारो और छठे अध्याय म 'आगरा' और इस क्षेत्र के लावनीकारो एव उनकी रचनाओ पर प्रकाश डालते हुये 'आगरा घराने के अन्य लावनीबाज लावनीकार' शीर्षक पर पृथक से भी विचार किया गया है। इन समस्त अध्यायो के अतिरिक्त इस सम्पूर्ण परिच्छेद पर सक्षिप्त रूप से प्रकाश डालने की दृष्टि से अत मे निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में—प्रबन्ध के मुख्य विषय—'हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त-साहित्य का प्रभाव' पर विचार किया गया है। विषय को अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से, इस परिच्छेद को दो खडो म बाँटा गया है। सन्त-साहित्य और भक्ति-साहित्य दोनो की पृथक् पृथक् महत्ता स्वीकार करते हुये 'प्रथम-खण्ड' म

लावनी साहित्य पर सन्तो का प्रभाव विस्तृत रूप से और 'दूसरे खण्ड' में अन्य भक्तों का प्रभाव संक्षिप्त रूप से दिखाया गया है।

प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय में 'सन्त' शब्द विवेचन और 'साहित्य शब्द विवेचन प्रस्तुत किया गया है। दूसरे अध्याय में भक्ति का विकास 'निर्गुण और सगुण भक्ति' तथा इनमें पारस्परिक अन्तर और निर्गुण धारा के प्रमुख सन्त कवि कबीर और उनकी रचनाओं आदि पर विचार किया गया है। तीसरे अध्याय में— हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य का प्रभाव स्पष्ट करने के विचार से, दोनों ही साहित्यों में प्राप्त निम्नांकित प्रमुख प्रमुख अठारह विधाओं की उद्धरणों-सहित व्याख्या की गयी है– यथा–सन्तो और लावनीकारों में–परिस्थिति साम्य, गुरु महिमा, इन्द्रिय निग्रह, इडा पिंगला सुषुम्ना और शून्य योग-समाधि, उलटबाँसियाँ, आडम्बर-खण्डन, माया-चर्चा, एक सर्वव्यापक निर्गुण भगवान, जीवन का स्वरूप व्यापारिक प्रतीकात्मक आध्यात्म, भाषा और छन्द, रहस्यवाद गुरु शिष्य परम्परा और रचना संकलन, आत्म-परिचय तथा अन्य पंडितों से प्रश्नोत्तर, कुछ विशिष्ट प्रतीक, काम क्रोध आदि त्यागन, नारी बहिष्कार आदि।

द्वितीय खण्ड को भी तीन अध्यायों में विभाजित किया गया है—जिसमें क्रमशः प्रेम मार्गी, सूफी कवियों का लावनी साहित्य पर प्रभाव (मलिक मुहम्मद जायसी के सन्दर्भ में) राम मार्गी सगुण भक्त कवियों का लावनी साहित्य पर प्रभाव— (गोस्वामी तुलसीदास के सन्दर्भ में) और कृष्ण मार्गी सगुण भक्त कवियों का लावनी साहित्य पर प्रभाव—(भक्त कवि सूरदास के सन्दर्भ में) शीर्षकों के अन्तर्गत तत्सम्बन्धी अनेक विधाओं एवं सम्भावनाओं पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसी परिच्छेद के अन्त में, सम्पूर्ण प्रबन्ध के निष्कर्ष के रूप में 'उपसंहार' भी पृथक से दिया गया है।

– 'प्रबन्ध' के अन्त में परिशिष्ट के रूप में 'सहायक सामग्री सूची' तथा विशिष्ट व्यक्तियों से पत्र व्यवहार एवं उनसे व्यक्तिगत भेंटों का भी संक्षिप्त विवरण दे दिया है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि लोक साहित्य के अध्येता को अपने कार्य में पग पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसे परिव्राजक बनना पड़ता है। जिन लोगों के पास लोक साहित्य का संग्रह है उसे किसी भी मूल्य पर न देने की (या न दिखाने तक की) प्रवृत्ति उन लोगों में अभी भी पायी जाती है। इसके अतिरिक्त प्रकाशित साहित्य के अभाव के कारण शोधकर्त्ता को बार-बार निराशा का अनुभव होता है, फिर भी यह कहने में हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि अपने अध्ययन के लिए अपनी पूर्व निर्धारित सीमा के अन्दर आवश्यक परिमाण में लावनी साहित्य का संग्रह करने के कार्य में, हमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। इस दिशा में मेरे कुछ लावनीकार साथियों का सहयोग भी रहा है।

लावनी क्षेत्र से मेरा परिचय उस समय से है जिस समय मैं पाँचवीं कक्षा का छात्र था। उन्हीं दिनों से अच्छे अच्छे लावनीकारों की संगति आदि के कारण मुझे लावनी-सकलन गायन और रचना तक का भी अभ्यास रहा है। मेरे इस शैशव-कालीन लावनी प्रेम के मूल म, मेरे अपने ही ज्येष्ठ भ्राता 'श्री बजरंगलाल गुप्त' मेरे लिए सदैव प्रेरणा स्रोत रहे हैं, एतदथ मे उनके समक्ष श्रद्धान्नत हू। इस प्रकार यह 'प्रबन्ध लेखन' दो वष का ही नहीं अपितु मेरा गत २६ २७ वर्षों का चाव-पूण प्रयास है।

इस 'प्रब ध' के लिए लावनी सग्रह की दृष्टि से—श्री किशनलाल छकड़ा भिवानी (हरयाणा), श्री दीनदयाल अग्रवाल, भिवानी, श्री किशोरीलाल कैंसर, भिवानी, श्री प्रभुदयाल यादव, जबलपुर (मध्य प्रदेश) श्री हरिशरण शर्मा 'हरि', दादरी, श्री सूरजभान बगड़िया, औरंगाबाद (महाराष्ट्र), श्री खेतसीदास तुलस्यान, बम्बई और श्री ताराच द जन आगरा का मुझे विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है जिसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी हू।

मसूर सरकार के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हू, जिसके आर्थिक सहयोग के कारण इस 'प्रब ध का प्रकाशन सम्भव हो सका।

मसूर राज्य के राज्यपाल श्री धमवीर जी का अपने व्यस्त जीवन म से समय निकाल कर इस प्रब ध के लिए 'दो शब्द' लिखना ही नहीं अपितु उनकी साहित्यिक अभिरुचि भी उनके प्रति मेरी कृतज्ञता का कारण है।

मेरे अपने ही भ्रातावत श्री छाजूराम जि दल (श्री साधूराम कालीचरण, आगरा) और श्री लखीराम जि दल (श्री किरोडीमल कांशीराम, बगलौर) के प्रति आभार प्रकट करना मानो मरे प्रति उनकी आत्मीयता का मूल्याकन करना है।

श्री भगव तराव सहायक शिक्षा— निदेशक (हि दी विभाग) मसूर राज्य, बगलौर के विशेष सहयोग के लिए मैं उनके प्रति आभारी हू।

श्री सी० आर० जि दल (भूतपूव प्रमुख्याध्यापक, व य हायर सेकण्ड्री स्कूल, भिवानी) और श्री जगदीशप्रसाद गुप्त एम० ए०, बी० टी० ने अनेक लावनियों की पाण्डुलिपि उतारने म मुझे जो सहयोग दिया है वह वास्तव म मेरे प्रति उनकी विशेष सहृदयता का द्योतक है। चित्र लावनियों के चित्रों को अतीव सु दरता से चित्रित कर मेरे अपने ही शिष्य प्रिय एम० एस० पाटिल ने मुझे श्लाघनीय सहयोग दिया है।

बेंगलूर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के प्रधान पुस्तकपाल, श्री के० एस० देशपाण्डे और सहायक पुस्तकपाल श्री सी० के० पट्टणशेट्टि का सहयोग मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

यद्यपि इस 'प्रबन्ध-लेखन' के विषय मे मेरी न्शववाल से चली आ रही एव 'साघ' थी, तथापि मसूर विश्वविद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति श्री के० एल० श्रीमाली (सम्प्रति बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) द्वारा यदि मुझे अनुमति प्राप्त न होती तो मरी यह 'साघ' सम्भवत पूण न हो पाती, एतन्य म उनके प्रति कृतन हूँ।

श्री छोटू भाई देसाई का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होने विश्वविद्यालय म प्रवेश प्राप्त करन में मुझे विशेष सहयोग दिया। श्री ना० नागप्पा (प्रधान हिन्दी विभाग) और डा० हिरण्मय (रीडर हिन्दी विभाग) का भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने विश्व विद्यालय म प्रवेश प्राप्ताथ आने वाली अनेक समस्याओ को सुलझाने म मेरा हाथ बँटाया।

यह सब होते हुए भी मुझे सन्त कबीर की वह उक्ति स्मरण होती है, जिसम उन्होने गुरु को गोविन्द से बडा कहा है

गुरू गोविन्द दोऊ खडे, का के लागो पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥[1]

इस दृष्टि से डा० हिरण्मय (रीडर हिन्दी विभाग) के अतीव स्नेह स्निग्ध व्यवहार और बुद्धिमतापूण माग निर्देशन के समक्ष मे श्रद्धापूवक नतमस्तक हू। आपने *अपनी स्वाभाविक सहृदयता, कर्तव्यनिष्ठा की भावना और अपने राष्ट्रीय विचारों* के कारण मुझे सदा अपना अनुजवत मानकर अपना योग्य मागदशन दिया। केवल यही नही अपितु आपने तत्सम्बन्धी मरी किसी भी कठिनाई को सदा अपनी कठिनाई समझा। आपके प्रति किन शब्दो म कृतज्ञता ज्ञापन करू ?

सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा के कुशल एव अनुभवपूण प्रकाशन प्रबन्ध के कारण ही यह प्रबन्ध पूण साजसज्जा के साथ प्रकाशित हो सका। अत मैं श्री प्रतापचन्द जसवाल का हृदय स आभारी हूँ।

अन्त म मैं उन सबका हृदय से आभारी हूँ जिन्होने प्रकट या अप्रकट रूप मे मेरे इस अध्ययन मे अपना सहयोग प्रदान किया है।

—'मानव'

---

१ *क० ग्र० पृ० ११६, क्रमांक ३०० अयोध्यासिंह उपाध्याय ना प्र सभा,* वाराणसी।

प्रथम अध्याय

हिन्दी लावनी साहित्य उद्भव और विकास

विषय प्रवेश

इस चराचर विश्व का नियमन करने वाली शक्ति उस 'अज्ञात' 'अव्यक्त' सत्ता का अन्वेषण मानव मन चिरकाल से करता चला आया है। उसे विश्व की विभिन्न प्रक्रियाओं को सचालित करने वाली उस सत्ता का आभास तो हुआ, परन्तु वह निश्चित रूप से यह नहीं जान सका कि वह कौन है? उसका स्वरूप कैसा है? वह कहा निवास करती है? सासारिक चक्र का नियमन कैसे करती है? अनादि काल से लेकर वह इस रहस्य को जानने एव समझने का प्रयत्न करता आया है।

मानव आरम्भ में भावनात्मक होता है उसका 'हृदय-पक्ष' 'बुद्धि-पक्ष' की अपेक्षा अधिक सबल होता है। अत वह प्रकृति के रहस्य से प्रभावित आतकित हो अपने हृदय पर पडे प्रभाव को प्रार्थना के रूप में प्रकट करता है। धार्मिक भावना का उद्रेक हृदय से होता है, और उस उद्रेक की अभिव्यक्ति गीत या पद्य में होती है। दूसरे, मनुष्य की हृदयस्थ सौन्दर्य वृत्ति एक शाश्वत प्रवृत्ति है। वह आदिकाल से ही अपने कार्य सुन्दर एव सुचारु रूप में रखने के लिए उत्सुक रहा है। अपनी बात को भी सुन्दर ढग से अभिव्यक्त करने की आकाक्षा, उसमें रही होगी, और सुन्दर एव मोहक अभिव्यक्ति जितनी 'पद्य' में हो सकती है, उतनी 'गद्य' में नहीं।

डा० रामसागर त्रिपाठी और डा० शान्ति स्वरूप गुप्त द्वारा सम्पादित 'वृहत् साहित्यिक निबन्ध' के पृष्ठ ७६० के अनुसार—'ससार की प्रत्येक भाषा के साहित्य में गद्य से पहले पद्य का ही विकास हुआ है यद्यपि वाणी का प्रस्फुटन गद्य में ही हुआ होगा, तथापि साहित्य रचना सर्व प्रथम गद्य में न होकर, पद्य में ही हुई।

सौंदर्य की भाति सगीत की भावना भी मनुष्य की आदि भावना है। वह आनन्द उल्लास तथा वेदना व्यथा दोनो ही क्षणो में गुन गुना उठता है और आनन्द तथा व्यथा के उद्रेक के क्षणो में ही कविता का जन्म होता है। अपनी उक्ति को चिरस्थायित्व प्रदान करने की मानव प्रवृत्ति भी सम्भवत पद्य के प्रति आकर्षण का कारण ही रही होगी, क्योंकि 'गद्य' में कही हुई बात अधिक समय तक स्मरण नहीं रहती, केवल पद्यात्मक उक्ति ही लोगो का सहज स्मरण कर सकती है। लावनी-

साहित्य का सम्बन्ध भी इसी पद्य से है, जो मनुष्य को आरम्भ से ही अपनी ओर आकर्षित करता रहा है।

लावनी साहित्य पर विवेचन करने से पूर्व 'लावनी' शब्द पर स्वल्प विचार कर लेना अप्रासगिक न होगा।

'लावनी'—शब्द विचार

यह शब्द लावणी या 'लावनी' उच्चारण भेद मे भारत के प्राय प्रत्येक क्षेत्र म बोला और समझा जाता है। केवल हिन्दी और उर्दू ही नही, अपितु देश की दक्षिण भागीय भाषाओ ('कन्नड' और 'तमिल' आदि) म भी इसे 'लावणी' ही कहा जाता है। कही-कही लावनी को 'ख्याल' या खयाल की भी सज्ञा दी जाती है।

यद्यपि अनेक विद्वानो न 'लावणी' शब्द की अपने अपने ढग से व्याख्या की है तथापि 'लावणी' के इस अर्थ पर कि लावणी एक प्रकार की वह सगीतात्मक कविता है (या हृदय का पद्यात्मक उद्रेक है।) जो चग बजा कर गाई जाती है। सभी विद्वानो का मतैक्य है।

'लावणी' शब्द विवेचन की दृष्टि से इस शब्द पर भिन्न भिन्न विद्वानो के मत इस प्रकार व्यक्त किये जा सकते हैं —

१—हिन्दी—लावनी—एक प्रकार का छन्द है, जो प्राय चग पर गाया जाता है।'[१]

२—कन्नड इग०—'लावनी'—(i) A mass, a collection an assembly
(ii) A obscene kind of ballad and its rustic tune'[२]

३—कन्नड—लावनी—(i) 'समूह जान पद गीते गलल्ली।'
(ii) "कथानक गीते।[३]

४—हिन्दी लावनी—सज्ञा—स्त्री (देश) (i) एक प्रकार का छन्द
(ii) इस छन्द का एक प्रकार जो प्राय चग बजाकर गाया जाता। ख्याल।[४]

५—कन्नड इग०—लावनी—(i) cultivation (ii) A tune so called[५]

१—प्रामाणिक हिन्दी कोश पष्ठ ६८७ श्री रामचन्द्र वर्मा।

२ Kittle s Cannada English Dictionary page 1360 Edition 1894

३—श्री कन्नड अर्थ कोष पृष्ठ—४६४ (श्री शिवराम कारथ)।

४—(i) सक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर पष्ठ—१०३३ पाचवा सस्करण—स० २००८। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

(i) नालन्दा विशाल शब्द सागर—पृष्ठ १२१२।

५—Cannada & Eng Dictionary, page 199 —Edition of 1832

६—अवधी—लावनी—एक प्रकार का गीत (गाइवहाय) (गाया जाता है)।[1]

७—हिंदी—लावनी—ख्याल, एक प्रकार का छंद।[2]

८—हिंदी—लावनी—गाने का एक प्रकार का छंद, इसको ख्याल भी कहते हैं।[3]

९—हिंदी इंगलिश—लावनी—A Kind of Hindi song[4]

१०—तमिल—लावनी—वह राग इसे पाटटु (एक प्रकार का गाना)[5]

११—कन्नड—लावनी—लावनी काव्य का वह रूप है, जिसमें वेदों के काल से अब तक के इतिहास तथा धर्म आदि पर भिन्न भिन्न रूपों तथा भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा अनेक छन्दों में (जो विशेष छन्द लावनी के अन्तर्गत हैं) गा-गा कर सुनाया गया है।[6]

१२—लावनी—संगीत राग कल्पद्रुम के अनुसार लावनी (लावणी) उपराग है—"लावणी जोगिया जंगी अड़ाना सुहाना कालिंगा" यह देशी राग के अन्तर्गत है। देशी राग के सम्बन्ध में कहा गया है कि भिन्न भिन्न देशों में जो भिन्न भिन्न नाम धारण करे, वह देशी राग है—देशे देशे भिन्न नाम तद्देशी गानमुच्यते (रा० १, पृष्ठ १७) दीपक राग की भार्या देशी रागनी से इसमें भिन्नता है क्योंकि देशी राग को ग्राम्य राग भी कहा जाता है। स्पष्ट है कि लोक गीतों से इसका विकास हुआ है, जिसका संस्कृतानुकरण लावणी में मिलता है। इसका सम्बन्ध लावनी देश (लावणक) से था जो मगध के समीप था एवं उसी देश से सम्बन्ध होने के कारण उसका नाम लावनी पड़ा। मियां तानसेन ने जिन मिश्रित रागनियों को शास्त्रीयता प्रदान की थी, उनमें से लावनी भी थी। कुछ लोगों की धारणा है कि निर्गुण भक्ति धारा के साथ इसका सम्बन्ध था। वस्तुतः लोक रागिनी होने के कारण इसे लोक-कवियों ने अपनाया। सगुण निर्गुण का इसमें विभेद उपयुक्त नहीं है। 'लावनी के कई वर्ग होते हैं—लावनी—भूपाली, लावनी देशी, लावनी-जंगला, लावनी-कलंगड़ा, लावनी रेखता आदि। कबीर के कुछ गीतों की परिगणना 'लावनी

१—अवधी कोष—पृष्ठ २०३ (रामाज्ञा द्विवेदी)

२—प्रचारक हिन्दी शब्द कोश—पृष्ठ ८१४ (पं० लालधर त्रिपाठी)

३—भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश—पृष्ठ ४५३ (आर० सी० पाठक)।

४—Bhurgava's Standard Illustrated Dictionary Page 89) (R C Pathak)

५—मदुराई-तमिल पेरगराति—पृष्ठ नहीं दिया गया—(शाणानन्दरूप 'कौल')।

६—श्री सुवण्णा (एक ख्याति प्राप्त कन्नड लावनाकार), बेंगलूर।

के अन्तगत हुई है किन्तु ग्रथावली मे यह नाम नही मिलता। प्राचीन कवियो मे हस्तिराम हरिदाम रमरग कृष्णानन्द आदि 'लावनी के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। लावनी रेखता का उदाहरण है—

गोरी एक बनी है हदवेश शिर पर लटके लम्बे केश।
अदा से चली है मुख मोर अचरा न्यिा है उर से छोर॥

वल्लभचन्द—लिखित लावनी 'बलागडा' है—'हनूमान वीर बका, जिनका मुल्का म डका, हुक्म पाय कूदि गय लका उठी जब रावण के शका। भारतेन्दु काल म लावनी बाजा के दगल होते थे और भारतेन्दु ने भी 'लावणी की रचनाए की थी, जिनका सग्रह 'फूलो का गुच्छा नामक सकलन मे हुआ। कुछ लावनियाँ 'प्रेम तरग प्रेम प्रलाप्र आदि ग्र थो मे भी सकलित है। कुछ लावनिया रेखता के ढग की हैं—तुझे कोई काबे मे हाजिर कोई देर म बतलाता भूले हैं सब अक्ल म वशक इनके फक पडा—और कुछ लावनिया प्रचलित भाषा म है मोहि छोडि प्रानप्रिय कर जनत अनुरागे। प्रताप नारायण मिश्र भी लावनी बाजो की सगति म रहते थे और उन्होने भी इनकी रचनाए की हैं। रा० खे० पा०।[1]

१३—काव्य का वह निश्चित एव प्रतिबधित रूप लावनी है, जिसम शरीर जीव और ब्रह्म तथा माया विषयक विचार दशन हो।[2]

१४—महाराष्ट्र में प्रचलित एक उक्ति—'मन लवून गाणें' पर चर्चा करते हुये डा० आर० के० मुदलियार ने हमे एक भेंट मे बताया कि लावनी मन लगाकर गाई जाती है एतदथ इस लावणी कहा जाता है।[3]

उपरोक्त लावनीकारा व अन्य विद्वानो द्वारा प्रकटित लावनी गत उद्गारो पर तो आगे चलकर पृथक पथक सर्गानुसार विचार किया जायेगा, अभी तो हमारा मन्तव्य 'लावनी' शब्द मात्र से है और इस लावनी से जब हम इस निष्कप पर पहुँचे हैं कि 'लावनी एक विशेष प्रकार की कविता है जो लोक-साहित्य के अन्तगत

---

१ हिन्दी साहित्य कोश भाग १ (पारिभाषिक शब्दावली (पष्ठ—७४३ वाराणसी ज्ञानमडल द्वारा प्रकाशित)
सम्पादक मडल—धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान) ब्रजेश्वर वर्मा, धमवीर भारती रामस्वरूप चतुर्वेदी, रघुवश (सयोजक)।

२—प० किसन लाल 'छक्कडा भिवानी।
(एक प्रसिद्ध वयोवृद्ध लावनीकार)

३—डा० आर० के० मुदलियार।
(कर्नाटक विश्वविद्यालय)

आती है। इससे पूर्व कि 'लावनी' के उद्‌भव और विकास पर विवेचन करें, लोक साहित्य पर भी विहगम दृष्टिपात करना अनावश्यक न होगा।

लोक साहित्य—'लोक साहित्य' इस शब्द पर विद्वान ने अपने अपने ढग से टिप्पणियाँ की हैं। हम दोना शब्दो (लोक साहित्य) को यदि इस प्रकार रक्खें तो सम्भवत यह सत्य का प्रकाशन होगा।

लोक—एक ऐसा समाज जो अपने नागरिक जीवन से कोसा दूर, परन्तु अपने हृदय की पवित्रता से पूर्ण, तथा जो अपनी परम्पराओं पर आधारित है उसे हम 'लोक' या लोक समाज का नाम दे सकते हैं और इसी समाज से सम्बंधित किसी साहित्य को हम लोक-साहित्य कह सकते हैं।

साहित्य—'साहित्य' शब्द का अर्थ है सहित होने का भाव—"सहितस्य भाव साहित्य' अब प्रश्न होता है कि 'सहित' शब्द का क्या अर्थ है ? सहित शब्द के दो अर्थ हैं—(१) 'सह' अर्थात् साथ होना, (२) 'हितेन सह महित' अर्थात् हित के साथ होना अथवा जिससे हित सम्पादन हो। 'स' होने के भाव की प्रधानता देते हुए हम कहेंगे कि जहाँ शब्द और विचार और भाव का परम्परानुकूलता के साथ सह भाव हो वही साहित्य है। शब्द और अर्थ का होना स्वाभाविक रूप से ही माना गया है।

कविकुल चूडामणि कालिदास ने अपने 'रघुवंश' के मगलाचरण मे शब्द और अर्थ के सयोग को अपने इष्ट और उपास्य पार्वती परमेश्वर के सयोग का उपमान माना है।

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगत पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ॥

सस्कृत मे 'साहित्य' शब्द का अर्थ 'काव्य-शास्त्र' किया जाता था परन्तु आजकल इस शब्द का अर्थ पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। अंग्रेजी के प्रभाव के कारण आजकल प्राय इसे 'लिटरेचर' का पर्याय माना जाता है। 'लिटरेचर' का सम्बन्ध 'लटर्स' से है। अर्थात् जिन कृतियों को लेटर्स मे या अक्षरो मे लिखा जाये उन्हें लिटरेचर कहेंगे। दूसरे शब्दो मे हम यह सकते हैं—जो कृतियाँ पढी जा सकती हैं या लिखी जा सकती हैं—वे साहित्य हैं।

लोक साहित्य विज्ञान के लेखक डा० सत्येन्द्र ने इसी पुस्तक के आरम्भ मे परिभाषा बताते समय लिखा है कि 'लोक-साहित्य' शब्द हिन्दी मराठी की भाँति लोक वार्ता या 'फोकलोर' का पर्यायवाची नहीं है। परन्तु श्रीमती दुर्गा भागवत ने लोक-साहित्य' का फोकलोर के पर्याय के रूप मे ही उपयोग किया है।

'लोक-साहित्य' को यदि हम अंग्रेजी का अनुवाद मानें तो हम इसे 'फोक लिटरेचर' का अनुवाद मानना पडेगा—'लोक' 'फोक' और 'साहित्य' 'लिटरेचर'।

एनसाक्लोपीडिया ब्रिटेनिका म इस लोक' 'फोक' के विषय म इस प्रकार मिलता है—

'आदिम समाज मे तो उसके सभी सदस्य 'लोक' 'फोक' होते हैं। इसक विस्तृत अथ म इस शब्द से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनता को भी अभिहित किया जा सकता है परन्तु सामान्य प्रयोग म पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता के लिए एसे सयुक्त शब्दो म—जस– लोक वार्ता' (फोक-लोर) लोक-सगीत (फोक म्यूजिक) आदि मे इसका अथ सकुचित होकर केवल उन्ही का ज्ञान कराता है, जो नागरिक सस्कृति और सविधि शिक्षा की धाराओ से मुख्यत परे हैं, जो निरक्षर हैं, अथवा जिन्ह साधारण अक्षर ज्ञान है—ग्रामाण और गवार।"

फोक-लोर क सम्बन्ध म, डा० सत्यार्थी क विचार भी पठनीय हैं— फोक लोर' शब्द का निर्माण एक अग्रेज पुरातत्ववित्त, *विलियम जोहन थाम्स* ने सन् १८४६ मे किया था। पहले पापूलर एण्टीक्वीटीज शब्द प्रयोग म आता था। 'पापूलर एण्टीक्वीटीज का अथ लोक प्रिय अथवा लोक व्याप्त पुरातत्व' था। अब 'फाक लोर शब्द सवत्र ग्राह्य हो गया है।[१]

आदिम मानव से फोक लोर का घनिष्ट सम्बन्ध है। यह औरलियो एम० एस० पिनोजा ने निम्नलिखित एक वाक्य म स्पष्ट कर दिया है —

"Folklore *may* be said to be true and direct expression of the mind of primitive man"

श्री लेविस स्पेंस ने फोक लार के विषय म अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये है

Folklore means the study of survival of early custom, belief, narrative and art[2]

'दी ग्रेट एनसाक्लोपीडिया आफ यूनीवसल नालेज म फोक लोर के महत्व एव ऐतिहासिक तथ्य पर इस प्रकार विश्लेषण हुआ है —

The body of the traditional knowledge and beliefs peculiar to a race of people first became the subject of scientific study in con *junction with sociological and Authropological research in 19th* contury Its material includes stories legends children s rhymes saws and superstitions of which the long forgotton origin and meaning of ten be elucidated by reference to the history or religious practices of antiquity or frequently by comparison with similar

---

१ ला० सा० वि०, पष्ठ–प्रथम (परिभाषा)

2 An introduction to Mythology page 11

beliefs and practices in surviving primitive communities The brothers grim in Germany were pioneers in collecting the folklore of their country In 1878 the folklore society was founded in England to further the study in this country' [1]

'मैरेट' न गोम्मे के एक उद्धरण द्वारा 'फोक्लोर के क्षेत्र का स्वरूप अतीव स्पष्टत प्रस्तुत किया है —

'Folklore may be said to include all the culture of the people which has not been wotked into official religion and history, but which is and has always been of self growth

लोक साहित्य मे लावनी का सम्बन्ध

'लावनी' एव लोक साहित्य' शब्दो की लाक्षणिक चर्चा के पश्चात लोक साहित्य स 'लावनी' का सम्बन्ध निधारण हमारे लिए सरल हो जाता है।

यह स्पष्ट है कि धरती की भावना लोक साहित्य के द्वारा मानव परम्परा स ही अभिव्यक्त होती आ रही है [1] अत किसी भी साहित्य का यदि इस धरती स सम्पर्क रख कर सरस एव सजीव बन रहना है तो उसका लोक साहित्य के माध्यम से ही उद्भूत होना आवश्यक है। यदि साहित्य को शास्त्रीय परम्परा की बेडियो स मुक्त होना है और उसे समाज की धडकन का निरूपण करना है तो उस लोक साहित्य की स्वाभाविक भावना का अनुकरण करना ही होगा। आज कृत्रिम सभ्यता के कारण मनुष्य के जीवन म, हृदय और मस्तिष्क म कोई सामजस्य नही रह गया है, सभ्यता मस्तिष्क स और स्वाभाविकता हृदय मे उद्भूत होती है। हृदय की भावना को छोडकर मस्तिष्क ज्ञान का आडम्बर रचता है। इस कृत्रिम सभ्यता का प्रभाव कविताओं पर विशेष रूप से पडा है। उनम लोक-साहित्य की भाति सरलता और स्वाभाविकता नहीं है। कविताएँ अलकारो के बोझ से दब गइ हैं, उनका रस सूख गया है, लेकिन लोक साहित्य मे लोक गीतो म रस है। रस तो मनुष्य के लिए स्वाभाविक तत्व है और अलकार कृत्रिम है। शताब्दियो से मानव का मन भावो के निमित्त पिपासित है, विकल है उसे तृप्त करने के लिए रस की आवश्यकता है और वह रस है—लोक-साहित्य मे—लोक गीतो म—लावनी म—। 'यदि लोक साहित्य पिता है तो लावनी साहित्य उसका पुत्र है। यदि लोक साहित्य चन्द्रमा है तो लावनी-साहित्य उसकी चाँदनी। यदि लोक-साहित्य सूर्य है तो

---

1 The Great Encyclopaedia of universal knowledge—page 454

2 Psychology and Folklore—page 76 (R R Marett)

लावनी-साहित्य उसका प्रकाश। इस प्रकार लोक-साहित्य और लावनी-साहित्य का परस्पर अभिन्न गटबन्धन है। एक-दूसरे का नीर और सरिता का सम्बन्ध है।

अन्त मे हम कह सकते हैं कि— लोक साहित्य का वह सस्कृत रूप ही लावनी है, जो कविता की अजस्र धारा म लोक मानस को आप्लावित कर अपनी ओर आकर्षित करता रहा है।"

यद्यपि लावनी-साहित्य म 'विषय प्रधान' अथवा 'भौतिक कविता भी उपलब्ध है, तथापि इसकी लयात्मकता एव गेयता तथा गतिशीलता के कारण गीति-काव्य के अन्तर्गत भी लावनी का विवेचन किया जा सकता है, परन्तु इससे पूर्व 'गीतिकाव्य' आदि पर किंचित दृष्टिपात कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

द्वितीय अध्याय | गीतिकाव्य, लोकगीत और लावनी

हिन्दी म जिसे 'गीति का य' कहा जाता है, अग्रेजी म उसे 'लिरिकल पोइट्री नाम दिया जाता है। अग्रेजी मे 'लिरिकल पोइटी (Lyrical Poetry) उस कविता को कहते है जो 'लाइर (Lyra) नामक वाद्य यन्त्र विशेष के साथ गायी जाती है। 'इसाक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' प्रस्तुत कथन का प्रमाण है —

"Lyrical poetry, a general term of all poetry which is or can be supposed to be, susceptable of being sung to the accom paniment of a musical instrument'

गीतिका य' की प्रस्तुत परिभाषा से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि अग्रेजी की उक्त कविता म गेयात्मकता 'गीतिकाव्य का प्रमुख तत्व है ही, विशेष रूप से 'लावनी का। 'इ साक्लोपीडिया ब्रिटेनिका म दी गई परिभाषा के अतिरिक्त जिन पाश्चात्य विद्वाना ने गीतिका य के लक्षण देकर उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है उनम— जो फ्राय 'हीगल' 'आर्नेस्ट रा स, जान ड्रिक वाटर', 'गमर तथा हडसन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'जो फ्राय न गीतिकाव्य को और काव्य का समानार्थवाची स्वीकार किया है। स्पष्ट है कि 'जो फ्राय की परिभाषा गीतिका य पर कोई प्रकाश नही डालती। हीगल के मतानुसार—

'गीतिकाव्य म किसी ऐसे व्यापक काय का चित्रण नही होता जिससे बाह्य विश्व के विभिन्न रूपा एव ऐश्वय का उद्घाटन हो, उसम तो कवि की निजी आत्मा के ही किसी एक रूप विशेष क प्रतिबिम्ब का निद न होता है। उसका एकमात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक शैली मे आन्तरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओ, उसकी आशाओ, उसके आन्हाद की तरगा और उसकी वेदना को चीत्कारा का उद्घाटन करना ही है।'

'अर्नेस्ट राइस ने गीतिका य म भावा के प्राधा य पर बल देत हुए कहा है—'गीतिका य एक ऐसी सगीतमय अभि यक्ति है, जिसके शब्दों पर भावा का पूण आधिपत्य होता है कि तु जिसकी प्रभावशालिनी लय में सर्वत्र उ मुक्तता रहती है। इसी प्रकार जानडिक वाटर ने भी लिखा है—गीतिकाव्य एक ऐसी अभि व्यजना है, जो विशुद्ध काव्यात्मक (भावात्मक) प्रेरणा से व्यक्त होती है तथा

जिसम किसी अय प्रेरणा के सहयोग की अपेक्षा नही रहती। गमर महोदय ने जो परिभाषा दी है उसम गीतिकाय के स्वरूप पर अच्छा प्रभाव पडता है वे लिखते हैं— 'गीतिकाय' वह अतवृत्ति निरूपिणी कविता है जो वयक्तिक अनुभूतियो से पोषित होती है जिसका सम्बध घटनाओ से नही अपितु भावनाओ से होता है। हडसन न गीतिकाव्य के स्वरूप को ओर अधिक स्पष्ट किया और लिखा—वयक्तिकता की छाप गीतिकाय की सबसे बडी कसौटी है किन्तु वह यक्ति वचित्र्य म सीमित न रहकर यापक मानवीय भावनाओ पर आधारित होती है, जिसने प्रत्येक पाठक उसम अभियक्त भावनाओ एव अनुभूतिया से अपना अपना तादात्म्य स्थापित कर सके।

गीतिकाय के विषय म अय आलोचको का विचार है—गीतिकाय एक लघु आकार एव मुक्तक शैली म रचित रचना है जिसम कवि निजी अनुभूतियो या किसी एक भाव-दशा का प्रकाशन सगीत या लयपूर्ण कोमल शब्दावली म करता है। यह अतिम परिभाषा गीतिकाय की परिनिष्ठित परिभाषा स्वीकार की जा सकती है, क्योकि इसम उन सभी तत्वा का समाहार हो जाता है जिनकी गीतिकाय क लिये अपेक्षा होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव की उपलब्धियो मे गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। सम्भवत आदि मानव न वाणी का प्रथम दर्शन गीत क रूप म ही किया था। जितना गीत मनुष्य के स्वाभाविक भावनात्मक स्पदना स सम्बद्ध है उतना वाणी का कोई अय रूप नही। यह सभी जानते हैं कि केवल मनुष्य ही नही अपितु प्राणी मात्र ही पहले भावुक तत्वो से युक्त हाता है।

बा० गुलाबराय ने अपनी पुस्तक काय के रूप के पृष्ठ १२२ पर गीता के विषय म इस प्रकार लिखा है—गीत लोक गीत' भी होत हैं और साहित्यिक भी। लोक गीतो के निर्माता प्राय अपना नाम अयक्त रखते हैं और कुछ म वह यक्त भी रहता है।।बुदेलखडी कवि ईसुरी की फागा म उसके नाम को छाप मिलती है। वे लोक भावना म अपने भाव मिला दते हैं। लाकगीत गीता म होता तो निजीपन ही है परतु उनम साधारणीकरण और सामायता कुछ अधिक रहती है तभी वे वयक्तिक रस की अपेक्षा जन रस उत्पन्न कर सकते हैं। उन गीता म गायक और श्रोता का तादात्म्य हो जाता है।[1]

'लोकगीत भी जातीय साहित्य स सामग्री ग्रहण करते रहते हैं। रामायण और महाभारत से सम्बधित अनेको लोकगीत है। लाक साहित्य और शिक्षित लोगो के साहित्य म आदान प्रदान होता रहता है। जायसी के पदमावत' की कथा का

---

१ का० रू०—पृ० १२२

कथा का पूर्वार्द्ध लोक साहित्य से मिलता-जुलता है।[1]

आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'तुलसी' अपने विनय के पदा म 'लोक का प्रतिनिधित्व करते हैं। साहित्यिक गीता का उदय लोक गीता से ही हुआ है। मेरी समझ मे तो महाकाव्य भी लोकगीता के विकसित और सगठित रूप हैं। बहुत से साहित्यिक गीत भी 'लावनी आदि लोकगीतो के अनुकरण म बने है। इस प्रकार गीता के कई रूप हो जाते हैं। पद शली, जिसम पहली पक्ति स्थायी या टेक हाता है और शेष अन्तरा की पक्तिया या तो उसी से तुक साम्य रखती है या आपस म तुक साम्य रखती है। दूसरे गजल, लावनी', तरज के गीत होते हैं और तीसरे आज कल के गीत।'[2]

'गीतकाव्य का इतिहास स्वय वदा से ही प्रारम्भ हाता है सामवन्द गायन हा है। इसी बात की पुष्टि करत हुए बा० गुलाबराय ने 'वद से उदाहरण देत हुए इस प्रकार लिखा है—'वेदा म गीत बतलाना उनके गौरव को घटाना नही है। गीत शब्द का पूरा-पूरा महत्व श्रीमद्भागवतगीता' मे देखा जा सकता है। 'गीता का भी तो अर्थ यही है कि जा गाया गया हो। स्वय वेदो के गायका ने उन्हें गीत कहा है—गोमि वरुण सीमहि—अर्थात्, हे मेरे वरणीव मैं तुम्हें अपने गीता से बाँधता हूँ।'[3]

वीरगाथा काल म भी गीतकाव्य का सजन हुआ है। 'वीसलदेव रासो गाने के उद्देश्य से ही लिखा गया है। 'आल्ह खण्ड' भी जन मानस मे अतीव प्रेम-पूर्वक गाया जाता है। हिन्दी म गीतकाव्य के प्रथम दर्शन सन्त कवियो की वाणी मे होते हैं।[4]

लोक साहित्य विज्ञान के पृष्ठ ३६० पर विद्वान लेखक (डा० सत्येन्द्र) न लोकगीत का परिभाषा इस प्रकार दी है—''लोकगीत' की परिभाषा अत्यन्त सक्षेप म यह की जा सकती है 'वह गीत जो लोक मानस की अभिव्यक्ति हो अथवा जिसमे लोक मानसाभास भी हो, 'लोकगीत' के अन्तर्गत आयेगा।'

'लोकगीत' जसे एक दवी वाक्य है, जिसका न कोई निर्माता है और न स्वर-सन्धाता है, वह जसे मानव-समुदाय मे सहज ही स्वय उदरित हो उठा है, और बिना प्रयास के सहज ही कण्ठ स कण्ठ पर उतरती हुई अपनी परम्परा स्थापित

१ वही—पृ० १२३।
२ का० रू०—पृ० १२३-२४।
३ वही—पृ० १२७।
४ वही—पृ० १२८-१३०।

करता रहा है। वह सामाजिक, सामुदायिक जीवन से सम्बद्ध रहता है।'[1]

गीत, लोकगीत और लावनी मे अन्तर

'गीत' और लोकगीत' म अन्तर है। 'लोकगीत लोक साहित्य के अन्तर्गत और गीत शिष्ट साहित्य के अन्तगत आता है। शिष्ट साहित्य किसी विशिष्ट उद्देश्य से अथवा परिस्थितियो के कारण रचा जाता है। अत यह स्वाभाविक है कि उसम हृदय पक्ष की अपेक्षा मस्तिष्क पक्ष की प्रबलता एव प्रधानता रहती है। अलकारो और छन्द शास्त्र क बन्धन म पडकर उसम स्वाभाविकता विशेष नही रह पाती। शिष्ट साहित्य को समस्त जनता का साहित्य नही कहा जा सकता, क्योकि वह समाज के शिक्षित वग तक ही सीमित रहता है। उसम भाषा की दुरूहता आ जाती है, सरलता नहा रहती। उसम विचारो की प्रधानता रहती है। यही कारण है कि उसमे स्थायित्व का अभाव रहता है परन्तु लोक गीतो म ऐसी बात नही है। लोक गीत मानव की स्थायी सम्पत्ति हैं। इनम छन्दो का बन्धन अतीव श्लथ है, एक प्रकार से यदि कहा जाय कि इनम छन्द होता ही नही तो कोई अतिशयोक्ति न होगी, वसे तो छन्द काव्यनायिका के परिधान है परन्तु लोकगीतो म इनकी पूर्ति 'लय और सगीत से हो जाती है। इनका सगीत अतीव सरस एव आकर्षण होता है। ग्रामीण कवि पिंगल ज्ञान स शून्य होते हैं। उन्ह वर्णिक एव मात्रिक छन्दो का ध्यान नही रहता। वे तो 'स्वान्त सुखाय 'पर जन हिताय अपने निष्कपट भावो को राग का रूप दे देते है चाहे वह दोष मुक्त है या दोष युक्त, इसकी उन्ह चिन्ता नही। परन्तु जिन्होने इन गीतो को सुना है उन्हे कभी भी इनम गति भग या यति भग दोष दृष्टिगोचर नही हुआ। फिर भी यदि हम इन्ह छन्द भाषा म कहना चाहे तो ध्वन्यात्मक छन्द कह सकते है। इसीलिए प० रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी सटीक मीमासा देते हुए कहा है कि 'इनम (लोकगीतो म) छन्द नही केवल लय' है। इस लयाश के कारण ही ये लोकगीत अतीव श्रुति मधुर लगते हैं। सम्भवत यह लयाश और सगीत ही लोकगीतो म रस-परिपाक' का कारण बनता है जो किसी भी साहित्य का विशिष्ट गुण कहा जा सकता है। यही कारण है कि लोकगीत शिक्षित और अशिक्षित सभी क हृदय म स्पन्दन एव कम्पन जगाने की क्षमता रखते हैं। हृदय को स्पर्श करने की उनमे स्वाभाविक शक्ति होती है।

लय' की दृष्टि स 'लावनी साहित्य पर भी यही बात चरितार्थ होती है। परन्तु लावनी 'लोक साहित्य का सस्कृत रूप होने के कारण 'शिष्ट-साहित्य एव लोक-साहित्य का सम्पर्क-सूत्र कहा जा सकता है। इसलिए 'लावनी मे हृदय और

---

१ लो० सा० वि०—पृ० ३६०

मस्तिष्य, रस और अलकार तथा लालित्य और माधुर्य सभी कुछ विद्यमान है। हृदय की सरलता और मस्तिष्क की विवचना शक्ति का जो अनुपम सामन्जस्य हमे 'लावनी' साहित्य मे उपलब्ध है वह सम्भवत अयत्र उपल'ध नहीं। यद्यपि 'लोक-साहित्य' से निकलकर 'शिष्ट साहित्य' की ओर अग्रसर होते रहन के कारण लावनीकारा मे भी आग चलकर अलकारो व दिग्ना और सनअता की दृष्टि से होड-सी लग गई, परन्तु आरम्भिक अवस्था म लावनी' म ऐसा कुछ नही था। यदि कहीं कुछ था भी तो वह स्वाभाविक ही था, उसम कहीं भी किंचित् मात्र कृत्रिमता नही थी। वह हृदय का धन था, व मानव मन के निरीह उद्गार थे। इस प्रकार गीत लाकगीत और लावनी सम्ब'धी किंचित् विवचन के इमी स'दभ के साथ—'लवनी के उद्भव और विकास' सम्ब'धी चर्चा की जा रही है।

तृतीय अध्याय

लावनी-साहित्य का उद्भव और विकास

अभी तक हमने लावनी, लोक-साहित्य गीत और लोक गीता आदि पर ही विहगम दृष्टिपात किया है, अब हमारे विषय विकास की दृष्टि से 'लावनी' के उद्भव और विकास का भी किंचित सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

मानव ने प्रकृति के अन्तराल का गभीरतम अध्ययन कर जिस विकास शीलता का परिचय दिया है, वही उसकी प्रगति का प्रतीक है। अपने विचारो को मूर्तिमत्ता प्रदान करने के लिए उसने साहित्य का सृजन किया है। साहित्यकार म अपनी निगूढ आत्मा की अभिव्यक्ति उसम प्रतिबिम्बित होती है। उसका अस्तित्व निखरता है। साहित्य की रचना प्राचीन होने पर भी इसलिए नवीन प्रतीत होती है कि उसके भावो मे प्राचीनता नही होती अपितु उन्ही भावो म जनसमुदाय के साथ तादात्म्य स्थापित करने की क्षमता होती है।

चेतन और अचेतन मन की कल्पनाओ म जो भिन्नता एव सघष है, साहित्य म उन्ही का तथ्य छन छन कर आता है। जीवन म जो गति है, प्रेरणा है, सुख दुख के भाव हैं साहित्य उन्ही की अभिव्यक्ति है। साहित्य मानव-जीवन की अस्पष्टता को स्पष्ट कर उसे मधुमय बनाता है। जीवन गति है और साहित्य उसकी मधुर भावना है। मानव की भावात्मक अनुभूतियो के साथ साहित्य का गहरा सम्बन्ध है और इस दृष्टि से साहित्य का प्राचीनता उतनी ही भूतकालीन मानी जायगी जितनी कि मानव की भावात्मकता।

प० रामनरेश त्रिपाठी ने मानव की इस भावात्मकता का रोने से सम्बन्ध स्थापित कर अतीव सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया है— ससार म कौन मनुष्य नही रोया ? मनुष्य जीवन मे रोना सबसे पहला काम है। रोने के साथ आखो से आँसुओ की धारा बहती है। आसू किसने नही देखा ? पर कवि की दृष्टि से सब नही देखते। आँसुओ के साथ रहीम ने एक अद्भुत रहस्य खोज निकाला है—

'रहिमन असुवा नयनि ढरि, जिय दुख प्रकट करेह।
जाहि निकारो गेहतें, कस न भेद कहि देह॥

जिसे हम घर से निकाल देंगे वह घर का भेद अवश्य कह देगा, जैसे आसुआ ने निकल कर हृदय का दु ख बता दिया।[१]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनुष्य की भावात्मकता का मनुष्य के साहित्य से एव उसके आँसुओं से गूढतम सम्बन्ध है और ये आँसू मनुष्य की सवप्रथम थाती है। सम्भवत न्ही आँसुओ न एक साधारण मनुष्य को महर्षि वाल्मीकि' के नाम से ख्याति सिद्ध बना दिया। क्रौंच-वध-कातर क्रौंची की करुण पुकार के कारण ही आदि कवि वाल्मीकि की करुणा विगलित अभि यक्ति नि सृत हो उठी थी।

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत क्रौंच मिथुनादेकमवधि काम मोहितम॥

प्रकृति के पुजारी कवि श्री पन्त न भी उपरोक्त उक्ति की स्वीकृति इस प्रकार दी है—

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान,
उमड कर आखो से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान॥

मानव की यह करुणाभिव्यक्ति शन शनै अनेक विधाआ को पार करती हुई आज की इस स्थिति म है, जो हमार समक्ष प्रत्यक्ष है। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि वे ऐसी कौन सी विधाए हैं जिन्हे पार करके मानव की वह अभि यक्ति इस वतमान स्वरूप का प्राप्त कर सकी।

जमन विद्वान 'मक्समूलर' ने 'ऋग्वद को विश्व का सब प्राचीन ग्रन्थ माना है और इस सर्व प्राचीन ग्रन्थ म मनुष्य की यह अभि यक्ति यत्र-तत्र सवत्र भलीभाति दृष्टव्य है। वद मे विभिन्न सस्कारो के उत्सवा पर गाथाआ के गान का वर्णन आया है, ऋग्वद के अनक मन्त्रा म 'गाथा' शब्द का प्रयोग पद्य या गीत क अथ म प्राप्त होता है।[२] उसम गान वाल क लिए 'गाथिन् शब्द का प्रयोग किया गया है।[३] 'ऐतरय ब्राह्मण' म 'ऋक और 'गाथा मे भिन्नता दिखलाई गई है। 'ऋक देवी है और 'गाथा मानवीया। ब्राह्मण ग्रन्था के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि गाथाए ऋक यजु और साम से अलग होती थी, उनका प्रयोग मन्त्र के रूप म नही किया जाता था बल्कि किसी महिपति के सत्कृत्य को लक्षित करके लाकगीता के रूप म होता था, वे जनता द्वारा गाय जाते थ और गाथा नाम से प्रचलित थे। यास्क क निरुक्त' की व्याख्या करते हुए 'दुर्गाचाय' ने 'गाथा का यह अथ स्पष्ट किया है। स पुनरितिहास ऋग्बद्धा गाथा बद्धश्च। इस प्रकार एव कश्चित गाथेत्युच्यते। गाथा शमनि

---

१ कविता कौमदी पहला भाग, पृष्ठ १५
२ ऋग्वेद ८।३२।१ 'कण्व इन्द्रस्य गाथया'।
३ ऋग्वेद १।७।१ इन्द्रमिद गाथिनोबहत'।

नारागसी शसति इति उक्त गाथानाम् कुवन्तिति ।[1]

वदिक सूत्रो म कही कही जो इतिहास उपलब्ध होता है, वह कही ऋचाओ के द्वारा और कही गाथाओ के द्वारा निवद्ध है ।

वदिक गाथाओ के नमूने शतपथ ब्राह्मण (काड १३ अ० १ ब्राह्मण ५) तथा ऐतरेय ब्राह्मण (८।४) म दीख पडते है जिनम अश्वमेघ यज्ञ करन वाले राजाओ के उदात्त चरित्र का सक्षिप्त वणन किया गया है । ऐतरेय ब्राह्मण म गाथाए कहा केवल श्लोक नाम से निर्दिष्ट है तो कही इह यज्ञगाथा या कवल गाथा कहा गया है । (तदेषाऽग्नि यज्ञगाथा गीयते । ता गाथा दशयति ।[2]

अपनी भावनाओ का ज्ञान मनुष्य की एक विशेषता है । जब मनुष्य अपनी भावनाओ को अपने तक ही सीमित न रख कर अपने समान उनको समझने वाले व्यक्तियो के समक्ष उपस्थित करता है तब काव्य का जन्म होता है । काव्य मनुष्य मात्र के हृदय की ध्वान्कि अभिव्यक्ति है, जो हृदय साम्य के कारण पाठक या श्रोता के हृदय म भी उन्हीं भावनाओ की सष्टि कर उसको असाधारण आनन्द प्रदान करती है । काव्य की यही आरम्भिक अवस्था, जो मानवोत्पति क साथ साथ उद्भूत एव विकसित होती रही है लोकगीत, लोकगाथा और लोक सगीत आदि नामा से उद्गत हो मानवमात्र के मना मे अपना स्थान सुरक्षित करती रही है । वाराणसी ज्ञान मडल' द्वारा प्रकाशित, हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पष्ठ ७४३ के अनुसार *लावनी साहित्य मानव काव्य के इसी आरम्भिक रूप का सस्कृत रूप है।*

ज्यो-ज्यो मनुष्य के मस्तिष्क मे धीरे धीरे निखार आता गया उसके विचारो म प्रौढ़ता एव परिपक्वता आती गई त्यो-त्यो उसकी अभिव्यक्ति भी अधिक मुखर होकर प्राजलता को प्राप्त करती गइ । 'लावनी' म मानव की इसी परिष्कृत एव शिष्टतापूण तथा विवेचनात्मक वाणी के दशन होते हैं । दूसरे शब्दा म कहा जा सकता है कि परिष्कृत लावनी की उदभावना ऐसे समय म हुई जिस समय मनुष्य का एक तथाकथित शिष्ट वग अपन आप को अन्य वग से कुछ भिन्न-सा समझने लगा अथवा हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य का वह परिष्कृत रूप जो तत्कालीन सभ्य समाज म प्रचलित था, लावनी के नाम से प्रसिद्ध था । सम्भवत तत्कालीन समाज मे 'लावनी का अथ लावण्यमयी समझा जाता रहा हो, जिसका प्रवेश तत्कालीन सभ्य-समाज म सरलता-पूर्वक हो सकता था । इसी प्रसग म, यदि कुछ विवेचका का विवेचनापूण दृष्टिकोण लावनी के उदभव के विषय म प्रस्तुत किया जाए तो हम लावनी' की प्रादुर्भाव विषयक जानकारी प्राप्त करन म सरलता रहगी ।

---

१ निरुक्त ४।६ की व्याख्या ।

२ ऐतरेय ब्राह्मण ३६।७ तत्र प्रथमश्लोकमाह—वही–३६।६ ।

'लावनी' के एक अधिकारी विद्वान प्राध्यापक श्री घाड ने अपन एक विशेष लेख म—'लावणी एक मराठा शृगारिक नत्य' शीर्षक स इस प्रकार लिखा है—

'लावनी' केवल गीत नही, 'गीत वाद्य तथा नत्य त्रय सगीत सनकम, इस व्याख्या के अनुसार वह सम्पूर्ण सगीत है, और गायिकाओ की अदा और रगीन चित्र से बीच बीच म चलन वाले सम्वादो के कारण उसमे नाटक भी है। सबसे महत्वपूण बात यह है कि दशक भी रगभूमि पर नत्य गान सम्वाद म सहभागी होकर नाच गाने की बठक मे पहुँचने का रस पर लेता है।

हेमचन्द्र ने (बारहवी शताब्दी म) 'काव्यानुशासन मे डाबिका नामक एक गेय प्रेक्ष्य काव्य प्रकार का वणन किया है उन्होने उसका जो वर्णन किया है, उससे, इसम शका नही रह जाती कि वह काव्य भी 'लावनी' जसा ही रहा होगा विशेषता यह है कि इसमे गायिका ने किसी पात्र का अभिनय किया भी, तो वह उस पात्र का भाव न दिखाकर, अपने ही भाव प्रदर्शित करती है, जिससे दर्शक केवल दशक न रह कर गायिका का लक्ष्य बन जाता है। उस के गीत का उद्देश्य श्रोताओ को चौर्यसुरत के लिए उद्यत करना होता है—उनके द्वारा वणित यह काव्य प्रकार 'लावणी से लगभग पूरी तरह मिलता जुलता है।[1]

इसी लेख मे श्री घाड ने आगे लिखा है कि—

लावणी' को डोम महार, माग आदि छोटे माने जाने वाले लोगो की कला के रूप म स्वीकार किया गया, क्योकि उसका उद्देश्य चौर्य-सुरत को उद्यत करने वाला होने के कारण उसे सभ्य समाज म मान्यता न मिल सकी यह स्वाभाविक था। ज्ञानेश्वर ने (तेरहवी शताब्दी म) 'ज्ञानेश्वरी' म ऐसे ही एक तमाशे (अभिनयात्मक लावणी) का जिक्र किया है, उस तमाशे म किये गये 'दान को तामसदान कहा गया है परन्तु मराठाशाही के अन्तिम दिनो म बाजी राव द्वितीय के राज्य काल मे (१७९६ १८१८) तमाशे को मान्यता मिली।[2] इसी लेख के अन्त म लेखक महोदय ने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि लावनी ने शिष्ट समाज म कसे प्रवेश किया—'लावनी की ताल उनके रक्त म मिल चुकी थी, सुर कानो म भर चुके थे और रूप तथा नृत्य आँखो म समा चुके थे। लावनी धीरे धीरे शिष्ट समाज म प्रवेश करने लगी उसने प्रारम्भ म वेश बदल कर किर्लोस्कर मदिर के नाटक के रूप म शिष्ट समाज से भेंट की, शायद वह नाटक के पुरुष पात्रो के मुह से भी गाई गई हो। समय बीतने पर सुन्दरा बाई जलसो मे 'लावनिया' गाने लगी और उनके रिकाड बनने लगे। फिर तो 'लावनी' का प्रचार बढा और शिष्ट व अशिष्ट, स्त्री व पुरुष

---

१ हिन्दी साप्ताहिक 'धमयुग' २८ जुलाई १९६८ का अक पृष्ठ १४ १५

२ वही–पृष्ठ १५

सभी वर्गों म मुक्त रूप से वह (लावनी) पहुच गई। महाराष्ट्र मे आजकल लावनी की लोकप्रियता दिन प्रतिदिन बढती जा रही है।[1]

इसक अतिरिक्त 'हिन्दी साहित्य कोश भाग १—(पारिभाषिक शब्दावली) के सम्पादक मडल न लावनी की प्राचीनता को इस प्रकार प्रमाणित किया है— मिया तानसेन न जिन मिश्रित राग रागनिया को शास्त्रीयता प्रदान की थी, उनमे से 'लावनी भी थी। कबीर के कुछ गीतो की परिगणना 'लावनी के अन्तगत हुई है, कि तु *ग्रन्थावली म यह नाम नही मिलता। प्राचीन कवियो मे हस्तिराम, हरिदास* रमरग कृष्णानन्द आदि लावनी के प्रसिद्ध कवि हुय है।[2]

उपरोक्त कुछ तथ्यो क अतिरिक्त इसी प्रसग म हम अन्य विद्वानो के भी लावनी विषयक विचार जान लेने चाहिये—राष्ट्र कवि श्री मथिलीशरण गुप्त ने हम अपनी भेंट म एक बार लावनी विषयक इस प्रकार बताया—'लावनी, ताटक छन्द और वीर छ द म भी प्राप्त है। इससे यह प्रतीत होता है कि लावनी भी इ ोकी भांति अतीव प्राचीन है।[3]

वा० रायकृष्णदास निर्देशक (हिन्दी) बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी बनारस, ने हमे लावनी विषयक इस प्रकार लिखा—

मुझे स्मरण है कि आप स लावनी विषयक चर्चा हुई थी।

ब्रह्मनाल लावनी के रचयिता बनारसी हवकानी थे। उनकी लावनिया का सग्रह उक्त नाम स प्रकाशित है। लावनी क उद्भव के विषय मे कोई बात निश्चयपूर्वक नही कह सकता। महाराष्ट्र मे इसका बहुत प्रचार है।[4]

अभी तक तो हमने कुछ साहित्यिक व्यक्तियो के विचार (लावनी विषयक) जाने हैं, अब इसी सन्दभ म कुछ लावनीकारो के विचार भी ज्ञातव्य हैं—

श्री काशीगिरी बनारसी न तद्विषयक विचार इस प्रकार प्रकट किय हैं—

कोई इसको लावनी कहते हैं और कोई मरहटा या ख्याल कहते हैं। असल मे इसका बनाना और गाना दक्षिण से उत्पन्न हुआ है और इसके दो कर्ता हुए हैं। एक का नाम तुकनगिर और दूसरे का नाम शाह अली था। उन्होने दो 'मत खडे किये— तुरा और कलगी। तुकनगिरि 'तुर्रे को बडा कहते थे और शाह अली *कलगी का पक्ष रखते थे। आपस म विवाद किया करते थे। और अपना-अपना*

---

१ हिन्दी साप्ताहिक धमयुग २८ जुलाई १९६८ का अक पृष्ठ १५

२ हि० सा० को० भाग १ (पारिभाषिक शब्दावली) पृष्ठ ७४३

३ आपके नई दिल्ली के आवास स्थान पर हुई भेंट, दि० २०-९-६३।

४ आपका एक पत्र-पत्राक-२९ (१)। ९६१। २४

ष उन्होने चलाया।[1] कुछ लावनीकारो ने अपनी स्वाभाविक मस्ती मे आकर हमे बताया कि 'लावनी भारतवर्ष मे मुगलो के साथ पनपी, उन्ही के शाही ठाठ बाट के साथ अधिक विकसित हुई तथा उन्हीं के शासन की भांति धीरे धीरे लुप्त भी होती गई। आकाशवाणी दिल्ली से श्री रामनारायण लिखते हैं—

लावनी-गायन का आरम्भ औरंगजेब के शासनकाल के अंतिम दिनो मे तुकनगिर तथा शाह अलि नामक दो साधुओ ने किया था।'[2]

किसी भी लिखित एवं अत्यधिक पुष्ट प्रमाण के अभाव मे हमे वृद्ध लावनी-कारो के मुख से सुनी सुनाई बातो पर भी कुछ सीमा तक विश्वास करना होगा, क्योंकि यह लोक-साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसकी अपनी परम्परा होने हुए भी वह परम्परा 'दादी-नानी परम्परा है अर्थात जैसे वृद्धा माताएँ और दादियाँ बच्चो को जो कहानियाँ या गीत व भजन सुनाती हैं, वही आगे चलकर आने वाली सन्तान श्रवण करती है और इस प्रकार यह परम्परा चलती ही चलती है, परन्तु इनका कोई लिखित तथा प्रकाशित साहित्य उपलब्ध नही होता इसी प्रकार लावनी के विषय मे भी स्पष्ट है कि इसकी परम्परा का कोई लिखित-साहित्य प्राप्य नहीं है। किम्वदंति के आधार पर कोई लावनी का उद्भव शाहजहाँ के समय मे मानता है तो कोई सम्राट अकबर के समय मे, परन्तु इन अनेक पृथक-पृथक विचारधाराओ के होते हुए भी, इस बात पर अधिक मतैक्य है कि तुर्रा और कलगी चिन्हांकित दो लावनीकार क्रमश सन्त तुकनगिर और शाह अली ने किसी शाह के दरबार मे लावनी का गायन सर्वप्रथम किया। धीरे धीरे लावनी विकास को प्राप्त करती गई और लावनी का एक विकसित रूप आज हमारे समक्ष विद्यमान है।

उपरान्त कुछ लिखित और अलिखित प्रमाणो के आधार पर हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि लावनी का उद्भव तो बारहवी शताब्दी के हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' से पूर्व हो हो चुका था परन्तु इस विकास का अवसर सम्राट अकबर के समय मे विशेष प्राप्त हुआ।

इस समस्त विवेचन के पश्चात हमारी यह धारणा हुई है कि 'लोकगीत जन मानस की बानी होने के कारण इनका उनके प्रत्येक कार्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। धान रोपते समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हे 'रोपनी के गीत' कहते हैं। खेत को निराते समय या सोहते समय जो गीत गाये जाते हैं वे निरवाही' या सोहनी

---

१ लावनी—अर्थात मरहटी गाना (भूमिका—पृष्ठ १) बानिगिरि बनारसी परमहंस प्रकाशक—मुन्शी नवल किशोर का छापाखाना लखनऊ। चतुर्थ आवृत्ति सितम्बर सन् १८८४।

२ श्री रामनारायण अग्रवाल—आकाशवाणी (ब्रज माधुरी कार्यक्रम), नई दिल्ली।

वे गाता के नाम मे प्रसिद्ध हैं। अतमार उन गीना को कहा जाता है जिह स्त्रियाँ जात पीसते समय गाती हैं। तेली तेल को पेरते समय अपने हृदय के भावा का मन्थन करता हुआ जिन पदा को सस्वर रूप से गाता है उन्हे 'कोल्हू क गीत की सना दी गइ है। इसी प्रकार पानी भरने क समय क गीत माना के गीत, देवताओ के गीत देवी के गीत आदि भी हमारे लोक-जीवन म प्रचलित है। ये गीत एक विशेष प्रकार का काय करते समय गाये जाते हैं इसलिए इन्हे हम क्रियागीत कह सकते है।

इसी प्रकार खेता म अन्न आदि काटने की क्रिया को हिन्दी म ही नही अपितु अन्य अनक भारतीय भाषाओ म भी 'लावनी' कहते हैं एतदर्थ खेती को काटन के समय गाये जाने वाले गीता को 'लावनी' के गीत या लावनी' कहा जाना कोई आश्चय की बात नही है।

भारतवष एक कृषि प्रधान दश है। यहाँ का कृषक अतीव परिश्रमी एव सतसाहसी है। वह अपने श्रम को श्रम न मान कर कतव्य निष्ठा की भावना के साथ अनाव उल्लसित होकर अपने खेता मे रात दिन एक करता है। भारत का किसान वर्षा मे, अकाल म दुख और सुख मे हँसना मुस्काना और गाना जानता है। वह प्रत्यक समय हँसते गाते ही अपनी जीवन नौका खेता है। जिस समय वह अपनी लहलहाती हुई खेती को देखता है उसकी बाँछें खिल उठती हैं, परन्तु वाह रे भारत के किसान! तू उस खेती को काटते समय भी जहाँ अपने श्रम कण यत्र तत्र बिखेरता है, वहाँ अपने भिन्न भिन्न प्रकार क गीता स उन श्रम-कणा म भी एक नय जीवन का सचार कर देता है। हम समझते है कि आरम्भिक अवस्था स हा जब से मनुष्य न अन्न उगाना और काटना सीखा तभी से इस लावनी शब्द का प्रयोग चला आ रहा है। अन्न काटते समय गाये जाने वाले गीता को आरम्भ म लावनी क गीत और तत्पश्चात् लावना नाम स अभिहित किया जाता रहा और तत्पश्चात देश काल स्थान एव सभ्यता भेद से इन गीता म अनेक प्रकार के परिवतन एव परिवधन होते रहे। इन्ही परिवतनो एव परिवधना के विकासक्रम से लावनी का यह वतमान विकसित रूप हमारे समक्ष आ सका है। हाँ, यह सवथा सम्भव है कि य परिवतन आदि किसी काल विशेष म विशेष रहे हो जसे—सम्राट अकबर के समय म विशेष परिष्करणो की अवश्य ही सम्भावना थी क्योकि सम्राट अकबर स्वय एक गायन प्रेमी एव गायको को सत्कार की दृष्टि से देखने वाले बादशाह थ। तानसन जसे प्रसिद्ध गायका का स्थान उनके राज्य म अतीव सम्मान पूवक सुरक्षित था।

हिन्दी साहित्य कोष के भाग १, पृष्ठ ७४३ के अनुसार 'प्राचीन कवियो म हस्तिराम और हरिदास आदि लावनी के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। यद्यपि ये उपरोक्त

'हरिदास' तानसेन के गुरु, स्वामी 'हरिदास' थे तो निश्चय ही 'तानसेन' ने अकबर की देखरेख म 'लावनी' का परिष्करण एव राग निर्धारण किया होगा। क्योंकि 'डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल के अनुसार अकबर स्वय स्वामी हरिदास के दर्शन करने गये थे—'अकबर स्वय तानसेन को स्वामी हरिदास का प्रिय शिष्य जानकर छद्म वेष म उससे (हरिदास से) मिला था। यह घटना सम्वत १६६२ स १६७१ के मध्य किसी समय सम्पन्न हुई थी।'[१] प० रामनरेश त्रिपाठी ने भी इसी घटना को इस प्रकार लिखा है—'अकबर बादशाह भी एक बार तानसेन के साथ भेष बदल कर इनका (हरिदास का) दर्शन करने आये थे।[२] तानसेन वसे तो अपने दीर्घकालीन जीवन म अनेक धार्मिक सम्प्रदायो के सम्पर्क म आये, परन्तु उन्होंने सगीत की शिक्षा स्वामी हरिदास से ही ग्रहण की थी। इस प्रकार का उल्लेख अनेक ग्रन्थो म प्राप्त होता है। इसलिए यह 'लावनी मानव के कृषक जीवन से निकल कर अवश्य ही शनै-शनै अन्य व्यक्तियो के जीवन म प्रवेश कर गई होगी और तत्कालीन परिस्थितियो के अनुसार स्वामी हरिदास द्वारा इगित प्राप्त कर मिया तानसेन ने इसमे (लावनी) समुचित परिवतन एव परिवधन किया होगा। जबलपुर के एक ख्याति प्राप्त वृद्ध लावनीकार, श्री प्रभुदयाल यादव का विचार भी यह है कि लावनी म गायी जाने वाली 'बहर तवील और शिकिस्ता आदि रगतें तानसेन के समय से ही चली आ रही हैं।[३] डा० दीन दयाल गुप्त ने सम्राट अकबर के काव्य प्रम की इस प्रकार पुष्टि की है—

'अकबर के राजत्व काल मे (१५५६ स १६०५ ई०) देश न बहुत समय के बाद सुख शान्ति का समय देखा। अकबर न हिन्दुओ का सहयोग प्राप्त करने के लिए उनकी सस्कृति, उनकी भाषा, उनके साहित्य और उनकी कला को अपनाया। अकबरी दरबार के सरक्षण ने भारतीय विद्या और कला को भारी प्रोत्साहन दिया। उस दरबार मे जहा फारसी और अरबी का मान होता था, वहाँ सस्कृत और हिन्दी का भी आदर हुआ। अकबर ने प्रख्यात गवय, बड बडे विद्वान् और कवियो का अपने दरबार म स्वागत किया। उसका हिन्दी स इतना प्रेम बढा कि वह स्वय हिन्दी म काव्य रचना करने लगा।[४] यह तो अकबर के काव्य प्रम का प्रमाण हुआ। परन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि अकबर बादशाह क्या लोक साहित्य म भी रुचि रखते थे? क्योकि लावनी का स्वरूप उस समय तक साहित्यिक विशेष नही माना जा सकता। इस प्रश्न का उत्तर डा० दीन दयाल ने ही इस प्रकार दिया है— जिस समय भक्ति के स्वतन्त्र क्षेत्र मे तुलसी, परमानन्द और मीरा जसी

---

१ 'अ० द० क हि० क०' पृ० १११
२ क० को० पहला भाग, पृ० २३०
३ एक पत्र द्वारा—दिनाक ६ ८ ६८
४ अ० द० हि० क०—'उपोद्घात पृ० ४

महान विभूतियाँ उत्पन्न हुई, उसी समय अकबर की सरक्षा म नरहरि, गग, रहीम आदि प्रतिभाशाली कवि-पुगव हुए जिन्होंने लौकिक काव्य की रस धारा को पुनर्जीवित किया। इनमे रहीम, ब्रह्म, तानसेन शाही दरबार के नवरत्नो म थे। ये कवि सन्त अथवा भक्त नही थे। उन्होंने अपनी कविता के विषय लोक को अनुभूतियों से चुने थे।[१]

उपरोक्त पुष्ट प्रमाणो से यह भली भाँति स्पष्ट है कि तानसेन आदि (जो अकबर के नव रत्नो म से थे) अपनी कविता के विषय लोक की अनुभूतियो स चुनते थे तो अवश्य ही लावनी' को भी उन्होंने अपना विषय चुना होगा।

प० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि—अकबर स्वय भी कविता करता था। उसकी ये रचनाएँ हैं तो साधारण कोटि की ही पर तु इनमे उसका हिन्दी प्रेम तो प्रमाणित होता ही है।[२]

अकबर की सरक्षा मे रहने वाले कवि 'गग की निम्नलिखित कविता—पक्तियाँ हमने डा० अग्रवाल द्वारा लिखित 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि 'नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ८३२ से ली है। इन पक्तियो के विषय म लावनी' शब्द का तो कही प्रयोग नही किया गया है परन्तु इन्हें स्पष्ट रूप से 'लावनी की रगत 'तवाल' के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है। ये पक्तिया यमुना महिमा शीर्षक से इस प्रकार हैं—

इक्बार के न्हात पुजापन सों,
लिए जात जहाँ मन की गमना।
मुनि के दुख वद मिटे जियके,
सनकादिक नारद हूँ समना॥
अब यातें यहै व्रत धार वहै
कवि गग कहै सुनि रे मनना।
जमुना जल मन निहारत ही,
जमना जमना जमना जमना॥'

तुजुक जहाँगीरी' मे जहाँगीर ने तानसेन का अपने पिता के दरबार का सव श्रेष्ठ सगीतज्ञ और उच्चकोटि का कवि होने का उल्लेख किया है—

"Of these Poets the Chief was TansenKalawant, who was without a rival in my father s service (in fact there has been no singer like him in any time or age)[३]

इससे यह स्पष्ट है कि ऐसे उच्च कोटि के सगीतज्ञ एव कवि 'तानसेन की वाणी ने लावनी को भी अवश्य ही उपयुक्त स्थान प्रदान किया होगा। उपरोक्त

---

१ अ० द० हि० क०—उपोद्घात पष्ठ ४।
२ हि० सा० इ० पृ० २३८—प० रामचन्द्र शुक्ल।
३ तुजुक जहाँगीरी' वाल्यूम १ पृष्ठ ४१३।

अत्यधिक विवेचन के पश्चात् भी वृद्ध लावनीबाजों द्वारा में प्रचलित 'शाहअली' और 'तुकनगिर' सम्बन्धी किम्वदंति पर यदि हमने किंचित विवेचन न किया तो हमारा यह समस्त विवेचन अपूर्ण ही माना जायेगा। परम्परा से चली आ रही इस उक्ति के अनुसार 'शाह अली' और 'तुकनगिर' से ही लावनी के परिष्कृत रूप का संचालन हुआ था। लावनी के अन्य अनेक कलगी, तुर्रा आदि अंग हैं जिन पर आगे चलकर, इसी परिच्छेद में विचार किया जायगा। 'कलगी' और 'तुर्रा' दोनों ही मतावलम्बियों में यद्यपि शाह अली और तुकनगिर सम्बन्धी भिन्न भिन्न धारणाएँ एवं वार्ताएं प्रचलित हैं, तथापि शाह अली तुकनगिर दोनों का ही सम्राट् अकबर के समय में होना दोनों ही समानरूप से स्वीकार करते हैं। परन्तु वे दोनों ही अपने अपने ढंग से भिन्न भिन्न वार्ताएँ प्रस्तुत करते हैं। तुर्रे वाला का मत है—अकबर के नव रत्नों के अतिरिक्त अन्य कवियों में शाह अली नामक एक कवि था, जो बेगम साहबा को लावनियाँ सुनाया करता था। उसी समय एक अन्य कवि तुनकगिर नाम से भी था, जो लावनीबाजी करता था। किसी समय इन दोनों में हुई सुन्दर लावनी प्रतियोगिता से प्रसन्न होकर महाराज अकबर ने अपने शीश से उतार कर शाह अली को 'कलगी' और तुकनगिर को तुर्रा दे दिया तभी से यह लावनी विशेष रूप से तुर्रे और कलगी के नाम से प्रचलित हुई।

कलगी वाला के मतानुसार—किसी समय शाह अली नामक एक शायर (कवि) एवं संगीतज्ञ शाह अरब के संरक्षण में रहता था, उसके दो पुत्र भी उसी की देखरेख के कारण अच्छे संगीतज्ञ एवं गायक हो गए, परन्तु शाहअली की मृत्यु के पश्चात वे दोनों भ्राता अतीव शोकमग्न हो पृथक्-पृथक् मार्गों से इच्छानुसार अन्यत्र चले गए। उनमें से एक ने संत तुकनगिर से सम्पर्क कर हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया और दूसरा उसी रूप में घूमता फिरता रहा। अन्त में पर्याप्त समय के पश्चात् वे दोनों संयोगवश, अकबर की कला प्रियता को श्रवण करके अकबर के दरबार में आए और वहाँ सम्राट अकबर ने प्रसन्न होकर हिन्दू बने हुए लड़के को अपने शीश से उतार कर तुर्रा और दूसरे लड़के को लावनी प्रदान की। तभी से लावनी तुर्रा और कलगी' नामों से प्रचलित हुई। इन दोनों घटनाओं के अतिरिक्त अन्य भी इसी प्रकार की अनेक घटनाएं लावनीबाजों द्वारा में प्रचलित हैं परन्तु मुख्य रूप से इन्हीं उपरोक्त दो घटनाओं का वर्णन किया जाता है जिसमें से प्रथम घटना सत्यता के अधिक निकट प्रतीत होती है। डा० अग्रवाल ने एक स्थान पर यह तो लिखा है कि अकबर की कलाप्रियता को सुनकर कला-कोविद देश के प्रत्येक कोने से उसके दरबार में आया करते थे परन्तु उन्होंने कहीं भी शाह अली और तुकनगिर का नाम नहीं लिया—वे

---

१ अ० द० हि० ख० पृष्ठ १२।

लिखते हैं— 'अकबरी दरबार के वैभव की प्रशंसा सुनकर देश के प्रत्येक कोने से कलाविद् अपनी-अपनी कला में समुचित सम्मानार्थ दरबार में उपस्थित हुए थे। कवि, चित्रकार संगीतज्ञ, वास्तुकार सभी को उचित सम्मान मिला था। हिन्दी के कवियों को भी दरबार में स्थान दिया गया था जिसका उल्लेख सम्प्रदाय-ग्रन्थों वार्ता-साहित्य समकालीन कवियों की रचनाओं, ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा हस्तलिखित ग्रन्थों में मिलता है। सम्भव है उस समय तानसेन आदि के समकक्ष ये शाह अली और तुकनगिर विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त न कर सके हों और तत्पश्चात् उनके शिष्यों में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हो गई हो, अथवा यह भी सम्भव है कि अकबर की कलाप्रियता का श्रवण करके आने वाले इन सन्त कवियों ने अकबर दरबार से तत्पश्चात् विशेष सम्बन्ध न रखा हो और इसीलिए अकबर के दरबारी कवियों में इनके नाम की गणना न की गई हो। कुछ इसी प्रकार का संकेत डा० अग्रवाल ने भी इसी ग्रन्थ में आगे चलकर इस प्रकार किया है— इन सब हिन्दी कवियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो दरबार में स्थायी रूप से रहने वाले कवि थे इनमें राजकीय वृत्ति में लगे हुए स्वान्तः सुखाय रूप में कविता करने वाले कई साधारण और उच्च पदाधिकारी भी थे। दूसरी श्रेणी के कवियों का दरबार में आना-जाना तो था किन्तु उनसे सीधा सम्बन्ध नहीं था।'[1]

सम्भव है ये तुकनगिर और शाह अली दूसरी श्रेणी में रहे हों।

इस प्रकार उपरोक्त विशद विवेचन के पश्चात् हम निश्चित मत पर पहुँचते हैं कि लावनी का आरम्भ मानव के कृषि जीवन से हुआ और शनैः शनैः विकासशीलता की ओर अग्रसर होते हुए स्वामी हरिदास, मियाँ तानसेन एवं उनके समकालीन सन्त तुकनगिर और शाह अली के सम्पर्क से परिष्कृत रूप प्राप्त कर यह लावनी जनता के आकर्षण का कारण बनी। यद्यपि अमीर खुसरो और सन्त कबीर की कविताओं में भी (जो सन्त तुकनगिर, शाह अली और मियाँ तानसेन के पूर्ववर्ती थे) लावनी के दर्शन होते हैं तथापि परिष्करण की दृष्टि से लावनी के मुख्य अध्येता के रूप में हम स्वामी हरिदास, मियाँ तानसेन और सन्त तुकनगिर तथा शाह अली को स्वीकार करते हैं, क्योंकि लावनीकारों में जहाँ तुकनगिर और शाह अली की विशेष चर्चा है, वहाँ स्वामी हरिदास के नाम से भी लावनीबाजों के अनेक 'दल' और संगठन आजकल भी दृष्टिगोचर होते हैं। मैसूर प्रान्त की राजधानी बेंगलूर में (तथा अन्यत्र भी) श्री हरिदास लावनी साहित्य संघ (रजिस्टर्ड) कन्नड भाषा के लावनीकारों का एक प्रकार का संगठन है।

चतुर्थ अध्याय

लावनी के अग

वस तो विकास क्रमानुसार लावनी अनेक अगो म विकसित हुई और समयानुसार कलगी, तुर्रा, दत्त दुण्डा, मुकुट, सेहरा, मौड, चिडियाँ, अनगढ, छत्तर लश्करी, टक्साली और चेतना नन्दी आदि अगो म इसका विभाजन हो गया, पर तु मुख्य रूप स 'कलगी' और 'तुर्रा दो ही अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं। कही कही दुण्डा और 'अनगढ' भी दृष्टिगोचर हो जाते हैं—हम इन चारो पर पृथक पृथक विहगम दृष्टिपात करेंगे।

कलगी (शक्ति)

एक पक्षी विशेष के पख को 'कलगी' की सज्ञा दी गई है। प्राय मुसलमान बादशाह इस अपने राजमुकुट मे धारण करना शुभ माना करते थे। सम्भवत इसी धारणा के अनुसार आधुनिक काल म उत्तर भारत म विवाह आदि उत्सवो पर वर' के मुकुट मे 'कलगी' लगाई जाती है। उपराक्त विवेचन से यह नातथ्य है कि महान सम्राट अकबर ने 'शाहअली' को अपने मुकुट से 'कलगी उतार कर भेंट की थी परिणामस्वरूप शाहअली तथा उनके शिष्य प्रशिष्य आदि कलगी सम्प्रदाय से सम्बन्धित कहलाय। आजकल भी 'कलगी वालो के नाम से य लावनीकार समस्त भारत म अपनी इसी परम्परा के अनुसार ख्याति अर्जित कर रहे हैं।

'कलगी-सम्प्रदाय क लावनीकारो का विचार है कि 'ईश्वर' एक 'शक्ति के रूप म इस विश्व का नियमन करता है। इस 'शक्ति' क बिना 'जीव की अपनी पृथक स कोई सामर्थ्य एव सत्ता नही है। इस 'शक्ति' के द्वारा ही इस विश्व का जन्म, पोषण एव सहार होता है। यदि यह 'शक्ति नही तो विश्व भी नही रह सकता। 'जीव इसी शक्ति की प्राप्ति हतु अनेक प्रकार की भक्ति भावना, भजन-पूजन आदि करता है। इस सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता यह है कि ये लोग इस शक्ति' को स्त्री रूप' म मानते हैं। इस 'स्त्री रूपी' शक्ति को 'माशूक और 'जीव को इसका आशिक कहते हैं। इनका विचार है कि जब तक आशिक अपना सर्वस्व न्यौछावर नही कर देता तब तक उस 'माशूक' क दर्शन नही हो सकते। आशिक और माशूक के इस प्रेम-पाश को इश्क का नाम दिया गया है। उनका विचार यह है कि यह 'माशूक'-

लिखते हैं—'अकबरी दरबार के वैभव की प्रशंसा सुनकर देश के प्रत्येक कोने से कलाविद् अपनी-अपनी कला के समुचित सम्मानार्थ दरबार में उपस्थित हुए थे। कवि, चित्रकार संगीतज्ञ वास्तुकार सभी को उचित सम्मान मिला था। हिंदी के कवियों को भी दरबार में स्थान दिया गया था, जिसका उल्लेख संग्रह-ग्रंथों, वार्ता-साहित्य, समकालीन कवियों की रचनाओं, ऐतिहासिक ग्रंथों तथा हस्तलिखित ग्रंथों में मिलता है। सम्भव है उस समय तानसेन आदि के समकक्ष ये शाह अली और तुकनगिर विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त न कर सके हों और तत्पश्चात् उनके शिष्यों से उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हो गई हो, अथवा यह भी सम्भव है कि अकबर की कलप्रियता को श्रवण करके आने वाले इन उक्त कवियों ने अकबर दरबार से तत्पश्चात् विशेष सम्बन्ध न रक्खा हो और इसीलिए अकबर के दरबारी कवियों में इनके नाम की गणना न की गई हो। कुछ इसी प्रकार का संकेत डा० अग्रवाल ने भी इसी ग्रंथ में आगे चलकर इस प्रकार किया है—'इन सब हिंदी कवियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो दरबार में स्थायी रूप से रहने वाले कवि थे इनमें राजकीय वृत्ति में लगे हुये स्वान्तः सुखाय रूप में कविता करने वाले कई साधारण और उच्च पदाधिकारी भी थे। दूसरी श्रेणी के कवियों का दरबार में आना जाना तो था किंतु उससे सीधा सम्बन्ध नहीं था।'[1]

सम्भव है ये तुकनगिर और शाह अली दूसरी श्रेणी में रहे हों।

इस प्रकार उपरोक्त विशद विवेचन के पश्चात् हम निश्चित मत पर पहुँचते हैं कि लावनी का आरम्भ मानव के कृषि जीवन से हुआ और शनैः शनैः विकासशीलता की ओर अग्रसर होते हुए स्वामी हरिदास, मियां तानसेन एवं उनके समकालीन सन्त तुकनगिर और शाह अली के सम्पर्क से परिष्कृत रूप प्राप्त कर यह लावनी जनता के आकर्षण का कारण बनी। यद्यपि अमीर खुसरो और सन्तकबीर की कविताओं में भी (जो सन्त तुकनगिर, शाह अली और मियां तानसेन के पूर्ववर्ती थे) लावनी के दर्शन होते हैं तथापि परिष्करण की दृष्टि से लावनी के मुख्य अध्येता के रूप में हम स्वामी हरिदास, मियां तानसेन और सन्त तुकनगिर तथा शाह अली को स्वीकार करते हैं, क्योंकि लावनीकारों में जहां तुकनगिर और शाह अली की विशेष चर्चा है, वहां स्वामी हरिदास के नाम से भी लावनीबाजों के अनेक 'दल' और संगठन आजकल भी दृष्टिगोचर होते हैं। मैसूर प्रान्त की राजधानी बेंगलूर में (तथा अन्यत्र भी) श्री हरिदास लावनी साहित्य संघ (रजिस्टर्ड) कन्नड भाषा के लावनीकारों का एक प्रकार का संगठन है।

---

१ '–वही–

चतुर्थ अध्याय

लावनी के अंग

वसे तो विकास क्रमानुसार लावनी अनेक अगो म विकसित हुई और समया नुसार कलगी, तुर्रा, दत्त, दुन्डा, मुकुट सेहरा मौड, चिडियाँ, अनगढ, छत्तर, लश्करी, टक्साली और चेतना नन्दी आदि अगो मे इसका विभाजन हो गया परन्तु मुख्य रूप से कलगी' और 'तुर्रा' दो ही अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं। कहीं-कहीं दुण्डा' और 'अनगढ' भी दृष्टिगोचर हो जाते हैं—हम इन चारा पर पृथक पृथक् विहगम दृष्टिपात करेंगे।

कलगी (शक्ति)

एक पक्षी विशेष के पख को 'कलगी' की सज्ञा दी गई है। प्राय मुसलमान बादशाह इसे अपने राजमुकुट मे धारण करना शुभ माना करते थे। सम्भवत इसी धारणा के अनुसार आधुनिक काल म उत्तर भारत म विवाह आदि उत्सवा पर 'वर' के मुकुट म 'कलगी' लगाई जाती है। उपरोक्त विवेचन से यह ज्ञातव्य है कि महान सम्राट अकबर न 'शाहअली' को अपन मुकुट से 'कलगी' उतार कर भेंट की थी, परिणामस्वरूप शाहअली तथा उनके शिष्य प्रशिष्य आदि कलगी सम्प्रदाय से सम्बधित कहलाय। आजकल भी 'कलगी वाला' के नाम से ये लावनीकार समस्त भारत म अपनी इसी परम्परा के अनुसार ख्याति अर्जित कर रहे हैं।

कलगी-सम्प्रदाय' के लावनीकारा का विचार है कि 'ईश्वर' एक 'शक्ति' के रूप मे इस विश्व का नियमन करता है। इस 'शक्ति' के बिना 'जीव' की अपनी पृथक से कोई सामर्थ्य एव सत्ता नही है। इस 'शक्ति' के द्वारा ही इस विश्व का जन्म, पोषण एव सहार होता है। यदि यह 'शक्ति' नही तो विश्व भी नही रह सकता। 'जीव' इसी शक्ति की प्राप्ति हेतु अनेक प्रकार की भक्ति भावना, भजन-पूजन आदि करता है। इस सम्प्रदाय का प्रमुख विशेषता यह है कि ये लोग इस 'शक्ति' को स्त्री रूप' म मानते हैं। इस 'स्त्री रूपी' शक्ति को माशूक और 'जीव' को इसका आशिक कहते हैं। इनका विचार है कि जब तक आशिक अपना सर्वस्व न्योछावर नहीं कर देता तब तक उसे 'माशूक' के दर्शन नही हो सकते। आशिक और माशूक के इस प्रेम-पाश को इश्क का नाम दिया गया है। उनका विचार यह है कि यह 'माशूक'

आशिका की जननी है पत्नी नही । क्योंकि ईश्वर ही इस समस्त विश्व का जनक है—इस समग्र ससार का उत्पन्नकर्ता है, वह जीव की 'पत्नी' कैसे हो सकता है ? इस कलगी-सम्प्रदाय म हिन्दू और मुसलमान दोना ही अतीव उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं परन्तु मुख्य रूप म मुसलमाना ने ही इस मत' को अधिक अपनाया है। आगे चल कर लश्करी, टकमाली और चिडिया आदि अनेक मता म इस सम्प्रदाय का विभाजन हो गया और इसी विभाजन के अनुसार इनकी मान्यताओं म भी अन्तर आ गया। जसे इन उपशाखाओ म यह मान्यता पाई जाती है कि शक्ति ब्रह्म की सहचरी है और 'शक्ति' के सहयोग से ब्रह्म इस ससार की उत्पत्ति आदि करता है। इसी अन्तर के अनुसार अनेक कलगी वाले 'ईश्वर को 'पुरुष रूप' म देखने लगे। इस प्रकार ये लोग ईश्वर को पुरुष रूपी और 'स्त्री रूपी दोनो ही रूपो म मान कर चलते है । मुख्यतया इनका कहना है कि भगवान को स्त्री रूप म भजो या पुरुष रूप म प्रमुखता तो प्रेम की है । यदि हमारी सच्ची लौ सच्चा प्रेम ईश्वर से हो तो हमे उस निर्गुण सत्य ब्रह्म एव शक्ति के दर्शन अवश्य होगे ।

इस पर भी इनकी मान्यता के अनुसार वह सत्य ब्रह्म चाहे स्त्री है या पुरुष पर वह है निर्विकार एव अदृष्ट 'कलगी' वालो के अनुसार कलगी वह शक्ति, तुर्रे की माता है जननी है ।

तुर्रा (ब्रह्म)

तुर्रा एक प्रकार का सुन्दर कुसुम होता है जो महान सम्राट अकबर अपने मुकुट पर कलगी के दाई और लगाते थे । सम्राट अकबर ने तुकनगीर महाराज को तुर्रा भेंट किया था, एतदर्थ उनके शिष्य प्रशिष्य आदि तुर्रा मतावलम्बी कहलाते हैं। लौकिक दृष्टि से मुकुट म कलगी के दाई और तुर्रा लगाये जाने के कारण तुर्रा मतावलम्बी इसे (तुर्रे को) कलगी' का पति मानते हैं क्योकि व्याकरण की दृष्टि से भी तुर्रा पुलिंग और कलगी स्त्रीलिंग है और भारतीय सामाजिक परम्परानुसार स्त्री का स्थान बाईं और पुरुष का स्थान दाइ ओर होता है ।

हमारा विचार है कि आरम्भ म इस प्रकार की मान्यता का आधार केवल विनोदशीलता हो रहा होगा । तत्पश्चात् शनै शनै लोग अपने विचारो की दृढता प्रदर्शन हेतु एक दूसरे की प्रतियोगिता की दृष्टि से देखने लगे होंगे । आजकल भी, जब कभी लावनी के अच्छे सुनियोजित दगल होते हैं तब विनोदप्रियता की दृष्टि से 'तुर्रे वाले' कलगी वालो को लडकी वाले इस प्रकार कहने मे कोई सकोच नही करते । यह तो हुई लौकिक वार्ता परन्तु धीरे धीरे इस लौकिकता ने धार्मिक चोगा पहन कर तुर्रे वालो से यह कहलवाया कि तुर्रा ब्रह्म है—जो अलख अगोचर, परन्तु चेतन है और यह कलगी माया है। तुर्रा चेतनस्वरूप ब्रह्म होने के कारण

मायारूपी कलगी पर अपना आधिपत्य जमाए हुए है, एतदर्थ 'तुर्रा 'कलगी' का पति है—लावनीकार इसे इस प्रकार कहते हैं—

'वही अलख चेतन 'तुर्रा है तेज कला कलगी का पती' 'तुर्रा मतावलम्बियो म भी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समानभाव से मिलते हैं, परन्तु तुकनगिर महाराज हिन्दू थे। एतदथ तुर्रे वालो म हिन्दू लावनीकार ही अधिक सख्यक हैं।

स्पष्ट ही है कि 'तुर्रे के लोग ब्रह्म म पुरुष रूप क दशन करते हैं। परन्तु इनम भी कालक्रमानुसार मुकुट माड, दत्त सेहरा आदि अनेक शाखा प्रशाखा हो जाने के कारण इनकी मान्यताओ म भी अन्तर आता गया और इनका विचार भी अब यह है कि तुर्रा' है तो ब्रह्म जा माया का पति है परन्तु अलख अगोचर होने के कारण उसका कोई रूप निर्धारित नही किया जा सकता। इसे हम स्त्री रूप या पुरुष रूप किसी भी रूप मे देखें। इस दृष्टि से हम तुर्रा और 'कलगी म भी मतक्य पाते है परन्तु फिर भी वे दानो ही एक दूसरे के विपक्षी हैं और तुर्रे वाले तुर्रे 'कलगी का पति अर्थात कलगी' को ब्रह्म की पत्नी स्वरूप माया और शिव की पत्नी-स्वरूप पार्वती या शक्ति बताते हैं और कलगी वाले तुर्रे को शक्ति रूपी कलगी का जीव रूपी पुत्र कहते,हैं अथवा उनका कथन है कि माया म लिप्त होने के कारण भी जीव अल्पज्ञ है और यह जीव ही तुर्रा' है जा कलगी' का पुत्र है। इस पर तुर्रे वाला का कहना है कि—यदि हम तुर्रे को कलगी का पुत्र मान लें तो भी अन्त म कोई न कोई (कलगी का) पति तो स्वीकार करना ही होगा। बिना पति के पुत्र प्राप्ति कम हो सकती है? इस पर कलगी मतावलम्बी कलगी को 'सती' साध्वी बताकर उसे बिना ही पति क सवन प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं। परन्तु तुर्रे' वाले उनसे पुन इस प्रकार प्रश्न करते हैं—

'माया मे है ब्रह्म ब्रह्म मे माया है सुन मूढ़मती,
बिना ब्रह्म के बता हमें तू अलग कहाँ तक रही सती॥

इसी से अन्त म लावनीकार कहता है—

'तू कहता है कलगी को, कलगी तुर्रे की माता है।
पति कौन फिर कलगी का, क्यों तू नहीं बताता है॥[1]

इस प्रकार तुर्रा और कलगी' का परस्पर अनेक प्रकार से प्रतियागात्मक विवेचन जनता का आकषण बिन्दु बन जाता है। कई प्रकार लावनीकार 'तुर्रा और कलगी दोना से ऊपर उठकर अपनी भक्ति की प्रगाढता का इस प्रकार वणन करता है—

---

१ लावनी तुर्रा ह० लि० प्रति कवि कविता गिर की लावनी।

किसी का बनना 'कलगी' 'तुर्रा', ये नहिं गाना है।
फक्त देखलो, यहा पर 'निगु ण' गुण का गाना है।।
कम अक्लो ने कम अक्ली कर माया कलगी बनाई।
ब्रह्म को तुर्रा, जौन कहते वह तो हैं सौदाई।।
माया तो है निराकार नहिं देय किसी को दिखलाई।
वो ही ब्रह्म है कि जिसकी थाह किसी ने नहीं पाई।।
तुर्रे वाले कहते हैं, कलगी को तुर्रे की लुगाई।
कलगी वाले कहें तुर्रे की कलगी है माई।।
ये तो हैं सब झूठे हमने सच्चे को पहिचाना है।
फक्त देख लो, यहां पर निगु ण गुण का गाना है।। १ ।।

क्या गाते पाखण्डी को, कलगी-तुर्रा भी मिट जावेगा।
अनघड, छत्तर और बुडा भी कोई नहीं गावेगा।।
माया ब्रह्म की निंदा करता फिर पीछे पछतावेगा।
लख चौरासी योनि से तब कहो कौन बचावेगा।।
शिव शक्ति को एक समझता वह ज्ञानी कहलावेगा।
भव सागर के पार हो परम धाम को पावेगा।।
हमने उसका किया भजन, सब अपने को पहिचाना है।
फक्त देखलो, यहां पर निगु ण गुण का गाना है।।[1]

इस प्रकार 'तुरा और 'कलगी' दोनो ही पथक-पथक सम्प्रदाय होत हुए भी निगु ण ब्रह्म या शक्ति म आस्था रखन क कारण एक है और 'निगुण' की दृष्टि स एक होने हुए भी ब्रह्म और जीव, माया और शक्ति आदि के विवचनात्मक दृष्टिकोण मे सवथा भिन्न हैं। दगल म गात समय दोनो ही (तुर्रा और कलगी) पथक-पृथक दो दलो म बठ कर गाते है। दक्षिण भारत के लावनीकारो म तुर्रा-कलगी भेद द्योतनाथ तुर्रे वाले अपन मस्तक पर एक छोटी टिक्की या बेंदी लगा लते हैं। उत्तर भारत म इस प्रकार बेंदी लगाने की प्रथा नही है।

टुण्डा

दुण्डा को टूण्डा, या डूण्डा आदि भी (उच्चारण भद से) बाला जाता है। वास्तव म यह 'टुण्डा' शब्द दण्डा का अपभ्रंश प्रतीत होता है क्योकि इसके मतावलम्बियो म एक दण्ड डण्डा' रखन की प्रथा है। प्राचीन समय म तुर्रा और कलगी की प्रति स्पर्धा म जब लावनी गाते गाते अत्यधिक समय व्यतीत हो जाता था और एक-दूसरे

---

[1] लावनी-कलगी-बनारसी हक्कानी द्वारा लिखित 'लावनी पृष्ठ ४३।

को पराजय नही कर पाते थे तब एक व्यक्ति 'दण्ड हाथ म लिए आकर उन दोनों पक्षा के मध्य बठ लावनी गाता था और बार बार उस डण्डे की ओर सकेत करके अनेक ढग स यह प्रतिपादन करने की चेष्टा करता था कि तुर्रा और कलगी दोना ही व्यर्थ म लडते हैं—वास्तव म तो ईश्वर एक अनादि ब्रह्म है। जस—मेरे हाथ का यह 'डड एक है वह ब्रह्म भी एक ही है और वह ब्रह्म तुर्रा है—कभी वही व्यक्ति कहता—जसे समस्त विश्व की शक्ति इस 'दंड' म है अर्थात् इस 'दण्ड' के द्वारा सारे विश्व को वश म किया जा सकता है इसलिए यही एक महान 'शक्ति' है—और वह महान शक्ति है कलगी। इस प्रकार वह कभी 'तुर्रे' को ओर कभी कलगी को श्रेष्ठ बताकर उनके विवाद को समाप्त करा देता था। दूसरे शब्दा मे हम 'डुडे को कलगी और तुर्रे का निर्णायक या सम्पर्क-सूत्र भी कह सकते हैं। आजकल 'डुडा' विशेष प्रचलित नहीं है। 'डुड क साथ म 'दड धारण से हम इसे नाथा और सिद्धा की परम्परा का द्योतक भी मान सकते हैं। हमार विचार म आजकल इसका अधिक प्रचलन न होने के कारण भी नाथा और सिद्धा की परम्परा का क्षय होना ही है। क्योकि ज्या-ज्या नाथा और सिद्धा म पाखण्ड का प्रवेश होना गया त्यो त्या उन पर से लोगा का विश्वास उठता गया। इसी प्रकार डूडे' के प्रति भी लोगा ने पक्षपाती होने का आराप लगाया होगा और धीरे धीरे इसका लोप होता गया होगा।

अनगढ

'अनगढ' वास्तव म तो 'अनगढ ही है, परन्तु इस उच्चारण भेद म 'अनगढ' भी कहा जाता है। इसका सीधा एव सरल अर्थ—अन+गढ, अर्थात् बिना गढ़ा हुआ या बिना घडा हुआ है। बिना घडा हुआ से अभिप्राय है—जो बनाया हुआ न हो या जो भली भाँति बनाया हुआ न हो। 'घडना' शब्द वसे तो पीटना, बनाना, सुन्दरता से बनाना आदि अनेक अर्थों म प्रयुक्त होता है परन्तु साधारणतया किसी बनी हुई वस्तु को ही अधिक सुन्दर बनाने को घडना कहा जाता है। इस दृष्टि से 'अनघड का अर्थ स्पष्ट है कि—जो सुन्दरता से बना हुआ न हो उसे 'अनगढ या अनगढ' कहते हैं। अब प्रश्न यह है कि उस सम्प्रदाय म इस शब्द का प्रवेश कसे हुआ ?

वास्तव म लावनीकार जिस समय गाता है, उसके पास एक वाद्य विशेष होता है जिसे 'चग कहते हैं। यह चग प्राय आकार म गोल और भली भाँति सुन्दरतापूर्ण ढग से बनाया हुआ होता है परन्तु 'आघड' सम्प्रदाय के लोगा का चग गोल नहीं अपितु तीन कोणा का होता है जो वास्तव म भी बिना घडा हुआ-सा प्रतीत होता है। इस सम्प्रदाय क लोगा का चग 'अनघड' होने के कारण इस सम्प्रदाय का भी नाम अनघड' या 'अनगढ' प्रसिद्ध हो गया। वस 'कलगी' तुर्रा आदि की भाँति

'किसी का बनना 'कलगी' 'तुर्रा', ये नहिं गाना है।
फक्त देखलो, यहाँ पर निगु ण' गुण का गाना है॥
कम अक्लों ने कम अकली कर, माया कलगी बनाई।
ब्रह्म को तुर्रा, जौन कहते वह तो है सौदाई॥
माया तो,है निराकार नहिं देय किसी को दिखलाई।
वो ही ब्रह्म है, कि जिसकी थाह किसी ने नहीं पाई॥
तुर्रे वाले कहते ह, कलगी को तुर्रे की लुगाई।
कलगी वाले कहें तुर्रे की कलगी है माई॥
ये तो हैं सब झूठे हमने सच्चे को पहिचाना है।
फकत देख लो यहाँ पर निगु ण गुण का गाना है॥ १॥

क्या गाते पाखण्डी को, कलगी-तुर्रा भी मिट जावेगा।
अनघड छत्तर और कुडा भी कोई नहीं गावेगा॥
माया ब्रह्म की निन्दा करता फिर पीछे पछतावेगा।
लख चौरासी योनि से, तब कहो कौन बचावेगा॥
शिव शक्ति को एक समझता वह ज्ञानी कहलावेगा।
भव सागर के पार हो परम धाम को पावेगा॥
हमने उसका किया भजन, तब अपने को पहिचाना है।
फक्त देखलो यहाँ पर निगु ण गुण का गाना है॥'[1]

इस प्रकार 'तुर्रा' और 'कलगी' दोनों ही पृथक-पृथक सम्प्रदाय होते हुए भी निगु ण ब्रह्म या शक्ति में आस्था रखने के कारण एक है और 'निगु ण' की दृष्टि से एक होते हुए भी ब्रह्म और जीव, माया और शक्ति आदि के विवेचनात्मक दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न हैं। दंगल में गाते समय दोनों ही (तुर्रा और कलगी) पृथक-पृथक दो दलों में बैठ कर गाते हैं। दक्षिण भारत के लावनीकारों में तुर्रा-कलगी भेद द्योतनार्थ तुर्रे वाले अपने मस्तक पर एक छोटी टिक्की या बेंदी लगा लेते हैं। उत्तर भारत में इस प्रकार बेंदी लगाने की प्रथा नहीं है।

टुण्डा

दुण्डा को दूण्डा या ढूण्डा आदि भी (उच्चारण भेद से) बोला जाता है। वास्तव में यह दुण्डा शब्द 'दण्डा' का अपभ्रंश प्रतीत होता है क्योंकि इसके मतावलम्बियों में एक दण्ड' डण्डा रखने की प्रथा है। प्राचीन समय में तुर्रा और कलगी की प्रतिस्पर्द्धा में जब लावनी गाते गाते अत्यधिक समय व्यतीत हो जाता था और एक-दूसरे

१ लावनी—कलगी—बनारसी हक्कानी द्वारा लिखित 'लावनी' पृष्ठ ४३।

को पराजय नही कर पाते थे तब एक व्यक्ति 'दण्ड' हाथ म लिए आकर उन दोनो पक्षो के मध्य बठ लावनी गाता था और बार बार उस डण्डे की ओर सकेत करके अनेक ढग से यह प्रतिपादन करने की चेष्टा करता था कि तुर्रा और कलगी दोनो ही व्यथ म लडते हैं—वास्तव म तो ईश्वर एक अनादि ब्रह्म है। जैसे—मेरे हाथ का यह 'डण्ड' एक है वह ब्रह्म भी एक ही है और वह ब्रह्म तुर्रा है—कभी वही व्यक्ति कहता—जैसे समस्त विश्व की शक्ति इस 'दण्ड' म है अर्थात इस 'दण्ड' के द्वारा सारे विश्व को वश म किया जा सकता है, इसलिए यही एक महान 'शक्ति' है—और वह महान शक्ति है कलगी। इस प्रकार वह कभी 'तुर्रे' की ओर कभी 'कलगी' को श्रेष्ठ बताकर उनके विवाद का समाप्त करा देता था। दूसरे शब्दो म हम 'दुडे' को कलगी और तुर्रे का निर्णायक या सम्पर्क-सूत्र भी कह सकते है। आजकल 'दुडा' विशेष प्रचलित नही है। 'दुडे' के साथ म 'दण्ड' धारण से हम इसे नाथो और सिद्धो की परम्परा का द्योतक भी मान सकते हैं। हमारे विचार स आजकल इसका अधिक प्रचलन न होने के कारण भी नाथो और सिद्धो की परम्परा का क्षय होना ही है। क्योकि ज्यो-ज्यो नाथो और सिद्धो म पाखण्ड का प्रवेश होता गया त्यो त्यो उन पर से लोगो का विश्वास उठता गया। इसी प्रकार 'दूंडे' के प्रति भी लोगो ने पक्षपाती होने का आरोप लगाया होगा और धीरे धीरे इसका लोप होता गया होगा।

अनगढ

'अनगढ' वास्तव मे तो 'अनगढ' ही है, परन्तु इसे उच्चारण भेद से 'अनगढ' भी कहा जाता है। इसका सीधा एव सरल अर्थ—अन+गढ, अर्थात् बिना गढा हुआ या बिना घडा हुआ है। बिना घडा हुआ से अभिप्राय है—जो बनाया हुआ न हो या जो भली भाँति बनाया हुआ न हो। 'घडना' शब्द वैसे तो पीटना, बनाना, सुन्दरता स बनाना आदि अनेक अर्थो म प्रयुक्त होता है पर तु साधारणतया किसी बनी हुई वस्तु को ही अधिक सुन्दर बनाने को घडना कहा जाता है। इस दृष्टि स 'अनघड' का अर्थ स्पष्ट है कि—जो सुन्दरता से बना हुआ न हो उसे 'अनगढ' या 'अनगढ' कहते हैं। अब प्रश्न यह है कि उस सम्प्रदाय म इस शब्द का प्रवेश कैसे हुआ ?

वास्तव म लावनीकार जिस समय गाता है, उसके पास एक वाद्य विशेष होता है जिसे 'चग' कहते है। यह चग प्राय आकार म गोल और भली भाति सुन्दरतापूर्ण ढग से बनाया हुआ होता है परन्तु 'अनघड' सम्प्रदाय के लोगो का चग गोल नही अपितु तीन कोणो का होता है जो वास्तव म ही बिना घडा हुआ-सा प्रतीत होता है। इस सम्प्रदाय के लोगो का चग 'अनघड' होने के कारण इस सम्प्रदाय का भी नाम अनघड या अनगढ' प्रसिद्ध हो गया। वैसे 'कलगी', तुर्रा आदि की भाति

य भी निगुण ब्रह्म के ही उपासक होते हैं। पहले तो इस सम्प्रदाय का अत्यधिक प्रचार था परन्तु आजकल इनका पृथक से कोई विशेष प्रचलन नही है। आजकल तो 'कलगी और तुर्रा दो ही विशिष्ट रूप से प्रचलित हैं। जसा कि हमने ऊपर लावनी क अग शीपक म सकेत किया है कि लावनी के अ य भी अनेक अग प्राप्त हैं, परतु उनका आजकल प्रचलन न होन के कारण हम न अधिक विस्तार न करक, केवल तुर्रा 'कलगी, 'दुण्डा और 'अनगढ' विपयक ही कुछ पक्तियाँ दी है।

मरहटी गाना

लावनी को मरहटी गाना भी कहा जाता है। किसी किसी स्थान पर इसे मरहटी गाना' न कह कर मरहटी बाजी कहते हैं। इस नाम से अभिहित किए जान क अनेक कारण हमारे सम्मुख आए है। प० किसनलाल छकडा (एक लावनी कार) ने एक भेंट म हमे परम्परागत जन श्रुति के आधार पर बताया कि तुकनगिर महाराज स्वय मरहटे थे एतदथ लावनी का उद्गम स्थान महाराष्ट या महाराष्ट्रियन तुकनगिर के द्वारा सम्वृद्ध लावनी होने के कारण इसे मरहटीबाजी कहते हैं। प० आसाराम (एक लावनीकार) ने भी अपनी भेंट म हमे इसी प्रकार का सकत दिया। यह तो निश्चित रूप स सत्य है कि महाराष्ट्र म प्राचीन काल से ही लावनी का विशेष प्रचार रहा है और आधुनिक समय म भी वहाँ लावनीकारो की कोई यूनता नही है। आए दिन वहाँ लावनीकारो क दगल होते हैं। यहा तक कि महाराष्ट म स्त्रियाँ भी चग बजाती और लावनी गाती हैं और यह भी सम्भव है कि श्री तुकनगिर जी महाराज का ज म स्थान भी महाराष्ट्र म ही हो, परतु लावनी का आरम्भ महाराष्ट म स्वीकार नही किया जा सकता। इसका आरम्भ तो भारत भर के कृपक समुदाय के खेतो और खलिहानो म हुआ था जसा कि इससे पूव क विवेचन से स्पष्ट है। हा यह माना जा सकता है कि वहाँ विशेष प्रचार होन क कारण ही इस मरहटी बाजी कहा जाने लगा हो। श्री रिद्धकरण (जो 'दादरी म एक प्रसिद्ध लावनीबाज हैं) ने इस मरहटी बाजी के सम्ब ध म हम एक अनूठी बात बताई। उनका कहना है कि—किसी विशेष उत्सव पर कुछ युवक यायामशाला आदि के नाम से जुलूस के आग आगे चल कर कुछ कौतुक विशेष दिखाया करते हैं। उन कौतुका म विशेष रूप स जो ख्याति प्राप्त है वह है प्रज्वलित चक्र म से बार-बार निकलना अर्थात्-व्यायामशाला-अध्यक्ष अपने हाथा म एक बडा चक्र लेकर उसके चारो और अग्नि प्र्ज्वलित करके युवको को एक एक क क्रम स आने का सकेत दता है और युवक अनेक प्रकार से कला प्रदशन करते हुए उस प्रज्वलित चक्र म स निकल कर जनता को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इस चक्र म स निकलने की क्रिया को मरहटीबाजी' भी कहते हैं। लावनी का इग मरहटीबाजी से सम्ब ध

स्थापित करते हुए उन्होंने हमें बताया कि जिस प्रकार उस जलते हुए चक्र में से निकलना कठिन कार्य है, इसी प्रकार लावनीबाजी को समझना भी अतीव दुष्कर है। परन्तु कठिन होते हुए भी जिस प्रकार चक्र में से निकलने के लिए युवकों की होड़ सी लगी रहती है इसी प्रकार लावनीबाजी की प्रतिद्वन्द्विता भी ख्यातिसिद्ध है।

कुछ लावनीकारों के अनुसार इसका सम्बन्ध छत्रपति शिवाजी से है—वे कहते हैं कि जिस प्रकार शिवाजी महाराज अनेक अटकलें लगाकर अपने शत्रु को परास्त कर देते थे उसी प्रकार लावनीकार भी अपने अनेक आलंकारिक प्रयोगों व अन्य अटकलों द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वी को परास्त करने की भरसक चेष्टा करता है, इसीलिए (क्योंकि शिवाजी मरहटे थे) लावनी को भी मरहटी गाना कहते हैं।

हम समझते हैं कि 'लावनी' का वास्तविक नाम तो 'लावणी' ही है परन्तु कालान्तर में इस पर स्थान विशेष का प्रभाव होने के कारण इसे मरहटीबाजी नाम दे दिया गया और अन्य सब बातें अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार लोगों ने अपने अपने ढंग से जोड़ दीं।

रंगबाजी

'रंगबाजी' शब्द अनेक अर्थों में व्यवहृत होता है। उत्तर भारत के वे व्यक्ति जो 'कालर-बादल का सौदा' करते हैं, इस शब्द से भलीभांति परिचित हैं। 'कालर बादल का सौदा' देहली और इसके निकटवर्ती क्षेत्र में विशेष रूप से प्रचलित है। वर्षा ऋतु में कुछ व्यक्ति अपने अपने अनुमानों एवं सूझ-बूझ के आधार पर शर्त बदते हैं कि आज अमुक समय तक वर्षा होगी या नहीं या होगी तो अधिक या न्यून, आदि—इस प्रकार के लोगों को 'रंगबाज' और इस प्रकार के व्यापार या व्यवहार को वे लोग 'रंगबाजी' भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त अपनी मस्ती में मस्त रहने वाले व्यक्तियों को भी 'रंगबाज' कहते हैं। प्रायः सुलफा, गांजा और चरस आदि पीने वाले लोगों को भी 'रंगबाज' कहा जाता है। धीरे धीरे यह शब्द इतना प्रचलित हुआ कि लावनीबाजी के साथ 'रंगबाजी' जुड़ गई और लावनीबाजी को भी 'रंगबाजी' कहा जाने लगा।

महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध लावनी विद्वान ने अपने एक लेख में 'रंगबाजी' का इस प्रकार उल्लेख किया है—इस तरह शृङ्गारिक नृत्य, नाटक, संगीत—तमाशे के (अभिनयात्मक लावनी के) मुख्य भाग हैं इसे 'रंगबाजी' कहते हैं।[1] वास्तव में यह 'रंगबाजी' शब्द हमारी दृष्टि में विविधता का द्योतक है—उपरोक्त वर्णित 'कालर

---

[1] हिन्दी साप्ताहिक 'धर्मयुग' अंक—(२८ ७ १९६८), पृष्ठ १८ शीर्षक 'लावणी एवं मराठी शृंगारिक नृत्य—लेखक श्री घाड़।

सच्ची लो नगानी चाहिए । इस प्रकार भगवान के रगा की विविधता और लावनी वाजी तथा रगबाजी का सम्बन्ध स्पष्ट ही सिद्ध है ।

खयालबाजी

वास्तव म 'खयाल' शब्द का अर्थ होता है । 'विचार जिस समय मन मे किसी प्रकार का विचार आता है तब कहा कि 'मुझे' उस समय इस बात का खयाल आया । 'खयाल' या विचार को दो भागा म बाट सकते हैं—(१) साधारण और (२) विशेष—साधारण ख्याल—के लिए यह कह सकते हैं—कभी जब हम साधारण तया कोई भूली हुई बात स्मरण हो आती है, तब हम कहते हैं—'ओह ! मैं तो भूल ही गया था, 'ख्याल ही नही रहा । कई बार वार्तालाप के मध्य भी कहा जाता है–'भाई' तुम्हरा खयाल किधर है ? आदि-आदि—

विशेष खयाल—जब हम विशेष रूप से विचारमग्न होकर कोई दार्शनिक बात कह जाते हैं तब कहा जाता है—'आह ! अमुक व्यक्ति के कितने ऊँचे 'खयाल' हैं ? जब कभी हम किन्ही विशेष विचारा म मग्न हो बठे रहते हैं और कोई हम देख लेता है तो कहा जाता है—'अमुक व्यक्ति अपनी 'खयाला की दुनियाँ (विचारा का विश्व) सजाये बठा है—आदि-आदि ।

'लावनी का उद्भव और विकास तथा 'मरहटी गाना आदि शीर्षका मे हमने भली भाँति स्पष्ट किया है कि इस विशेष प्रकार के गाने का (लावणी का) आरम्भिक नाम 'लावणी ही सम्भव है, जो आज तक 'लावनी' और 'लावणी' उच्चारण भेद से भारत के प्राय समस्त भागो मे प्रचलित है परन्तु समय-समय पर अनेक प्रकार की विचारधाराआ के समावेश के कारण इसके (लावणी) साथ साथ ही अन्य नाम भी बोले जाने लगे जिन म खयाल' ही विशेष प्रचलित हुआ ।

'खयाल शब्द विषयक हमारी मान्यता इस प्रकार है–'जिस समय 'लावणी' ने कृषका के व्यस्त जीवन से निकल कर अनेक विचारशील एव स त महात्माओ से अपना सम्पर्क स्थापित किया उसी समय मे इसम (लावणी मे) विशेष विचारो एव खयाला का पुट आया और इसम विचारपूर्ण एव कविताएँ रची जाने लगी । इस समय तक 'लावणी का अत्यधिक प्रचार एव प्रसार हो चुका था और यह जन जन के मन का आकर्षण केन्द्र बन चुकी थी । उस समय कुछ विचारशील व्यक्तिया का भी लावणी की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था । अनेक विचारशील व्यक्तियो के सम्पर्क के फलस्वरूप 'लावणी ने खयालो की दुनिया' (विचार विश्व) म प्रवेश किया और इसे (अनेक विशिष्ट विचारधाराआ म बधी हुई होने के कारण) खयालबाजी' नाम से अभिषिक्त किया जाने लगा । राजस्थान मे 'ख्याल शब्द तमाशे या अभिनय आदि

हृदया के लिए भी प्रचलित है, लावनी म भी 'अभिनय' आदि का समावेश हो जाने के कारण इसे 'खयाल' कहा जाना सम्भव है। यद्यपि आजकल भी किसी विशेष दगल आयोजन के समय 'लावणी' नाम से ही आयोजन होता है तथापि 'खयाल शब्द का का भी प्रचलन अच्छा है—कुछ लावणीकारो (खयालकारो) द्वारा 'खयाल' शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है—

शम्भूदयाल के सुन खयाल
वादी के उडे हवास सखी।
जावदजवान मरदान बडे,
दुश्मन का करते ग्रास सखी॥[1]

'खयाल' शब्द के प्रयोग का एक और उदाहरण प्रस्तुत है—

"यकीन है अब करवा लोगे,
खब्बत अकल दगल के बीच।
दूँ झटके निगुन के मिया,
मत बहुत उछल दगल के बीच॥
॥ टेक ॥ कर दूँगा मै अभी 'ख्याल तेरे को कतल,
दगल के बीच।
बेखटके मारूँगा तेरी शायरी सकल
दगल के बीच॥[2]

इस प्रकार लावनीकारा ने अनक स्थानो पर 'खयाल' या 'ख्याल' शब्द का प्रयोग किया है। साधारणतया दगलो मे भी लावनी के स्थान पर 'खयाल' का ही अधिक प्रयोग होता है।

जसा कि हमने ऊपर लिखा है कि सन्तो एव महात्माओ के सम्पर्क से ही लावनी मे खयाल शब्द का प्रवेश हुआ है, इससे हमारा स्पष्ट रूप से कबीर आदि सन्तो एव उनसे भी पूर्व नाथो और सिद्धो से ही अभिप्राय है, क्योकि उन्हे बैठे-बैठे अनेक बार अनेक विचित्रतापूर्ण 'खयाल आ जाते थे, और वे उन्हे ही अपनी अनुभूति के आधार पर कविता बद्ध कर दिया करते थे। बहु चर्चित लावनीकार तुकनगिर महाराज ने भी अपनी कविताओ मे 'खयाल शब्द का प्रयोग किया है। उदाहरण प्रस्तुत है—

चार यार बरकरार बैठे, मजलिस दरम्याने।
चार दिशा पर चार तमाने देखे जी हमने॥

---

१ ह० लि०—लावनीकार—गगासिंह।
२ —वही—

॥ टेक ॥ चौथी दिशा पर देखा तमाशा, दरखत गुलजारे।
नहीं पेड है, नहीं है पत्ता खडा जमीन ऊपर रे॥
साढ़े तीन सौ गज का उसका, 'यार करारे।
कहें तुकनगिरि खयाल सभा में, जवाब दे जा रे॥
शायर दवे जबाब मूरख के उड गये औसाने।
चार दिशा पर चार तमाशे देखे जो हमने॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि यह 'खयाल शब्द लावणी-साहित्य मे अनुमानत चार सौ वप या इससे भी पूव से प्रचलित है, यही कारण हे कि यह शब्द इतनी प्रसिद्ध हो सका। 'खयाल वाजी को उडीसा और महाराष्ट तथा मध्य प्रदेश आदि प्रातो म खलालाई कहा जाता है। खयाल गाने वालो को 'खयालवाज या 'खयाल गो, कहते हैं। कही कही 'चग' को मुरचग या ढफ भी कहते है।

---

१ ह० लि—तुकनगिर महाराज द्वारा लिखित।

पचम अध्याय

दगल

विशेष रूप से इस (दगल) का शब्द का प्रयोग ऐसी सभाओ या मजमा के लिए किया जाता है जहा दो दला मे विभक्त पहलवान अपनी अपनी शक्ति-परीक्षा के निमित्त एकत्र हो कर 'कुश्ती लडते हैं। जहाँ कुश्ती लडने वाला की सख्या दो (या कई बार अधिक भी) होती है वहा उनके शुभेच्छुओ एव अन्य दर्शकों का एक अच्छा जमघट लग जाता है। इसे हम अन्य शब्दो मे शक्ति प्रतियोगिता भी कह सकते हैं। 'खयालबाज' भी जिस समय सभा म बठते हैं, तो एक दूसरे के प्रतियोगी के रूप मे ही होते हैं, सम्भवत एतदर्थ ही लावनीकारा क सम्मेलन को भी दगल' ही कहा जाने लगा। लावनीकारा के सम्मेलन का वसे तो साधारणतया 'सभा या 'महफिल' ही कहा जाता था जो हिन्दी और उर्दू की दृष्टि से उपयुक्त भी था परन्तु शनै शन लावनीकारों म प्रतियोगात्मकता की वृद्धि होन के पश्चात ही इसे 'दगल' नाम प्रदान किया गया। 'खयालवाजी' शीर्षक के अन्त म महाराज तुकनगिर की स्वय रचना म प्रत्यक्ष है कि उन्होंने 'सभा शब्द का ही प्रयोग किया है—

"कहें तुकनगिर ख्याल सभा में जबाब दे जारे ॥'

इसी प्रकार पुराने 'खयाला' म 'सभा शब्द का ही प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, यद्यपि नवीन रचनाओ म भी 'सभा का प्रयोग उपलब्ध है तथापि अधिक प्रचलन की दृष्टि से आजकल 'दगल' का ही प्रयोग होता है—'दगल' शब्द के प्रयोग का उदाहरण 'खयालीवाजी शीर्षक मे भी दर्शनीय है। हम एक उदाहरण यहा भी उद्धृत कर रहे है—

'लाला बिन्दरालाल निराली चाल छन्द की लई निकाल।
लाजिमसो नहि चले हिलानाचल आखिल दगल में निकाल ॥'[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि लावनीकारो की उस सभा या समारोह को 'दगल कहते हैं जिसम लावनीकार अपनी-अपनी लावनियाँ सुनाकर श्रोता समुदाय को आल्हादित करते हैं। इन सभाओ (दगलो) म लावनीकारा की पारस्परिक प्रतियोगात्मकता विशेष दर्शनीय होती है।

---

१ ह० लि०-प० शम्भूदास।

दगल आयोजन तथा नियमन

किसी भी सभा के आयोजन मयोजनाय एक सयोजक होता है जो सभा म निमन्त्रित सज्जना की सुविधाआ एव सम्मान का ध्यान रखना अपना परम् कत्तव्य समझता है।

सम्बन्धित व्यक्तियो को निमन्त्रित करने के निमित्त या तो आमन्त्रण-पत्र प्रकाशित कराये जाते हैं या किसी साधारण सभा के लिए व्यक्तिगत रूप भी सूचनाए भेजी जाती हैं। विशिष्ट प्रकार की सभाआ मे मिष्ठान्न आदि का भी प्रबन्ध होता है। परन्तु लावनीकारा के दगल आयोजन आदि का अपना ही एक विचित्र प्रकार है। दगल-आयोजन क लिए लावनीकार कोई आमन्त्रण-पत्र आदि प्रकाशित नही कराते। य लोग निमन्त्रण देने के लिए स्वय अन्य लावनीकारा की सेवा म उपस्थित होते हैं और उन्हें आग्रहपूवक निमन्त्रण दते हुए चिह्न स्वरूप कुछ 'इलायची दते हैं। 'दगल आयाजन' की 'इलायची बाटना भी कहा जाता है। यह तो हुआ स्थानीय 'दगल आयोजन इसके अतिरिक्त यदि किसी विशेष दगल का आयोजन करना हो तब भी निमन्त्रणकर्त्ताआ की चेष्टा तो यही रहती है कि बाहर से आने वाले लावनीकारा को भी वे स्वय ही वहाँ जाकर लावें परन्तु यदि कोई विशेष दूरस्य हो तो पत्र-व्यवहार आदि से कार्य होता है। फिर भी जहाँ तक बन पडे निमन्त्रकर्त्ता पत्र भी अपने किसी मित्र या सम्बन्धी को ही लिखना चाहता है ताकि वही लावनीकार स सम्पक स्थापित करके उन्हे सम्मानपूवक भिजवा दे। प्राय स्थानीय दगलो के लिए तो डाडी पिटवा दी जाती है परन्तु विशिष्ट दगला की सूचना इश्तिहार आदि द्वारा भी दे दी जाती है। ज्योंही साधारण जनता को दगल की सूचना प्राप्त होती है, त्योंही लोगो म एक विशेष प्रकार की चर्चा एव हर्षोल्लास का आरम्भ हो जाता है। इन दगलो मे एकत्र होने वाला जन-समुदाय वास्तव मे ही अगणनीय होता है और विशेषता यह कि श्रोताओ की इस आपार भीड मे भी एक दर्शनीय चुप्पी एव तन्मयता होती है।

नियमन की दृष्टि से प्रबन्धकर्त्ता आगन्तुको की सुविधा का प्रबन्ध करने का तो पूण यत्न करते है परन्तु उन्हे नियमन का कोई विशेष अधिकार हो, ऐसी बात नही होती। चाहे *प्रबन्धकर्त्ता कोई हो 'दगल किसी के स्थान पर भी हो रहा हो* परन्तु नियमन का अधिकार प्राय वृद्ध लावनीकरो (गुरुओ उस्तादो) के हाथ म होता है। प्रतियोगिता क समय भी जब कोई विशेष विवाद उत्पन्न हो जाता है। तब य गुरुजन ही निर्णायक का कतव्य भी वहन करते हैं। कई कई बार विशेष आयोजना मे निर्णायको के नामा की पूर्व घोषणा भी कर दी जाती है। यद्यपि निर्णायक प्राय वृद्ध लावनीकारो मे स ही होते हैं यद्यपि कई-कई बार नगर के सुशिक्षित एव प्रतिष्ठित व्यक्तिया को भी निर्णायक के रूप मे चुन लिया जाता है।

ये 'दगल' अनेक बार तो अनेक दिना तक चलते रहते हैं और लावनीकारा का नवीन एव प्राचीन लावनियाँ समाप्त होने का नाम तक नही लेती। वसे साधारण से साधारण दगल भी न्यूनातिन्यून एक रात्रि भर तो चलता ही है। प्रबन्धकर्त्ताओ की ओर से लावनीकारो के खाने-पीने आदि का समस्त प्रबन्ध अतीव सुन्दर ढग से किया जाता है। प्रबन्धकर्ता के श्रद्धानुसार बादाम, पिस्त आदि डलवा कर दूध आदि का प्रबन्ध तथा ऋतु-अनुसार भग और ठठाई आदि का प्रबन्ध होता है। लावनीकार प्राय सोम रस-पान तो नही करते परन्तु सुल्फा, गाजा आदि की चिलम जब तक न पी ली जाए तब तक अधिक सख्याक लावनीकारा का 'मूड' ही नही बनता। यद्यपि हमने ऐसे भी ख्याति प्राप्त लावनीकार देखे हैं, जिन्ह बीडी और सिगरेट आदि की भी लत नही है, तथापि लावनीकारा म एसे व्यक्ति अपवादस्वरूप ही कुछ उगलियो पर गिनने योग्य मिलेंगे। वसे यह बहुत सम्भव है कि बहुत पहले इस प्रकार की प्रथा दगलो मे न रही हो। हा, यह एक मानी हुई बात है कि दगला मे गाने वाले लावनीकारा की गान की अपनी एक कला है, जो श्रोताओ को मन्त्र मुग्ध किये रखती है, हम समझते हैं। कि इस प्रकार का आकषण ही इस कला को अब तक जीवित रखने मे समथ हो सका है।

दगल मे गाने का अधिकार

खयालबाजी के दगला की यह एक विशिष्ट परम्परा है कि कोई भी एसा व्यक्ति जो लावनी गाने म रुचि रखता है और विधि-पूर्वक जिसने अपना कोई ख्याति प्राप्त लावनीकार 'गुरू' मान लिया है, वही व्यक्ति दगल म गाने का अधिकारी है, अन्यथा 'निगुरे' को दगल मे गाने का अधिकार नही है। 'गुरु' बनाने का भी लावनीकारो म अपना ही एक ढग है, जिसके अनुसार जो व्यक्ति जिस लावनीकार को अपना 'गुरु' घोषित करना चाहता है वह उसके व उसके ही शिष्या के सहयोग से एक दगल का आयोजन करता है। सभी लावनीकारो को सादर आमन्त्रित किया जाता है। लावनिया पर लावनियाँ चलती हैं और उसी समय शिष्य बनने वाला व्यक्ति मध्य मे ही स्वय खडा हो कर घोषणा करता है कि मैं अमुक लावणीकार को अपना गुरू स्वीकार करता हूँ और उसी समय वह कथित गुरु समस्त लावणीकारो के समक्ष अपने शिष्य के मुख म लड्डू आदि मिष्ठान्न डालकर उसे लावनी का आदेश देता है। वह मिष्ठान 'गुरु मत्र' और वह आदेश उस शिष्य के लिए 'दगल मे गाने का प्रमाण-पत्र समझा जाता है। इसे (गुरु बनाने के ढग को) 'मुँह भराना' भी कहा जाता है। जब तक गुरू म मुह नहा भरा लिया जाता, तब तक किसी भी व्यक्ति को दगल म गाने का अधिकार नही होता। यदि कोई अपरिचित व्यक्ति गाना सुनकर गाने की इच्छा भी प्रगट करता है या गाने भी लग जाता है तो उस उसी समय रोक दिया जाता है अथवा यदि वह किसी का

ि्य है ता दरिषद प्रा्त करन ही उसे गाने का अधिकार ि्या जाता है। यहाँ तक कि क्र घार गा। को दु्रा करा वाले व्यक्ति को उसी समय भी किसी का शिष्य बना दया जाता है। हाँ दसग म श्रोताओं पर किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं हाना चाहे व किसी भी 'मत या सम्प्रदाय म विश्वास करत हो। इस प्रकार माधनावादी स ्प्रदा म गुरु शिष्य परम्परा के आधार पर ही गान का अधिकार होता है किसी अन्य को नहीं।

चग को प्राय चग ही कहा जाता है, परन्तु कही कही इसे ढफ, ढप, ढपली या ढफ्ली भी कहा जाता है। यद्यपि ढप-ढफ आकार मे चग से बहुत बडा और ढपली ढफ्ली चग से बहुत छोटी होती है तथापि बनावट की समानता के कारण चग को भी इन नामो से अभिहित किया जाता है। दक्षिण भारत के मैसूर प्रात म चग को 'कडा' कहा जाता है। यह 'कडा' उत्तर भारत के चग से किंचित बडा, परन्तु ढप (ढफ) से छोटा होता है।

डा० सत्येन्द्र ने अपने 'लोक साहित्य विज्ञान' के पृष्ठ ४३० पर गायक और वाद्य' आदि के वर्गीकरण म 'ख्याल' का वाद्य 'ढफ लिखा है। परन्तु हमारे विचार से ख्याल (लावनी) का वाद्य 'ढफ नही 'चग' है। हा, अनेक स्थानो पर 'चग को ही 'ढफ' कहा जाता है, डा० सत्येन्द्र ने भी 'चग को ही ढफ कहा हो तो उचित माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त 'लोकगीत और साज शीर्षक से परम्परा के चैत्र स० २०१३, पृष्ठ १४६ १५६ म श्री कमल कोठारी ने अन्य वाद्यो के अतिरिक्त 'चग' 'दफडा', ढफ, चगडी आदि को पृथक-पृथक लिया है, जो हमारे विचार से सर्वथा उचित है।

'ढफ' चग की अपेक्षा अधिक प्रचलित प्रतीत होता है क्योकि 'पद्मावत और आइने अकबरी म भी 'ढफ' शब्द प्राप्त हैं—यथा—

'हुल्क बाज 'ढ़फ' बाज गभीरा' [1]

पद्मावत के इन वाद्य वर्णनो म 'चग का नाम नही है, परन्तु सूरदास ने चग की चर्चा की है—

'महुवरि बासुरी 'चग लाल रग भीजो ग्वालिन' [2]

महात्मा कृष्णदास ने भी 'चग' का प्रयोग किया है—

'बाजत बीणा मदग बासुरी उपग, चग,
मदन भेरि, 'ढफ', झाझ, झालरी, मजीर। [3]

यहाँ यह अतीव स्पष्ट है कि 'ढफ' और 'चग दोनो पृथक्-पृथक वाद्य हैं।

चग रखने का ढग

गाने के पश्चात चग को रखने का लावनीकारो म विशेष ढग प्रचलित है। यदि किसी नौ सिखिए गायक ने चग को 'थाली की भाति सीधा रख दिया तो

---

१ पद्मावत—पृष्ठ ५२७
२ सूरदास—'अ० वाद्य' पृष्ठ २२
३ कृष्णदास—'अ० वाद्य' पृष्ठ ४८

समझिए कि उस बेचारे की कुशल नहीं है। अन्य (विशेष रूप से वृद्ध) लावनीकारों से उसे भर्त्सना तो प्राप्त होगी ही, इसके अतिरिक्त उस 'थाली' की भांति रखे गए चंग का जब तक मिष्ठान आदि से भर कर, वह उस मिष्टान्न का वितरण नहीं कर देता तब तक उस चंग को उठा नहीं सकता। कई कई स्थानों पर तो अपने गुरु को पगड़ी बंधवाने और दक्षिणा-स्वरूप पांच रुपये देने का भी विधान है, एतदर्थ दंगलों में गाने के पश्चात चंग को सीधा नहीं उल्टा ही रखा जाता है। परन्तु यह प्रथा प्रायः भारत के उत्तरी भागों में ही प्रचलित है। दक्षिण भारत के लावनीकारों में भी चंग (कडा) को रखा तो उलटा ही जाता है परन्तु यहां सीधा रख जाने पर कोई अप-शकुन या अपराध नहीं माना जाता।

हमारे विचार से यह प्रथा इस दृष्टि से है कि सीधा रखने से 'चंग' पर चढ़ा हुआ चमड़ा पृथ्वी पर लग कर विकृत हो जाता है या किसी समय पृथ्वी की कंकड़ों आदि से चंग में छेद हो जाने की भी सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी की सीलन' (गीलापन) से चमड़े की कड़क में अंतर पड़ जाना भी इसमें एक कारण है क्योंकि कड़क में न्यूनता होने से चंग वादन आकर्षक नहीं रह पाता। इस प्रकार इस प्रथा के पीछे ऐसे अनेक कारण हैं जिनमें लावनीकार अपने 'चंग' और चंग वादन' दोनों की ही रक्षा कर लेता है।

गाने का ढंग

भिन्न भिन्न प्रकार की गायकियां अपने अपने ढंग से गाई जाती हैं। स्पष्ट ही है कि जहां सन्त कबीर का 'लकुटिया हाथ में लेकर' और 'बाजार के बीच में खड़ा हो कर लोगों को ललकारने के स्वर में गाने का एक अपना ढंग था वहां मलिक मुहम्मद जायसी के शिष्यों का घूम घूम कर 'बारहमासा' आदि गाने का अपना ही ढंग था। गो० तुलसीदास की चौपाइयों का पाठ अपने ढंग का है तो महात्मा सूरदास ने अपने संकीर्तन-पद अपने ही ढंग से तानपूरे पर तराए थे। आधुनिक काल में भी 'गायकी' के अनेक रूप हमारे समक्ष हैं—इसी प्रकार लावनीकार का भी गाने का अपना एक ढंग है उसकी अपने ढंग की ही एक सरगम है जिसकी उहा-पोह उसे इतना लोकप्रिय बनाए है। लावनी में गाने की अनेक प्रकार की रंगतें या तर्जें होती हैं जिन पर हम दूसरे परिच्छेद में विस्तृत प्रकाश डालेंगे यहाँ तो हम केवल इतना ही अभीष्ट है कि साधारणतया लावनीकार का गाने का क्या ढंग है? साधारणतया लावनीकार चंग हाथ में लेकर उसे बजाता है और लावनी को ऊंचे स्वर में गाता है। लावनीकारों का स्वर-संधान इतना सधा हुआ होता है कि अच्छी-खासी उपस्थिति में भी वह बिना किसी ध्वनि विस्तारक यन्त्र के गा सकता है और श्रोता-समुदाय को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। परंतु इससे यह अभिप्राय नहीं है कि अल्पसंख्यक श्रोता-समुदाय में भी वह इसी प्रकार गाता है। हां, इतना

अवश्य है कि उसके स्वरों में साधारणतया आरोह अवरोह क्रिया तीव्र ही होती है। वह प्राय लावनी की प्रथम पंक्ति के प्रथम 'बोलों' को अनेक बार दुहराते हुए गाना आरम्भ करता है। दो पंक्ति की 'टेक' के पश्चात वह चौक[1] की समाप्ति तक इसी गति से गाना चलता है। यदि दंगल' कोई साधारण है तो वह इसी प्रकार सम्पूर्ण लावनी समाप्त कर लेगा और अन्य लावनीकार क्रमानुसार अपनी लावनी आरम्भ कर देगा, परन्तु विशेष दंगलों मे, जहा लावनीकार को अत्यधिक समय तक गाते रहना पड़ता है, एक एक चौक की समाप्ति पर अन्य लावनीकार उसी प्रकार की अन्य लावनी की पृथक पृथक, क्रम से 'टेक' गाते हैं, इस प्रकार बीच मे 'टेक' गाए जाने से प्रथम लावनीकार को स्वल्प विश्रामोपलब्धि हो जाती है। कई-कई बार तो टेक गाने वालों की अत्यधिक संख्या के कारण प्रथम गायक को आवश्यकता से अधिक विश्राम प्राप्ति हो जाती है। कई बार टेक गायकों की संख्या तो अधिक नहीं होती परन्तु उनके गान में प्रतिस्पर्धा की गन्ध आने लगती है और परिणामस्वरूप टेक गायकों को दंगल में अपनी लाज बचाने के निमित्त कई कई 'टेकें' गानी पड़ती हैं और इस प्रकार प्रथम गायक को पूर्ण विश्राम प्राप्त हो जाता है। प्राय टेकों की इस प्रतिस्पर्धा में प्रथम गायक हाथ नहीं डालता परन्तु कई बार समय के अनुसार उसे भी इसमें उलझ जाना पड़ता है। फिर भी इसके उसके गान के ढंग में विशेष परिवर्तन नहीं आता। प्राय लावनीकार ऊँचे स्वर में परन्तु कोमल की भांति 'चहक' कर गाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लावनी गायक का गाने का ढंग अतीव सुलझा हुआ एवं आकर्षक तथा कर्ण प्रिय होता है।

— • —

१ बीच में चार पंक्तियां अन्य और तत्पश्चात पांचवीं पंक्ति 'टेक' के तुकान्त की होती है इन पांच पंक्तियों को समाप्त करना एक चौक समाप्त करना कहलाता है। एक 'ख्याल' में इस प्रकार के न्यूनातिन्यून चार चौक अर्थात २२ पंक्तियां होती है। किन्हीं किन्हीं लावनियों में, लावनीकार 'शेर', दोहा, चौपाई, उडान, झड, आदि भी चौकों के मध्य डाल देते हैं, ऐसी दशा में एक लावनी में २२ से अधिक पंक्तियाँ हो जाती हैं और चौक में भी पांच से अधिक पंक्तियां हो जाती हैं।

भिन्न भिन्न अखाडो म परस्पर 'स्पधा और' ईर्ष्या दोनो ही दगनीय हैं। हाँ, विशेष चर्चनीय बात यह है कि 'तुर्रे' वाल या 'कलगी' वाले परस्पर भिन्न भिन्न अखाडा म कितना ही विवाद करत रहें परतु जिस समय तुर्रा और 'कलगी' केवल दो ही दला म विवाद चल रहा हो, उस समय इनक भिन्न भिन्न अखाडो क सभी लावनी कार एकाकार हो जाते हैं। उस समय व भिन्न भिन्न 'अखाड' वाले नही अपितु 'तुर्रे' या कलगी वाले होते हैं।

जिस समय वादी अपना कोई ख्याल सुना रहा हो तो प्रतिवादी' को उसी समय दगल' म कोई ऐसा ख्याल सुनाना पडता है जो तुकान्त तथा रगत आदि की दृष्टि स तो वसा हो ही परन्तु उसके प्रश्न का उत्तर भी हो या उत्तर के साथ साथ अन्य प्रश्न भी हो सकता है चाहे वह इस प्रकार क उत्तर के लिए पूवमेव समुद्यत हो अथवा तत्क्षण भी लावणी सजन कर सकता है, परन्तु यदि वह एसा नही कर सका तो निश्चय ही उसे अपनी पराजय स्वीकार करनी होगी। इस प्रकार की लावणिया ही वादी प्रतिवादी लावणीकारो के दला म समयानुसार स्पर्धा या ईर्ष्या' की वृद्धि का कारण होती हैं। लावनीकारा की भाषा म, इस प्रकार की प्रश्नोत्तरात्मक लावणियाको एक दूसरे का 'दाखला कहा जाता है। जानकारी हेतु हम यहा कुछ इसी प्रकार क उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

गुरु भैरोसिह कहते हैं कि चाहे आप अपना सवस्व दे दीजिए परन्तु भूल कर भी किसी को अपना 'मन न दीजिए—

सब कुछ मागे दे दीजे' दे दीजे धन यौवन अपना। [1]
मगर भूल कर, न दीजे हाथ पराए मन अपना॥

परन्तु गुरु भैरोसिह के अखाडे पर गुरु चुन्नी क अखाडे का 'दाखला भी दष्टव्य है—

'जान-बूझ कर कौन किसे देता है धन-यौवन अपना। [2]
हुस्न वोने है—जो कर लेता है पराया मन, अपना॥

एक अन्य ख्याल मे गुरु भरोसिह न लिखा है कि रानी पिंगला के पतिवृत धम का अवलोकन करके ही राजा भतृहरि ने वराग्य ले लिया परन्तु गोहर साहिब ने कहा—'नही एसा कहना आप के मति भ्रम का द्योतक है, राजा भत हरि ने वराग्य नही लिया था अपितु पिंगला के छल स दुखी होकर राज्य त्यागन किया था—

---

१ श्री दीनदयाल अग्रवाल (एक ख्याति प्राप्त लावनीकार) का एक पत्र दिनाक ३० १ ६६

२ वही—

सती पिंगला नारि जिसने एक बार ब्याह कर तज दिया जिया।
उसी के कारण—राजा भरथरी ने लो वैराग्य लिया॥ (भरोंसिंह)
'मति में कुछ भ्रम रहा है तेरे, नहीं 'जोग भरथरी लिया।
जो सच पूछो—देख छल रानी का घर त्याग दिया॥ (गोहर)

प० शम्भुदयाल जी दाद्री वाला म अपने एक 'ख्याल मे किसी 'मुमुखी' के मुख एव उस की लटाओ का इस प्रकार चित्रण किया—

'लगी नागन फन पटकन अपना लटकत जो लखी लट एक तरफ।
पट घूंघट नक पलटते ही, रथ चन्द्र गयो डट एक तरफ॥ [1]

इसका 'दाखला खुश दिल साहब ने इस प्रकार लिखा है—

'नागन तो फन रखती ही नहीं, हिल सकती नहीं लट एक तरफ।
पट घूंघट नेक पलटते ही, कस चन्द्र गयो डट एक तरफ॥ [2]

इस प्रकार लावनीकारो म यह प्रश्नोत्तरात्मक प्रतिस्पर्धा दर्शनीय होती है। किसी किसी समय इसका रूप होता तो है। स्पर्धात्मक ही परन्तु उसम प्रश्नोत्तर न होकर एक ही रगत की और एक ही प्रकार के तुकान्ता की लावनियाँ सुनानी पडती हैं। इस लावनीकारा की भाषा म 'लडी लडाना' कहा जाता है। उनके पास एक ही रगत एव तुकान्ना के अनेक ख्याला की पूर्ण 'लडी' अर्थात् एक ही प्रकार के २०, ३०, ४० और इनमे भी अधिक ख्याल होने हैं और इन ख्याला म 'ककेहरा, लीगर्फी, आदि अनेक विशेषताए होती हैं (जिन पर हम दूसर परिच्छेद मे विस्तृत प्रकाश डालेंगे) जिन्हे लावनीकार अपन प्राणा से भी अधिक मूल्यवान समझता है। इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा भी जनता के आकर्षण का कारण होती है। श्रोता समुदाय भी अपने आनन्द की दृष्टि से अनेक बार लावनीकार को इस प्रकार की प्रतियोगिता म प्रवेश करने के लिए प्रेरित एव उत्साहित करता है।

लयात्मकता

जब हम उस प्रधान विशेषता को लेते हैं, जो लोक गीत कला का आधार है। वह विशेषता है 'लय'। 'लावनी म 'लय' का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसमे लावनी के माधुर्य म उत्कर्ष आ जाता है, यदि इस 'लय' को लावनी म से निकाल दिया जाए तो समझ लीजिए कि लावनी के प्राण ही निकल गए, क्योकि जसा कि प्राय लोक गाथा मे होता है लावनी म भी किसी समय काव्य की दृष्टि स मात्राए न्यूनाधिक हो जाती हैं, जिन्हे लावनीकार अपनी 'लयात्मकता' के कारण

---

१ श्री दीनदयाल अग्रवाल (एक ख्याति प्राप्त लावनीकार) का एक पत्र दिनाक ३० १ ६६।
२ —वही—

सातवां अध्याय

अमीर खुसरो की कविता में लावनी

लावनी का उद्भव और विकास शीर्षक के अन्तर्गत हमने लावनी की प्राचीनता पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है, तदनुसार हमने इस मत की स्थापना की है कि लावनी का आरम्भ लोकरूपका के जीवन के साथ साथ ही हुआ परन्तु शनैः शनैः यह कला अपना विशिष्ट स्थान बनाती गई और स्वामी हरिदास एवं तानसेन आदि महानुभावों से अपने परिष्कृत रूप को प्राप्त करती हुई तुकनगिर महाराज और उस्ताद शाह अली से इसने एक सुनिश्चित मोड़ को प्राप्त किया जो आज तक भी लावनीकारों की परम्परा में जीवित है। स्वाभाविक ही है कि परिष्करण उसी विधा का सम्भव है जो पूर्वमेव विद्यमान हो। स्वामी हरिदास आदि द्वारा लावनी-परिष्करण में भी हम यही अभीष्ट है कि लावनी इनसे पूर्वमेव लोगों का आकर्षण केन्द्र बन चुकी थी।

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार स्वामी हरिदास का जन्म सं० १६१७ के लगभग है—'स्वामी हरिदास' शीर्षक में डा० वर्मा ने इस प्रकार लिखा है—'इनके विषय में कुछ विशेष विवरण ज्ञात नहीं हैं, ये निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत टट्टी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे और प्रसिद्ध गायक भक्त थे। कहा जाता है ये तानसेन के गुरु थे। इनका आविर्भाव काल सम्वत १६१७ के लगभग है क्योंकि ये अकबर के समकालीन थे। इनकी रचना में भावों की सुन्दर छटा है पर शब्दों के चयन में विशेष चातुर्य नहीं है। इनके पद राग रागनियों में गाने योग्य हैं। इनके पदों के अनेक संग्रह प्राप्त हुए हैं उनमें 'हरिदास जी की बानी' और 'हरिदास जी के पद' मुख्य है।'[1] 'भक्त माल' के रचयिता नाभादास जी का एक छप्पय भी इनके विषय में दर्शनीय है—

> जुगल नाम सो नेम जपत नित कुञ्ज बिहारी।
> अवलोकत रहे केलि सखी सुख के अधिकारी॥
> गान कला गंधर्व श्याम श्यामहि को तोषैं।
> उत्तम भोग लगाइ मोर मरकट तिमि पोषैं।

---

१ हि० सा० आ० इ०—पृ०५६० ५६१

नपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरशन-ग्राशा जासकी।
आशधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की ॥ [1]

यह तो हुई काल गणना के अनुसार स्वामी हरिदास के जन्म-सम्वत् की स्थापना। अब हम यह स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे कि इनसे पूर्व अमीर खुसरो आदि की कविताओं में भी लावनी प्राप्त हैं—इससे पूर्व कि हम 'खुसरो' साहब की एकाध रचना प्रस्तुत करें, उनके जन्म सम्वत् पर विहगम दृष्टिपात करना समीचीन ही होगा—पं० रामनरेश त्रिपाठी ने खुसरो साहब का जन्म सं० १३१२ और देहावसान १३८२ माना है—वे लिखते हैं—'अमीर खुसरो ने हिंदी में बहुत से दोहे, पहेलियां, गीत, दो अर्थी अनमिल और मुकरनी आदि लिखे। अमीर खुसरो का जन्म सम्वत् १३१२ और मरण सं० १३८२ में हुआ। दिल्ली में अब तक उनकी कब्र है और उस पर मेला भी लगा करता है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि खुसरो साहब का आविर्भाव स्वामी हरिदास से ३०५ वर्ष पूर्व हुआ। खुसरो साहब का हिन्दी और फारसी मिश्रित एक नमूना द्रष्टव्य है।

जे हाल मिसकी मकुन तगाफुल, दुराय नैना बनाय बतियां।
कि ताबे हिजरा न दामे ऐजा, न लेहु काहे लगाय छतियां॥
शवाने हिजरां दराज चूं जुल्फ व रोजे वसलत चु उम्र की तह।
सखी पिया को जो मैं न देखूं, तो कसे काटूं अंधेरी रतियां॥[3]

खुसरो साहब की इन उपरोक्त पंक्तियों की गणना हम लावनी की एक प्रसिद्ध रंगत 'शिकिस्ता' के अंतर्गत करेंगे। इन 'शिकिस्ता' आदि रंगतों पर हम दूसरे परिच्छेद में पृथक-पृथक विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

खुसरो साहब ने इस प्रकार के अन्य भी अनेक छन्द लिखे हैं, जिन्हें हम अतीव सरलता-पूर्वक लावनी के अन्तर्गत ले सकते हैं। केवल यही नहीं, खुसरो साहब ने लोक गीतों के ढंग के अनेक मित्रयाचित गीत भी लिखे हैं—एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

अम्मा, मेरे बाबा को भेजो री, कि सावन आया।
बेटी, तेरा बाबा तो बुड्ढा री, कि सावन आया॥
अम्मा, मेरे भाई को भेजो री, कि सावन आया।
बेटी, तेरा भाई तो बालारी, कि सावन आया॥
अम्मा, मेरे मामू को भेजो री, कि सावन आया।
बेटी, तेरा मामू तो बांकारी, कि सावन आया।[4]

---

१ भ० मा० (सटीक)—पृ० ५८२
२ क० कौ० पहला भाग—पृ० ६५
३ — वही —
४ — वही पृ० ६६

इस प्रकार अमीर खुसरो की कविता में न केवल लावणी ही उपलब्ध हैं अपितु 'लोकगीत' भी प्राप्त हैं। अब हम इस वार्ता का यहीं समापन करके इन्हीं के परवर्ती कवि सन्त कबीर की कविता में लावणी का अन्वेषण प्रस्तुत कर रहे हैं।

सन्त कबीर की कविता में लावनी

सन्त कबीर एवं उन विषयक विस्तृत विवेचन तो हम चौथे परिच्छेद में व्यक्त करेंगे अब तो हम केवल उनकी कविता में 'लावणी रूप' का प्राकट्य ही प्रस्तुत करना चाहते हैं—उदाहरण द्रष्टव्य है—

तू सुरत नैन निहार अंड के पारा है।
तू हिरदे सोच बिचार, ये देश हमारा है॥
पहले ध्यान गुरन का धारो सुरत निरत मन पवन चितारो।
सुहेलना धुन नाम उचारो लहु सतगुरु दीदारा है॥
सतगुरु दरस होय जब भाई, वह दें तुमको नाम चिताई।
सुरत शब्द दोउ भेद बताई, देख सब के पारा है॥
सतगुरु-कृपा दृष्टि पहिचाना अंड सिखर बेहद मैदाना।
सहज दास तहं रोपा थाना, अग्रदीप सरदारा है॥
सात सुन बेहद के माहीं, सात सख तिन की ऊँचाई।
तीन सुन लौं काल कहा ई, आगे सत्त पसारा है॥
परथम अभय सुन है भाई, कन्या कढ़ यह बाहर आई।
जोग सतायन पूछा बाई दारा वह भरतारा है॥
दूजे सकल सुन कर गाई माया सहित निरंजन राई।
अमर कोट के नकल बनाई अंड मध्य रच्यौ पसारा है॥
तीजे है मह सुन्न सुखासा महाकाल यह कन्या ग्रासी।
जोग सतायन आ अविनासी गल नख छेद निकारा है॥
चौथे सुन अजोख कहाई सुद्ध ब्रह्म के ध्यान सभाई।
आधा या बीजा ले आई देखो दृष्टि पसारा है॥
पचम सुन अलेख कहाई, तहं अदली बंदि वान रहाई।
जिनका सतगुरु याव चुकाइ गादा अदली सारा है॥
छठे सार सुन कहलाई सार भंडार याहि के माहीं।
जाते रचना जाहि रचाई, जा का सकल पसारा है॥
सतवें सत सुन्न कहलाई, सत भंडार याहि के माहीं।
निःतत रचना जाहि रचाई, जो सबहिन तें न्यारा है॥

सत सुन ऊपर सतकी नगरी, बाट विहगम् बाकी डगरी।
जो पहुँचे चाले बिन पगरी, ऐसा खेल अपारा है ॥[1]

'लावणी' के अंतर्गत यह 'खडी और 'छोटा रगतो का मिश्रण है—नीचे 'खडी' और 'छोटी' रगतो के दो पृथक पृथक उदाहरण दिए जा रहे हैं—

रगत खडी—

दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया तलफ तलफ कर भोर किया।
तन-मन मोर रहट अस डोले, सुन सेज पर जनम छिया ॥
नैन थकित भए पंथ न सूझै, साई बेदरदी सुध न लिया।
कहत कबीर सुनो भई साधो, हरो पीर दुख जोर किया ॥[2]

कबीर जी की छोटी रगत इस प्रकार है—

तेरे घर में हुआ अंधेर, करम की राती।
नहिं भई पिया से भेंट रहा पछताती ॥
सिख नैन सैन सो खोज ढूंढ ल आती।
मेरे पिया मिले सुख चैन, नाम गुन गाती ॥[3]

इस प्रकार संत कबीर की कविताओं में यत्र-तत्र लावणी रूप उपलब्ध होता है।

महात्मा तुलसी की कविता में लावणी

हमारी मान्यता के अनुसार लोक साहित्य का ही एक अंग होने के नाते प्रायः समस्त प्राचीन कवियों एवं गायकों ने येन-केन रूपेण 'लावणी' को अपनाया है। हम उदाहरणार्थ हो केवल एक दो कवियों की कविताओं में 'लावनी' के रूपों को प्रस्तुत कर रहे हैं। ऐसा करने से हम केवल इतना ही प्रकट करना चाहते हैं कि किसी न किसी रूप में लावणी उस समय भी जनता एवं साहित्यिक कवियों की कृपा भाजन थी।

महात्मा तुलसीदास जी द्वारा रचित 'गीतावली' एवं 'कवितावली' आदि ग्रंथों में यत्र-तत्र लावनी के दर्शन होते हैं। दो उदाहरण कवितावली से और एक उदाहरण 'गीतावली' से दिया जा रहा है, यथा—

---

१ क० ब०—पृष्ठ १७४ १७५—सम्पादक—श्याम सुन्दर दास, बी० ए० प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा काशी संस्करण—नौवां—सं० २००३,

२ क० ब०—पृष्ठ—२१३—कविता १०१

३ —वही—पृष्ठ२१८—कविता १०८

वर दंतकी पंगति कुन्दकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकें घन बीच जुगे, छवि मोतिन माल अमोलन की॥
घुंघरारि लटें लटकें, मुख ऊपर, कुण्डललोल कपोलन की।
नेवछावरि प्राण करें 'तुलसी, बलि जाऊं लला इन बोलन की॥'[1]

+ + + +

अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद के भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को, ठगिसी रही ज न ठगे धिसके॥
तुलसी मनरजन रंजित अंजन नयन सुखंजन चातक से।
सजनी ससि मे समसीलउ मे नवनील सरोरुह से बिकसे॥[2]

ये उपरोक्त दोनों ही उदाहरण 'लावणी' की दृष्टि से 'बहर तवील' के अन्तगत जायेंगे। लावणी' की दृष्टि से 'खड़ी रंगत' का भी एक अन्य उदाहरण दर्शनीय है।

कनक कलस चामर पताक धुज जहं तहं बंदनवार नए।
भरहिं अबीर अरगजा छिरकहिं सकल लोक एक रंग रए॥
उमगि चल्यौ आनन्द लोकतिहुँ देत सबनि मंदिर रितए।
तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत रामकृपा चितवनि चितए॥[3]

इस प्रकार अनेक स्थानों पर लावणी की किसी न किसी रंगत को अवश्य अपनाया गया है। यह तो हुई प्राचीन कवियों में लावणी की बात। अब भारतेन्दु कालीन कवियों में केवल भारतेन्दु बाबू तथा उनके साथियों का लावणी से सम्बन्ध बताया जा रहा है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उनके साथी और लावणी

उपरोक्त सन्त कबीर तथा तुलसीदास की कविता में लावणी प्राप्य तो है परन्तु लावणी' शब्द की चर्चा कहीं नहीं मिलती। इनके अतिरिक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन अन्य कवियों ने न केवल लावणियाँ लिखी और गाई हैं, अपितु लावणियों के दंगलों में भी भाग लिया है।

---

१ तुलसी ग्रन्थावली—दूसरा खण्ड—पृष्ठ १३१—सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास —दूसरा संस्करण-सं० २००४ कवितावलि शीर्षक से

२ तुलसी ग्रन्थावली—दूसरा खण्ड पृष्ठ १३१—सम्पादक—रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास,—दूसरा संस्करण—सं० २००४ 'कवितावलि शीर्षक से

३ —वही—पृष्ठ २२४, गीतावलि शीर्षक से,

भारतेन्दु बाबू की लोक-साहित्य रुचि के विषय में डा० रामविलास शर्मा इस प्रकार लिखते हैं।

'भारतेन्दु बाबू ने स्वय बहुत-सा लोक-साहित्य रचा था और लेख लिखकर बहुतो को इस ओर प्रोत्साहित भी किया था।[1]

उन्हाने इसी आशय की एक लम्बी विज्ञप्ति भी मई १८७९ ई० की 'कवि 'वचन सुधा' म, प्रकाशित की थी, जिससे प्रतीत होता है कि वे अपना देश ग्रामीण-समाज को ही समझते थे और उन्ही की भाषा म उन्ही के ढग के गीत गाना पसन्द करते थे। ग्राम साहित्य की ओर ध्यान दिलाते हुए उन्हाने स्वय लिखा था—

'जिन लागो का ग्रामीणा से सम्बन्ध है व गाव मे एसी पुस्तकें भेज दे। जहाँ कही ऐसे गीत सुनें उनका अभिनन्दन करें। इम हतु ऐस गीत बहुत छोटे छोटे छन्दो म और साधारण भाषा म बनें, वरच गवारी भाषाओ म और स्त्रियो की भाषा म विशेष हा। 'कजली,' 'ठुमरी, 'खेमटा,' 'कहरवा,' 'अद्धा' चती, ''होली, 'साझी,' 'लम्बे' 'लावनी,' 'जात के गीत,' 'विरहा,' चनती,' गजल' इत्यादि ग्राम गीता म इनका प्रचार हो।[2]

इतना ही नही भारतेन्दु जी ने स्वय भी—अन्धेर नगरी' आदि पुस्तको मे 'चूरनवाले की कविता' आदि लिखकर अपनी लोक साहित्य रुचि का परिचय दिया है।

श्री किशारीलाल् गप्त ने 'भार[illegible]

कर उन्हान (बा० भारतेन्दु ने) अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय दिया है। अभी तक गाने मुसलमान गायका की ही कृति थे हिन्दी के किसी भी कवि न इस ओर दृष्टिपात नही किया था। भारतेन्दु पहले बड हिन्दू कवि हैं जिन्होंने प्रचुर मात्रा मे रस से सराबोर और गानो का प्रणयन किया। इस दृष्टि से भी हिन्दी साहित्य भारतेन्दु का ऋणी है और वे अपने इस अभिनव क्षेत्र म अद्वितीय हैं।[3]

हम कह सकते हैं कि 'लावनी' की दृष्टि से भी एसा कहना पर्याप्त सीमा तक उपयुक्त है, क्योकि भारतेन्दु काल मे 'लावनी साहित्य मे भी विशेष रूप से मुसलमान शायरो और गायको न हो अधिक रुचि ली थी। हिन्दू गायक और कविया

---

१ 'भारतेन्दु युग' पृष्ठ—५,—ले०—डा० रामविलास शर्मा

२ 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि'—पृष्ठ २३४ ३५
ले०—किशोरीलाल गुप्त, और 'भारतेन्दु युग'—पृष्ठ ६७ ले० डा० रामविलास शर्मा।

३ 'भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (उपक्रम)—पृष्ठ २।

ने भी 'लावनी' को योग तो दिया परन्तु अधिकता उनकी न थी। भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दू कवियों ने भी अपनी अच्छी कला प्रियता का परिचय दिया। बा० भारतेन्दु के लावनी प्रेम की चर्चा करते हुए श्री किशोरीलाल गुप्त न अपने इसी ग्रन्थ में बा० शिवनन्दन सहाय के भारतेन्दु विषयक विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—

बाबू शिवनन्दन सहाय लिखत हैं—'१८७२ ई० म बनारसी लावनीबाजों की लावनिया की बडी चर्चा थी। उसी समय उन्होने (भारतेन्दु न) फूलो का गुच्छा' नामक लावनियो का एक ग्रन्थ बनाया था। प्रतीत होता है कि १८८२ ई० म उस पुस्तक की कोई नूतन आवृत्ति हुई थी, क्योकि 'सन्क विलास' म जो सस्करण हुआ है, उसम हमारे चरित-नायक की १९३९ सम्वत् की लिखी भूमिका देखी जाती है।[1] श्री गुप्त ने भारतेन्दु के उक्त ग्रन्थ विषयक अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—इस गुच्छे म उर्दू की १३ लावनिया है। रचनाए अत्यन्त साधारण एव सदोष हैं। प्राय प्रत्येक लावनी म स्थान स्थान पर सक्ता (गति भग दोष) है जो सारा मजा किरकिरा कर देता है। अन्त्यानुप्रास भी वड बुरे हैं यथा—भूठा, गिरवा, लिखा, गिला चले, कहे रहे गले आदि। य सभी रचनाएँ लावनी की निर्गुण रहस्यवादी परम्परा का अनुसरण करती हैं।[2]

अनेक लावनीकारो ने 'चित्र काव्य' भी लिखे हैं। यद्यपि चित्र काव्य को देखकर केवल बाल प्रवृत्ति के व्यक्ति ही प्रसन्न होते हैं क्योकि चित्र-काव्यो को साहित्य में मान्यता प्राप्त नही हो सकी, तथापि भारतेन्दु ने भी अपनी इस कौतुक-वृत्ति क

(१) [illegible]—१९१८
(२) श्री जीवनजी महाराज—१९२९
(३) चतुरग—१९२९
(४) बसन्त होली काव्य—१९३१
(५) मूक प्रश्न—१९३४
(६) मानलीला फूल बुझौवल काव्य—१९३६
(७) रिपनाष्टक का आठवां छद
(८) नये जमाने की मुकरी
(९) समधिन मधुमास
(१०) मनोमुकुल माला
(११) मुद्रालकार सम्बधी रचनाए।

---

१ भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि' (उपक्रम) पृष्ठ—११
२ —वही पृष्ठ—११

एक उदाहरण ,दष्टव्य है—

जीवहु ईस असीस बल हरहु प्रजन की पीर ।
सरयू जमुना गग मे, जब लौं थिर जग नीर ॥

इसी को इस प्रकार देखा जा सकता है —

Gवहु Eस असCस बल हरहु प्रजन की Pर ।
सरU यमुना गग मे, जब लौं थिर जग नीर ॥

'चित्र काव्य' के अतिरिक्त भारतेदु जी ने कजली, गजल और बारहमासा आदि भी लिखे है ।

भारतेदु बाबू की काव्य शक्ति इतनी प्रबल थी कि कभी कभी सपने मे भी वे काव्य रचना कर लेते थे । प्रेम तरंग' की ८७ ८८ ८९ सख्यक लावनिया सपने मे ही बनाई गई थी । ये सभी लावनिया सुदर एव सरस है, इनमे से जानकारी के निमित्त एक उद्धृत की जा रही है—

प्रिय प्राणनाथ मनमोहन सुदर प्यारे ।
छिनहू मत मेरे होहु हगन सों न्यारे ॥
घनश्याम गोप गोपी पति गोकुल राई ।
निज प्रेम जनन हित नित नित नव सुखदाई ।
वृदावन रच्छक ब्रज सरबस बल भाई ।
मनहूँ में प्यारे प्रियतम मीत कहाई ॥
श्री राधा नायक जसुदानद दुलारे ।
छिनहूँ मत मेरे होहु हगन सों न्यारे ॥१॥
तुव दरसन बिनु तन रोम रोम दुख पागे ।
तुव सुमिरन बिनु यह जीवन विष-सम लागे ॥
तुमरे सयोग बिनु मन वियोग दुख दागे ।
अकुलात प्रान जब, कठिन मदन बन जागे ॥
मम दुख जीवन के तुम ही इक रखवारे ।
छिनहू मत मेरे होहु हगन सों न्यारे ॥२॥
तुमही मम जीवन के अवलम्ब कहाई ।
तुम बिनु सब सुख के साज परम दुखदाई ॥
तुव देखे ही सुख होत न और उपाई ।
तुमरे बिनु सब जग सूनो परत लखाई ॥
हे जीवन धन मेरे नयनन के तारे ।
छिनहू मत मेरे होहु हगन सों न्यारे ॥३॥

तुमरे बिनु इक छिन कोटि कलप-सम भारी।
तुमरे बिनु स्वगहु महा नरक दुखकारी॥
तुमरे सग बनहू घर सो बढ़ि बनवारी।
हमरे तो सब कुछ तुमही हो गिरधारी॥
'हरिचन्द' हमारे राखो मान दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे॥४॥[1]

भारतेन्दु जी ने अनेक लावनिया उदू और हिन्दी दोनो म लिखा हैं। हमारा उद्देश्य यहा केवल हिन्दी लावनी से ही है। उदू लावनियो क अतिरिक्त उनकी दस लावनिया (हिन्दी की) प्रमुख रूप से वणनीय हैं जो इस प्रकार से प्राप्य हैं—प्रेम तरग—८० ८१ ८२ ८७ ८६ प्रम प्रलाप—५४ ५६, मधु मुकुल—५६ और 'वर्षा विनोद—६, ६०। वर्षा विनोद की इन दोना लावनिया को छोडकर शेष २२ मात्राओं के सम छन्द मे लिखी गई हैं। १० १२ पर विराम है अन्त मे दो गुरु हैं। प्रारम्भ म दो पक्तिया की टेक है फिर छह छह चरणो क छन्द जिनम छठी पक्ति टेक की पुनरावृत्ति है। वर्षा विनोद की दोनो लावनिया का छन्द विधान दूसरे बारहमासा के छन्द सा है, अर्थात २६ २६, १५ २६, १५ २६ मात्राओं के छह चरण, लम्बे चरणा मे १२, १४ पर विराम चरण १ २ ३ ४ का तुक एक और पचम तथा षष्ठ चरण का तुक दूसरा जमा कि प्राय लावनिया म होता भी है।

ये सभी रचनाएँ कृष्ण से सम्बन्धित हैं निर्गुण ब्रह्म से इनका कोई लगाव नही है। प्रेम प्रलाप ५४ म दूलह कृष्ण का रूप व णत है, ५६ म कृष्ण की दूती राधा का कुज स्थित आकुल कृष्ण से मिलने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। 'मधु मुकुल ५६ म राधा-कृष्ण फाग खल रह हैं। 'वर्षा विनोद' की दानो लावनियो मे 'विरह प्रधान है। प्रेमतरग की पाचा लावनियाँ विरहिणी व्रज बालाओ के हृदयोद्‌गार हैं।

इन सब की भाषा खडी बोली है जो मज नही पाई है। खडी बोली की दृष्टि म भाषा लगडाती चलती है। वस्तुत उस समय लावनियो की जो भाषा प्रचलित थी उसी म य लावनिया लिखी गई हैं। भारतेन्दु बाबू न इस बात का विचार नही किया कि व खडी बोली म रचना कर रहे है। उनके द्वारा स्वप्न म ही रचित एक अन्य लावनी प्रस्तुत है—

मोहि छोडि प्राण प्रिय कहूँ अनत अनुरागे।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे॥

---

१ प्रे० त० ला० स०—८६

टेक—रहे इक दिन वे जो हरि ही के सग जाते ।
वृन्दावन कुजन रमत फिरत मदमाते ॥
दिन रैन श्याम सुख मेरे ही सग पाते ।
मुझे देखे बिनु इक छन प्यारे अकुलाते ॥

मि०—सोई गोपी पति कुबरी के रस पागे ।
अब उन बिन छिन छिन प्राण दहन दुख लागे ॥१॥

कहँ गई श्याम की वे मनहरनी बातें ।
वह हस हस कठ लगावनि, करि रस घातें ॥

वह जमुना-तट नवकुज, कुज द्रुम-पात ।
सपने सी भई अब वे बिरहन की रात ॥

मि०—सहि सकत न कठिन वियोग अगिन तन दागे ।
अब उन बिन छिन छिन प्राण दहन दुख लागे ॥२॥

पहले तो सुदर मोहन प्रीत बढ़ाई ।
सब ही विधि प्यारे अपनो करि अपनाई ॥

सुख द बहु भाँतिन नित जब लाड लडाई ।
अब तोडि प्रीति मोहि छोड गये ब्रजराई ॥

मि०—सजोग रस बीतत वियोग दुख जागे ।
अब उन बिन छिन छिन प्राण दहन दुख लागे ॥३॥

क्या करूँ सखी, कुछ और उपाय बताओ ।
मेरे प्रीतम प्यारे मुझसे आन मिलाओ ॥

जिय लगी बिरह की भारी अगिन बुझाओ ।
मैं बुरी मौत मर रही मिलाइ जिलाओ ॥

मि०—'हरिश्चन्द' श्याम-सग, जीवन सुख सब भागे ।
अब उन बिन छिन छिन प्राण-दहन दुख लागे ॥४॥[१]

इस प्रकार के उद्धरणो के पश्चात् अन्त मे हम भारतेन्दु जी की लावनी-सम्बन्धी एक घटना की चर्चा करके यह वार्ता यही समाप्त करेंगे । श्री किशोरीलाल गुप्त ने एक स्थान पर उस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है—

१ प्रे० त०—ला० स० ८७

आठवां अध्याय

लावनी की प्राचीन तथा वर्तमान स्थिति

'लावनी का उद्भव और विकास' शीर्षक म हमने लावनी की आरम्भिक अवस्था पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है, फिर भा निष्कर्ष रूप म हम इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि—

'लावनी के गीतों' क रूप म जन्म लेकर 'लावनी' न शन शन अपना क्षेत्र विस्तृत बना लिया। कृषक क खेता स निकल कर यह उसक सामान्य जीवन मे आई, विशेष रूप से 'होली' के दिनो म किसान ने लावनी की मस्ती भरी रगता को गा-गा कर अपने आप को मस्त बनाया। धीरे धीरे गाने के साथ-साथ किसान ने लावनी को अभिनयात्मक बनाया तथा नाचने गाने का भी रसास्वादन किया। किसान के साथ साथ उसके अन्य अनक मित्रा ने भी इसम भाग लना आरम्भ किया और इस प्रकार लावनी केवल कृषको की न रह कर समस्त लोक की हा गई और इसका उपयोग गाने-बजाने, अभिनय करन तथा नृत्य आदि सभी अगा म विस्तृत हो गया।

उस समय तक यह केवल रसास्वादन का साधन समझी जाती थी और समय समय पर तथाकथित सभ्य समाज के लोग भी उसकी प्रशसा करते थे। कालक्रमानुसार अनक परिवतना एव परिवधना को प्राप्त कर लावनी ने भक्ति कालान लाक गायका के स्वग म प्रवेश प्राप्त किया। कबीर आदि सन्तो न लावनी को अपना कर इस गौरव प्रदान किया।

लावना क इस प्राचीन रूप को लावनी की उन्नति का द्योतक कहा जा सकता है क्योकि शनै शनै इसने सभ्य समाज म भी अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया था यहा तक कि यह राज महला म और राज दरबारो मे भी खूब खुल कर खेली गई। सम्राट अकबर ने इस तुर्रा और कलगी आदि द्वारा अभिषिक्त किया।

इस तुर्रे और कलगी क अभिषक न लावनी का नया मोड दिया। वह नया मोड था— स्पर्धात्मक। इस स्पर्धात्मक रूप न लावनी साहित्य के भण्डार का अतीव समृद्ध एव सम्पन्न बनाया। स्पर्धात्मकता क कारण कितने ही लावनीकारा न अतीव सुन्दर लावनिया की रचना की और यह (लावनी) मध्यम वग क लिए भी आकषण का कारण बन गई।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के काल तक आते-आते लावनी की इस स्पर्धा ने 'वैमनस्य' का रूप धारण कर लिया और यह 'वैमनस्य' इसके पतन का कारण बना। अत धन सम्य लोगा न पुन लावनी से अपना हाथ खीच लिया और पारस्परिक वमनस्य के कारण यह झगडा और लडाई की 'जड' बन गई। 'दगला के आयोजनो म न्यूनता आ गई। लावनीबाजा न सुल्फा, गाजा, शराब, चरस आदि मादक वस्तुओ का सेवन आरम्भ कर दिया और अनेक व्यक्ति इनके पास तक बैठने मे सकोच करने लगे। यही कारण है कि वतमान समय मे 'लावनी लुप्त प्राय होती जा रही है। जहाँ लावनी गायकों के दल के दल मिलते थे वहा आजकल शायद ही कोई एक-दो लावनीबाज मिलें। इस वर्तमान दशा को देखते हुए 'लावनी का भविष्य अन्धकारमय ही दृष्टिगोचर होता है।

लावनी सकलन की प्रवृत्ति और पेशेवर लावनीबाज

लावनीबाजा म लावनी सकलन की प्रवति विशेष रूप से रही है। साधारण से साधारण लावनीबाज की भी (कुछ अपवादा को छोड कर) यह स्वाभाविक इच्छा रहती है कि उसके पास अधिकाधिक लावनियाँ हो और वह इधर उधर से दौड धूप करके वह सकलन कर भी लेता था। अब भी ऐसे ऐसे लावनीबाज हैं जिनकी हस्तलिखित लावनिया की गणना उन्ह गिनकर नही, अपितु लिख गए 'पन्ना को तोल कर ही की जा सकती है। यही कारण है कि इन लोगा म प्रकाशन-प्रवत्ति न होन हुये भी इनकी रचनाएँ नष्ट होने से बच गई।

लावनी के विशेष आकर्षण क कारण अनेक लावनीबाजो ने इस अपनी आजीविका का साधन बना लिया। आज भी हमे अनेक पेशेवर लावनीबाज मिल सकत हैं इससे लाभ ता यह हुआ कि कुछ लोगा को आजीविका प्राप्त हो गई। परन्तु साथ म हानि यह हुई कि अच्छे अच्छे लावनीकारों ने इससे अपना हाथ खीच लिया और लावनीबाजा की वह स्वाभाविक मस्ती' भी पसे की झनकार म लुप्त प्राय हो गइ।

वतमान पशेवर लावनीबाज अपनी जमा-पू जी के बल पर ही अपना कार्य चला रहे हैं। उसमे नवीनता का समावेश प्राय नही होता और होता भी है ता वह अतीव-स्वल्प।

प्रकाशित और अप्रकाशित लावनी साहित्य

लावनीकारा, लावनीबाजा म प्रकाशन प्रवति का प्राय अभाव हो रहा है। इसका कारण इन लागा की स्पर्धात्मक मनोवृति भी रहा है। इनका विचार था कि प्रकाशन होने से दूसरे अखाडे क लोगो को उनकी विशिष्ट लावनिया का ज्ञान हो

जायगा और समय पडने पर वे उन्हें पराजित न कर सकेंगे। परन्तु इससे यह अभिप्राय नही है कि लावनिया के प्रकाशन का सर्वथा ही अभाव रहा हो। समय समय पर लावनियों का प्रकाशन भी हुआ। कानपुर के महात्मा स्वामी नारायणानन्द ने लावनी में ही लावनीकारो का इतिहास प्रकाशित कराया था, यद्यपि यह बहुत युक्ति-सगत नही था और आजकल प्राप्त भी नही है। श्री उदयनारायण तिवारी (जबलपुर विश्वविद्यालय) के एक पत्र के अनुसार उक्त स्वामी नारायणानन्द ने कई हजार लावनियो का सग्रह किया था।

श्री बनारसी हक्कानी की लावनी पुस्तक 'ब्रह्म ज्ञान लावनी' तो लावनी बाजो में अपना विशेष स्थान रखती ही है। सन्त भर्तृसिंह तथा उनके शिष्य मुन्शी सुखलाल की भी अनेक रचनाएँ क्रम 'गुलशन तुर्रा लावनी' और 'गुलजार सखुन तुर्रा' मनोहर बाग आदि तीन तीन चार चार भागो में प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्री खुशदिल की लावनिए खुशदिल, श्री गौहर की 'गौहरे नायाब तुर्रा' श्री वंशराज जालान का 'ख्याल-गुलशन तुर्रा', आदि के अतिरिक्त अन्य छोटी मोटी अनेक लावनी पुस्तकें केवल हिन्दी में ही नही अपितु अन्य भाषाओ में भी प्रकाशित हुई हैं जो सख्या में पाच-सौ के लगभग अवश्य हैं, इनमे से अनेक पुस्तकें हमने स्वय देखी है। कुछ पुस्तकें इस समय प्राप्त नही।

श्री माताप्रसाद गुप्त के एक पत्र (दि० ७ १ ६६) के अनुसार निम्नलिखित लावनी पुस्तकें 'ब्रटिश म्यूजियम' मे प्राप्त हैं—

(१) काशी गिर 'बनारसी' 'लावनी ब्रह्म ज्ञान (प्रेस मे भी मिल जाती है) (नवल किशोर प्रेस लखनऊ (१८७४)

(२) लावनी बनारस (१८७६)

(३) लावनी हनीफी प्रेस दिल्ली (१८७७)

इनके अतिरिक्त वेंकटेश्वर बम्बई में भी अनेक लावनी पुस्तकों का प्रकाशन है। वेंकटेश्वर प्रेस के एक पत्र (दि० २५ १ ३६) क्रमाक २३६०) के अनुसार इस समय भी उनके पास २० २५ प्रकाशित लावनी पुस्तकें उपलब्ध है यद्यपि वे पुस्तकें है साधारण कोटि की ही। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन काव्यो की रूप परम्परा' में भी लावनी की कुछ प्रकाशित पुस्तको की नामावली दी है जो विस्तार भय से यहाँ नही दी जा रही है।

— ० —

दूसरा परिच्छेद

★

पहला अध्याय

लावनी में रंगतें

कुछ विद्वानो का विचार है कि 'लावनी एक प्रकार का छद है जो चग पर गाया जाता है। हमने प्रथम परिच्छेद म लावनी की परिभाषा आदि पर पूणरूपेण विचार प्रस्तुत कर प्रमाणित किया है कि लावनी एक छद' नही, अपितु लावनी गायन कला की एक वह विधा है जो अनेक छदा म प्राप्य है और 'चग' बजाकर गाई जाती है।

लावनी कवल एक ही छद म गाई जाती हो, ऐसी बात नही है। यह अनेक निराल छदो म गाई जाती है। लावनी की भाषा मे इन छदा को 'रगत' या 'बहर' कहा जाता है। य 'रगतें अनेक हैं, परतु मुख्य रूप से लावनीबाजी की प्रचलित रगतें' इस प्रकार हैं—'सखी, 'दौड,' 'खमचा,' रगत छोटी,' 'रगत नवेली,' डेढ-कन्यिा' 'रगत डयोडी रेखता' 'श्याम कल्याण' 'पच कडिया, 'रगत डेढ़ खम्बी' 'रगत खडी चौनाला 'रगत सागीत,' 'रगत खडी,' 'रगत लगडी, 'शिकिस्ता,' 'तवील,' शकील 'रगत वशीकरण' रगत मुखफफा,' 'रगत मेरीज्यान,' 'रगत महाराज, 'गजली रगत,' आदि।

इन 'रगता या 'बहरो' मे गाई जाने वाली लावनिया म अनेक अय छदा का भी समावेश हो सकता है, जैसे उर्दू की परम्परा म 'शेर 'झड आदि और हिन्दी की परिभाषा म दोहा, दूहा-चौपाई, घनाक्षरी, सोरठा और कवित्त, आदि।

ये अय छद अपने आप म लावनी नही कहे जा सकते। हा लावनी म इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा म प्राप्त है। इसी प्रसग मे उपरोक्त रगता पर पृथक पृथक विचार कर लेना अप्रासगिक न जानकर प्रत्येक रगत विषयक सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) सखी और दौड

सखी—यह एक प्रकार से कम वजन की 'गजल' के समान होती है। इसे गाया भी 'गजल की भाति ही जाता है। प्राय एक सखी म आठ से बाहर पक्तियाँ तक होती हैं, परन्तु न्यूनातिन्यून पक्तियाँ चार हो सकती हैं। प्राय लावनीबाज दगल म 'लावनी' आरम्भ करने स पूव एक 'सखी सुनाकर 'लावनी' आरम्भ करता है।

जायगा और समय पडने पर वे उन्हे पराजित न कर सकेंगे। परन्तु इसस यह अभिप्राय नहीं है कि लावनियों के प्रकाशन का सर्वथा ही अभाव रहा हो। समय समय पर लावनियों का प्रकाशन भी हुआ। कानपुर के महात्मा स्वामी नारायणानन्द न लावनी मे ही लावनीकारो का इतिहास प्रकाशित कराया था यद्यपि वह बहुत युक्ति-संगत नहीं था और आजकल प्राप्त भी नहीं है। श्री उदयनारायण तिवारी (जबलपुर विश्वविद्यालय) के एक पत्र के अनुसार उन्त स्वामी नारायणानन्द ने कई हजार लावनियों का सग्रह किया था।

श्री बनारसी हक्कानी की लावनी-पुस्तक 'ब्रह्म ज्ञान लावनी या लावनी बाजो' म अपना विशेष स्थान रखती ही है। सन्त भर्लसिंह तथा उनके शिष्य मुशी मुखलाल की भी अनेक रचनाएं क्रमश 'गुलशन तुर्रा लावनी' और 'गुलजार मखुन तुर्रा' मनोहर बाग आदि तीन तीन चार चार भागों म प्रकाशित हो चुका है।

श्री खुशदिल की 'लावनिए खुशदिल' श्री गौहर की 'गौहरे नायाब तुर्रा' श्री बग राज जालान की 'स्यान-गुलशन तुर्रा' आदि के अतिरिक्त अन्य छोटी मोटी अनेक लावनी पुस्तकें, केवल हिन्दी म ही नहीं अपितु अन्य भाषाओं म भी प्रकाशित हुई हैं जो सख्या म पाच-सौ के लगभग अवश्य हैं इनम से अनेक पुस्तकें हमने स्वय देखी हैं। कुछ पुस्तकें इस समय प्राप्त नहीं।

श्री माताप्रसाद गुप्त के एक पत्र (दि० ७ १ ६६) के अनुसार निम्नलिखित लावनी पुस्तकें ब्रिटिश म्यूजियम मे प्राप्त हैं—

(१) काशी गिर 'बनारसी' लावनी ब्रह्म ज्ञान (प्रेस म भी मिल जाती है) (नवल किशोर प्रेस लखनऊ (१८७४)

(२) लावनी बनारस (१८७६)

(३) लावनी हनाफी प्रेस दिल्ली (१८७७)

इनके अतिरिक्त वेंकटेश्वर बम्बई म भी अनेक लावनी पुस्तकों का प्रकाशन है। वेंकटेश्वर प्रेस के एक पत्र (दि० २५ १ ३६) क्रमांक २२६०) के अनुसार इस समय भी उनके पास २० २५ प्रकाशित लावनी पुस्तकें उपलब्ध है यद्यपि व पुस्तकें है साधारण कोटि की ही। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा' मे भी लावनी की कुछ प्रकाशित पुस्तकों की नामावली दी है जो विस्तार भय से यहा नहीं दी जा रही है।

— ० —

दूसरा परिच्छेद

★

लावनी में रंगतें

कुछ विद्वानों का विचार है कि 'लावनी' एक प्रकार का छन्द है जो चंग पर गाया जाता है। हमने प्रथम परिच्छेद में लावनी की परिभाषा आदि पर पूर्णरूपेण विचार प्रस्तुत कर प्रमाणित किया है कि लावनी एक 'छन्द' नहीं अपितु लावनी गायन-कला की एक वह विधा है जो अनेक छन्दों में प्राप्य है और 'चंग' बजाकर गाई जाती है।

लावनी केवल एक ही छन्द में गाई जाती हो, ऐसी बात नहीं है। यह अनेक निराले छन्दों में गाई जाती है। लावनी की भाषा में इन छन्दों को 'रंगत' या 'बहर' कहा जाता है। ये 'रंगतें' अनेक हैं, परन्तु मुख्य रूप से लावनीबाजी की प्रचलित रंगतें इस प्रकार हैं—'सखी,' 'दौड' 'खमचा,' 'रंगत छोटी,' रंगत नवेली' डेढ कडिया' 'रंगत डयाडी, 'रेखता,' 'श्याम कल्याण,' 'पच कडिया, 'रंगत डेढ लम्बी' 'रंगत खडी-चौताला,' रंगत सांगीत, 'रंगत खडी,' 'रंगत लंगडी, 'शिकिस्ता,' 'तवील,' शकील, रंगत वशीकरण,' रंगत मुखफफा,' 'रंगत मरीज्यान,' 'रंगत महाराज,' 'गजली रंगत, आदि।

इन रंगतों या 'बहरों' में गाई जाने वाली लावनियों में अनेक अन्य छन्दों का भी समावेश हो सकता है, जैसे उर्दू की परम्परा में शेर 'भड' आदि और हिन्दी की परिभाषा में दोहा, दूहा-चौपाई, घनाक्षरी, सोरठा और कवित्त, आदि।

ये अन्य छन्द अपने आप में लावनी नहीं कहे जा सकते। हाँ, लावनी में इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में प्राप्त है। इसी प्रसंग में उपरोक्त रंगतों पर पृथक पृथक विचार कर लेना अप्रासंगिक न जानकर प्रत्येक रंगत विषयक संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) सखी और दौड

सखी—यह एक प्रकार से कम वजन की गजल' के समान होती है। इसे गाया भी 'गजल' की भांति ही जाता है। प्राय एक सखी में आठ से बाहर पंक्तियाँ तक होती हैं, परन्तु न्यूनातिन्यून पंक्तियाँ चार हो सकती हैं। प्राय लावनीबाज दंगल में 'लावनी' आरम्भ करने से पूर्व एक 'सखी' सुनाकर 'लावनी' आरम्भ करता है।

वस तो 'सखी' किन्ही भावनाओ से युक्त हो सकती है परतु प्राय शृगार या भक्ति रस-पूर्ण ही होती है। सखी को ऐसे ही मानना चाहिय जसे कोई भाषणकर्ता अपना भाषण आरम्भ करने से पूर्व किसी संस्कृत श्लोक को पढता है और पुन अपना भाषण आरम्भ करता है। सखी की एक पक्ति म प्राय २६ २७ मात्राएँ होती हैं, जो गाने के ढग से न्यूनाधिक भी हो तब भी खप जाती हैं। इन रगतो के माप-तौल के लिए कुछ निश्चित शब्द चयन होता है। इस शब्द-चयन को पटटी या रगतो की पटटी कहा जाता है, जसे सखी की पट्टी इस प्रकार होगी—

फल फाइल फायलातुन फायलातुन फायला।

अर्थात् इस माप-तौल पर चलने वाली रगत का सखी कहा जायगा।

जसे—'सखी'—(ले० श्री बजरलाल बगडिया)

ऽ।ऽऽऽऽ।।।।ऽ।ऽ।।।।।ऽ—२७
नद के लाला ने जिस दम बसरी अधरन धरी।
नेह में सखियाँ फसी दुगति मे मनमोहन करी॥
ना कोई छोडा सभी को मोह लिया घनश्याम ने।
नाम ये गिरधर रटें, हो तुम तो जनतारन हरी॥
।।।ऽऽऽऽ।ऽ।।ऽ।।।।ऽ।ऽऽ।।—१६+१५

दौड—न मुझको भूलो नद नदन, नित्य प्रति दिया करो दशन।
ऽ।ऽ।ऽऽ।।।।।।ऽ।ऽऽऽऽऽ।।।। —१६+१७
नेह से धरू मे सिर चरणन नाम तेरे प वारूँ तनमन॥

(२) दौड

'दौड वास्तव म सखी का ही एक भाग है। बिना दौड के सखी का अपग ही जायेगा। ऊपर 'सखी' के साथ दौड का उदाहरण भी है। इसम छोटी पक्तियाँ होती हैं। उपर वर्णित दो पक्तियाँ वास्तव म चार हैं। दौड म इस प्रकार की य चार पक्तियाँ तो अनिवाय रूप से होता हैं, कई बार इसी प्रकार की छोटी-छोटी पक्तिया छह और आठ तक भी हो जाती हैं। इन पक्तियो म प्राय १५+१७ मात्राएँ प्रति पक्ति होती हैं। इसक गान का ढग अतीव चलता हुआ या दौडता हुआ होता है सम्भवत इसीलिए 'दौड' नाम से अभिहित किया गया है।

(३) खमचा

खमचा भी 'सखी' की भाति लावनी स पूव गाया जाता है। यह गजल की भाति ही गाया जाता है परतु इसकी पक्तियाँ किंचित छोटी होती है। खमचे की प्रत्यक पक्ति म २२ से २४ तक मात्राए होती है किसी समय २३ मात्राएँ

न्यूनाधिक भी हो तो भी गायक उन्हे ठीक गा लेता है। वैसे तो खमचे में न्यूनातिन्यून ४ पक्तियाँ भी हो सकती हैं। परन्तु अधिकाधिक २२ पक्तियो तक के खमचे होते हैं। 'अलीगढ' और 'कानपुर' तथा आगरा' के लावनीकारो ने 'खमचे' अधिक सख्या मे लिखे हैं।

किसी भी खमचे के साथ 'दौड' अवश्य होती है। 'खमचे' वाली 'दौड' म और 'सखी की दौड' म प्राय कोई अन्तर नही होता, यहा तक कि अनेक बार गायको को 'सखी' और खमचा दोनो मे एक ही 'दौड' भी गाते सुना गया है। यद्यपि 'सखी और 'खमचे' म कोई विशेष अन्तर नही है तथापि दोनो का गाए जाने का ढग सवथा भिन्न एव आकर्षक होता है। एक खमचा' उदाहरणार्थ प्रस्तुत है। इस खमचे के लेखक जबलपुर निवासी वयोवृद्ध लावनीकार श्री प्रभुदयाल यादव 'प्रभु' हैं जो गुरु शिष्य परम्परा की दृष्टि से आगरे के अखाडे से सम्बन्धित हैं।

—खमचा—

ऽ।।ऽऽ।ऽऽऽ।।ऽ।।।ऽ—२४

लोचन के तीर तीखे, चचल में रख लिए।
पावन प्रसून रति रस, अचल में रख लिए॥
नव रङ्ग रङ्ग-रजित, उभरे उरोज में।
प्रेमी ने रस सरस रस, पुष्कल में रख लिए॥
सगम में सार सुषमा, रजनी सुहाग में।
पाकर सुधा सरोवर, सम्बल में रख लिए॥
तरगों की भावना भी, मुद्रा प्रमोद में।
लेकर हिलोर नूतन, वक्षल में रख लिए॥
पिरभूदियाल यादव, रति रस बिहार में।
आनन्द आत्म-गौरव, कल-कल में रख लिए॥

दौड—प्रेम का रसिक पुजारी हैं, रती रस नेह पुजारी हैं॥
मधुप सुमना का सुधारी हैं प्रेम रस राज बिहारी हैं॥
सुमन में तीर सरासर है प्रभू ये तुम पे निछावर है॥

(४) रगत छोटी

यह लावनी की ही एक रगत है। इसे छोटी रगत इसलिए कहा जाता है कि साधारण लावनी की अपेक्षा इस रगत की लावनी छोटी होती है। साधारण लावनी की पक्ति की तुलना म इस रगत की पक्ति भी छोटी होता है इसम एक पक्ति म २२ मात्राएँ होती हैं परन्तु गान के ढग म २२ स २५ मात्राएँ तक इस रगत म खप जाती हैं। इस रगत की पटटी इस प्रकार चलती—

फाइल फाइल फायला फायला फायल।
फाइल फाइल फायला फायला फायल॥

इसी पटटी क अनुसार 'छाटी रगत' का एक उदाहरण प्रस्तुत है—लावनी का शीपक है 'नशेबाज' और इसके लेखक हैं। प० मूलचन्द।

ऽ ।ऽऽ ।ऽ । । ।ऽऽऽऽऽ २३
क्या नशेबाज की कहर मेरे वाली है।

टेक—मिया, कहो नशे से कौन बसर खाली है।
कोई नशे मे जर के सदा मगन रहता है।
कोई पीके चरस निमल जल सा बहता है॥
है मुझे इल्म का नशा कोई कहता है।
रम पी के कोई रम्मत अपनी चहता है॥
मि०—कोई पीके भग फिर चाहता हरियाली है। ॥१॥
मिया कहो नशे से कौन बसर खाली है॥

(५) रगत ओछी

वसे तो ओछी का तात्पय भी छोटी ही है परन्तु यहाँ 'ओछी' म अभिप्राय है 'छोटी स भी 'छाटी'। यह रगत बहुत छोटी पक्तियो म होती है।

इस रगत म प्राय १६ १७ मात्राए प्रति पक्ति हाती हैं। यथा—

।ऽऽ।।ऽऽ।।ऽ ऽ।।।ऽ।ऽ।ऽऽऽ १७+१५
सखी एक सखी से बतराव सुरत मोहि श्याम की आव।

टेक—लाग्यो आषाढ़ मेरी आली, उठी घुट कर घटा काली॥
बसे परदेश बन माली उमर मेरी छोड कर बाली॥

दोहा—बरसत नीर सुहावना, गरजत बादर घोर।
बन बिच हरियाली भई, शीतल चलन समीर॥
धीर दई कौन बधवाव सुरत मोहि श्याम की आव॥१॥

यहा यह एक ही चौक दिया गया है। इस प्रकार के न्यूनातिन्यून चार चौक और अधिकाधिक ७ ८ और इससे भी अधिक चौक एक लावनी म हो सकते हैं। यह चौंक "मन मनाहर बाग (मरन्टी तुर्रा) (जा जनवरी १८६३ म 'मथुरा यन्त्रालय मथुरा म प्रकाशित हुआ था) क पृष्ठ ३६ मे उद्धृत किया है।

(६) रगत रिन्दानी

यह रगत (रिन्दाना) 'छाटी और आछी रगता क मिश्रित रूप के समान होती है। इसकी प्रथम पक्ति म प्राय १६ १७ मात्राए और दूसरी म २६ ३० तक मात्राएँ होना हैं। वसे ता इस रगत की लावनियाँ किसी भी विषय पर उपलब्ध हो

सक्ती हैं, परन्तु विशेष रूप से शृंगार प्रधान रचनाओं में इस रंगत को अधिक लिया गया है।

'मनोहर बाग (मरहटी तुर्रा) के पृष्ठ ४१ से हम यहाँ एक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

SISISSSSSIISSSSSISSSSIISSS १६+२६

इश्क यो करे है नादाने, करते हैं पूरा इश्क वोही जो आशिक मस्ताने
हाथा पर रक्खे हैं, सिर जिनके।
मरना जीना गिनें एकसा, नहीं है डर जिनके॥
बने सहरा में घर जिनके,
वोही पलग कालीन खाक ऊपर बिस्तर जिनके॥
उठ रही दिल में लहर जिनके।
जसा ही अमन-अमान और जैसा ही गदर जिनके॥

दोहा—आशिक को है एक सा, जगल और मकान।
जो चाहे जहाँ रहें उन्हीं के नहीं है कुछ अरमान॥
वो सब को एक सा कर मानें।
करते हैं पूरा इश्क वोहो, जो आशिक मस्तान॥
॥ १ ॥

(७) रंगत खड़ी

रंगत 'खडी', 'रिन्दानी' से किंचित बडी होती है। इसकी दोनों पंक्तियाँ प्राय 'रिन्दाना' की दूसरी पंक्ति के समान आकार की होती है। इसमे प्राय ३० ३२ मात्राएं एक पंक्ति म होती हैं और इसकी सभी पंक्तियाँ समान होती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पनघट रोक खडा कन्हैया, सखियों से करता झंझट।
किसी की मटकी किसी का झटके चोर, खडा जमुना तट॥

टेक—श्याम बदन मतवारे नैन हैं धरे शीश पे मोर मुकट।
पटका बधा कमर से लाल के घूघर वारी छुट रही लट॥
पडे हार हीरों के गले मे, लिये हाथ अपनों मे लुकुट।
पडी धूम पनघट प बहम प्यारे का वहाँ रहता झमगट॥
पानी किसी कू भरने न देता रासा पडा सखियों के हट।
पटक किसी की मटकी किसी का झटके चोर खडा जमुना तट॥[१]

---

१ मनोहर बाग—पृष्ठ ५० प्रकाशित—सन् जनवरी १८६३, मथुरा यन्त्रालय, रासा=झगडा।

॥ १ ॥

रगत खडी की पटटी इस प्रकार है—

फाइल फाइल फाइल फाइल फाइल फाइल फाइल फाइल ।
फाइल फाइल फाइल फाइल फाइल फाइल फाइल फाइल ॥३२

(८) रगत शिकिस्ता

यह रगत आधुनिक लावनीबाजो म विशेष प्रचलित एव प्रिय समझी जाती है। इस रगत की प्रत्यक पक्ति म प्राय २६ मात्राए होती है। इसकी पटटी इस प्रकार है—

मुफायलातुन, मुफायलातुन, मुफायलातुन मुफायलातुन। ३६
" " , ॥

एक उदाहरण दिया जा रहा है—

ISSSSSSISIIISIIISISISS ३४
करे है कैसे ये काम कौतुक जमे विटप को उखाडता है।
छुडा क निज धम कान कुल की, बने हुए घर बिगाडता है॥

टेक—मिला वो जब राज भरथरी को तो धम से बस गई धरम भर।
लगे वो आनन्द और मगल, प्रमोद बढ़ने नगर में घर घर॥
प्रजा को पाले था पुत्र के सम, रहा नहीं दुख-दरीद्र का डर।
न दीन कोई न कोई दुखिया न कान निधन सुना कोई नर॥
विपत जो सुनता किसी के ऊपर तो उसकी लेता विपत सकल हर।
वो नित्य धर्मों की रीत चलता, अनीत से मीत मन को कर कर॥

नर—तपोबल से अभी फल था किसी एक विप्र ने पाया।
समझ धमज्ञ राजा को वो फल दरबार में लाया॥
किया अरपण महीपति के बखाने स्वाद गुण फन के।
कहा ले खाइयों इसको अमर हो जायगी काया॥

मि०—*कुयोग कर्मों का भोग जब के, वो सिंह बनकर के ताडता है।*
छुडा के निज धम-कान कुल की बने हुए घर बिगाडता है।[1]

॥ १ ॥

(९) रगत तबील

रगत तबील भी 'शिकिस्ता' की भाँति आधुनिक लावनीबाजी मे विशेष प्रचलित एव रगत है। केवल लावनीबाजा न ही नही, अपितु अनक सागीतकारा

---

१ प० रूपराम (रूप किशोर) आगरे वाले द्वारा रचित लावनी का अश (ह० लि० प्रति से)

और नाटक मडलियो ने भी इस रगत का अत्यधिक प्रयोग किया है। इस रगत की पटटी इस प्रकार है—।

IIIISIIIIIISIIIIIISIIIIIIISII ३२
फउलन-फाइल, फउलन फाइल, फउलन-फाइल, फउलन-फाइल ३२
, " , " " " " "

इसमे ३२ मात्राए होती हैं परन्तु ८९ मात्राए तक न्यूनाधिक होने पर भी लावनीबाज उसे अपनी गायकी मे पूरा उतार लेता है। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

कोई राम कहे कोई अल्लाह कहे कोई नाम मसीह पुकारता है।
बेचारे के चारे की है न खबर जनें क्या-क्या तू चारा उचारता है।

टेक—कहीं करता है जग वो अदलो अमल कहीं काम को अपने सवारता है।
कहीं अच्छा तू अच्छे से अच्छा बना, कहीं मल को निखरा निखारता है।
कहीं बठा है मसनद तकिया लगा, कहीं दर पे वो झाडू बुहारता है।
कहीं कतल करे है दिखा के अदा कहीं अपने को आप निसारता है।

मि०—होता है वही बस देख लिया जो कुछ वो बेचारे विचारता है
SSSSSSSSSIIIIIISSSSSSSSISISS
बेचारे के चारे की है न खबर, जनें क्या २ तू चारा उचारता है १-४१

(१०) रगत लगडी

यह रगत भी लावनीबाजी म विशेष रूप मे प्रचलित एव प्रिय मानी जाती है। इसका भी अनक सागीतकारा व नाटक मडलिया ने विशेष रूप मे प्रचार एव प्रसार किया है। इसम प्राय प्रथम पक्ति मे ३१-३२ मात्राए और दूसरी पक्ति मे पहले आठ मात्राओ का एक टुकडा और टुकडे के पश्चात् पुन १६ २० मात्राए होती हैं। दूसरी पक्ति के टुकडे को पहली पक्ति के ठीक पश्चात उसी धुन म गाया जाता है तत्पश्चात् कुछ श्वासातर मे दूसरी पक्ति का शेष भाग पूण किया जाता है। इस टुकड क कारण ही सम्भवत इस रगत को 'लगडी' 'रगत कहा जाता है। दगल म जिस समय लगडी रगत' की लडियाँ लडने लगती हैं उस समय विशेष रौनक हो जाती है और श्रोताओ को विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है। इसकी पटटी इस प्रकार है—

---

१ गु० स० गु० तीसरा भाग—पृष्ठ १,
मुशी सुखलाल द्वारा रचित—हिन्दू प्रेस दहली म मुद्रित।

फाइल फाइल, फाइल फाइल, फाइल फाइस, फाइल-फाइल । ३२
मुफावलातुन—, फेल, फाइल-फाइल, फाइल फाइल ।। ८+१६[1]

रगत लगडी का उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

।।ऽऽऽऽऽऽ।ऽऽ।ऽ।।।ऽऽ।।ऽ ३२
अलिफ से सीखे 'बे और 'ते' भी उसी क्लम से सीख गए ।
।।।।।।ऽ।ऽऽ।।ऽ।।।ऽऽ।।ऽ ८+२०
हमदम हम से, न सीखे हम, एकदम से सीख गए ।।

टेक—थोडे दिनों में ही जाना के, सारे जोहर जान लिये ।
मजे इश्क के—, मजेदारी से बखूबी मान लिये ।।
उडाने वाले उडा दिये, रखने वाले कर ध्यान लिये ।
अपने प्यारे— प्यार करने वाले पहिचान लिये ।।

मि०—सब कुछ हम सीखे उनसे, पर वो नहिं हमसे सीख गये
हमदम हम से ।[1]

॥ १ ॥

(११) रगत महाराज, मेरी ज्यान या 'जी'

इस रगत को महाराज की रगत मेरी ज्यान की रगत या जी की रगत इन नामा से अभिहित किया जाता है ।

साधारणतया लावनी की किसी भी रगत की टेक म दो से अधिक पक्तियाँ नही होती । इस रगत मे भी पक्तिया समझी तो दा ही जाती हैं परन्तु वास्तव म इस की टेक म अढाई पक्तियाँ होती हैं । प्रथम पक्ति म २७ मात्राए होती हैं इनके पश्चात 'महाराज या 'मरी ज्यान' बोला जाता है और तत्पश्चात् १६ मात्राओ का एक छोटा टुकडा और होता है । इसके पश्चात दूसरी पक्ति म ३६ २८ मात्राएँ होती हैं ।

यह रगत चलती तो आज कल भी है परन्तु प्राचीन लावनीबाजो म इस रगत का विशेष प्रचलन था । यह रगत, वैसे तो सभी विषया मे प्रचलित है, परन्तु विशेष रूप से 'भक्ति और 'शृङ्गार' म अधिक चलती है । भक्ति-पूण रचनाओ म प्रथम पक्ति के टुकडे के साथ 'महाराज' और शृगार प्रधान रचनाआ की प्रथम पक्ति के साथ मेरी ज्यान बोला जाता है । इस रगत की अधिक प्राचीन लावनिया से पक्ति के अन्त म प्राय 'जी आता था इसलिए इसे रगत 'जी की भी कहा जाता है । वसे अधिक प्रचलन की दृष्टि से यह रगत महाराज या मेरी ज्यान' की रगत के नाम से ही अधिक ख्याति सिद्ध है । इसकी पटटी इस प्रकार है—

---

१ मनोहर बाग (दूसरा भाग) पृष्ठ १० ११ से उद्धृत ।

फाइल-फाइल फायला-फायला फाइल (महाराज)—२८
फल फायला फायला फैल ।—१६
फल-फायला, फैल-फायला मुफायलातुन फैल ॥—२७

एक उदाहरण से यह रङ्गत अधिक स्पष्ट हो जायेगी—

उदाहरण (रगत महाराज)

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । —२८
काशी के बासी अविनाशी सुध लीजे महाराज—
। ऽ । । । । । । ऽ ऽ ऽ —+१५—४३
उमापति हर त्रिपुरारी जी ।
ऽ । । ऽ । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ —२७
सोहत शीश पर गग अङ्ग-बाघम्बर धारी जी ॥

टेक—दृग लाल लाल अति विशाल सागर सुख के—महाराज
दु ख के मेटन हारे जी ।
भूषण बाजूबन्द, नाग तन लिपटे कारे जी ॥
गले मे रुण्डन की माल, ज्वाल भकुटि मे,—महाराज
सु दर अद्भुत धारे जी ।
जगमग करत प्रकाश, लजत सब गगन मे तारे जी ॥
मणि दिपत माल तिरपुण्ड अखण्ड बिराजे—महाराज
उमा के प्राणन प्यारे जी ।
भूत प्रेत बेताल जोगनी हुकम मे सारे जी ॥
झड—छक लिया हलाहल विष्णु के काज समारे ।
नित पिवत भग रग लगते प्यारे-प्यारे ॥
—महाराज—बल बूढा असवारी जी ।
सोहत शीश पर गग, अग-बाघम्बर धारी जी ॥[1]

इस उदाहरण म पक्ति के अन्त मे जी आने स हम इसे 'जी' का उदाहरण भी कह सकते हैं और महाराज आने से 'महाराज' की रगत का उदाहरण भी कहा जा सकता है । परतु यह रचना भक्ति-पूर्ण हान के कारण इसे 'मरी ज्यान' का उदाहरण नही कहा जा सकता । 'मिरी ज्यान' का उदाहरण इस प्रकार हो सकता है—

----

१ मनोहर बाग (दूसरा भाग) पृष्ठ—५१ ५२—से उद्धृत ।

उदाहरण—(मेरी ज्यान की रगत का)

कर के करार हर बार टाल देते हो—मेरी ज्यान
तुम्हें किसने बहकाया जी ।
लगो गले से आन ज्यान मन बसन्त आया जी ॥

टेक—थी इन्तजार सरकार आपकी भारी—मेरी ज्यान
आप खुद मिलो आन कर के ।
है जोवन मिस्ले हुबाब लो सत्य मान करके ॥
यह रग रूप नहीं रहा किसी का यकसां—मेरी ज्यान
करोगे क्या गुमान करके ।
पदा जो ना पैद हुआ है सुना कान करके ॥
जो दिल आशिक—सादिक का दुख झेलेगा—मेरी ज्यान
बुरा होता दुख पाया जी
लगो गले से आन[1]

॥ १ ॥

यद्यपि साधारण दगलो म या पारस्परिक गायकी म 'मेरी ज्यान' या "महाराज दोना ही किसी भी लावनी म बोले जा सकने हैं तथापि विशेष स्तर के दगलों में यह अवश्य ही ध्यान देने योग्य हैं कि भक्ति-पूर्ण लावनिया मे महाराज' और शृ गार प्रधान रचनाओ म मेरी ज्यान' ही गाया जाए। जी की रगत एक और भी होती है जो केवल जी की रगत के नाम स ही प्रसिद्ध है जिसकी चर्चा हम आगे—रगत सख्या १५ म-कर रहे हैं।

(१७) रगत मुस्त

यह रगत प्राचीन रगता म से एक है। आज कल इसका अधिक प्रचलन नही है, विशेषकर के इस प्रकार की रगतों का प्राय 'हाली जस त्योहारो पर ही हुआ करता था।

आज कल भी यह रगत होली के पर्व विशेष पर विशेष रूप से गाई जाती है। इसमे प्राय प्रथम पक्ति म २७ से २६ तक और द्वितीय पक्ति मे २० २१ मात्राए होती हैं। दूसरी पक्ति के अ त मे 'जी' लगता है और इस 'जी को प्राय लम्बा करके गाया जाता है। क्योंकि फागुन का मास (होली क दिन) भारतीय

---

१ ह० लि० प्रति से लावनीकार—काल कवि—मा०—कन्हैयालाल।

जीवन मे मस्ती का सचार करने वाला समझा जाता है, इसीलिए इसे मुस्त या मस्त भी कहा जाता है। गायक इसे गाता भी मस्ती के साथ ही है एक उदाहरण प्रस्तुत है—

ऽऽ ऽ।। ।ऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ।। ऽ ऽ।—२८
आयो फागुन सुनो सखीरी बनाओ कुछ तो रग।
ऽऽ ।। ऽऽ ऽ। ऽ ऽ। ऽ —२०
होली चल खेलो कृष्ण के सग जो—ई ई ।

टेक—घर ले ओ कू कू चोली मे ओर बाधी फट गुलाल।
भलो चल वा रसिया के लाल जी—ई-ई
खूब करी सखारे के रग मे, नचाओ दे दे ताल।
करो दई मारे कूँ बे हाल जो—ई ई ।
जल्दी फिकर करो चलने की निकालो कोई ढग।
होली चल खेलो कृष्ण के सग जो—ई-ई ।[1]

- ॥ १ ॥

(१३) रगत—डिटकडिया या डेढ कडिया

यह रगत है तो प्राचीन, परन्तु आज कल भी अच्छे-अच्छे दगलो मे खूब गाई जाती है। यह रगत वास्तव म रगत छोटी और 'ओछी' की ही भाति होती है। इस रगत की दोनो पक्तिया छोटी छोटी होती हैं जो प्राय डेढ पक्ति के समान होती हैं, सम्भवत इसी लिए डेढ कडिया' कहा जाता है। इसकी प्रत्येक पक्ति मे प्राय १५ से १६ तक मात्राए होती हैं। परन्तु टेक के पश्चात् चौंक की पक्तियो से प्राय डेढी, अर्थात २८ से ३० तक मात्राए होती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

।ऽ ।।ऽ ऽ ।।। ऽ ऽ —१६
लिखा विधना ने कलम से है।
ऽऽ ।ऽ ।।ऽ ।।। ऽ ऽ —१८
होगा वही अपने सनम से है॥—टेक
ऽ ऽ।। ऽऽ। ऽ।। ।ऽ ।।ऽ ।।। ऽ ऽ —२९

दोहा—तू मूरख नादान वाकिफ नहीं उसके भरम से है।
ये दुनियाँ ससार फक्त, एक उसी के दम मे है॥
उसने कहा जो हमदम से है 'होगा वही[2]

१ मनोहर बाग (दूसरा भाग)—पृष्ठ ५७।
२ —वही—पृष्ठ ६७ से उद्धृत।

॥ १ ॥

(१४) रगत—अजीर सागीत या सांगीत

यह रगत चलत म गाई जाती है। अच्छे-अच्छे विशाल दगलो म जिस समय यह रगत लडी के रुप म चलती है, तब एक विचित्र ही आकर्षक वातावरण बन जाता है। यह रगत विशेष रुप मे होली के दिनो मे अतीव प्रिय लगती है। प्राय इस रगत की अधिक लावनिया लावनीबाजो के पास नही होनी, फिर भी एक एक लडी म बीस-बीस, तीस-तीस तक लावनिया अच्छे टकसाली लावनीबाजा के पास उपलब्ध हो जाती हैं। इस रगत की पक्तिया लम्बी होती हैं। य पक्तिया टुकडो म बटा हुइ होती है। दूसरी पक्ति का पहला टुकडा 'रगत लगडी की भाति ताड कर गाया जाता है फिर भी इस टुकड की पुनरावृत्ति आवश्यक है। इसकी प्रत्येक पक्ति म प्राय ५४ स ५६ तक मात्राए होती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

SII SS IIS SII SS SS —२८
सुदर सुदर नारी जिनकी सूरत लागे प्यारी
SII S SSI ISS SS IISS—२६
मोतिन से तो माग सवारी गावें हमझोली।
II SI S SSSSSS II SSS—२६
भर भर रग की झारी, मारें सारी बृज की नारी
SS II S IIIISSIII SSS—२५
खेलें मनमोहन गिरधारी मच रही होली—२५

टेक—ऐसो काहा को रिझावें केशर रग गुलाल उडावें,
मधुरे सुर से सारी गावें मीठी बोली।
कभी उलटी फिर फिर आवें कुछ सनों से भाव बतावें
पियारी मन्द-मन्द मुसिकावें, टोली की टोली॥
स्वामी बाँसुरी बजावें तान अधिक सुनावें
सबके मन को ही ललचावें, केसर घोली।
वो अबीर फिर लिपटावें चलो सखी सारी आवें,
मन की इच्छा पूरी पावें, वाली भोली॥
कहें सखी हे बनवारी, बन्शी फेरि बजाउ सवारी
हैं हम चरणो की बलिहारी, हरी दय कोली॥
भर भर रग की झारी, मारे सारी बज की [1]

---

[1] गु० स० तु० (तीसरा भाग) मुन्शी सुखलाल शाहदरे वाले द्वारा लिखित ला० नारायण दास जगलीमल (बुक्सेलर) द्वारा हिन्दू प्रेस दिल्ली मे मुद्रित,—द्वितीय सस्करण-सन् १६३२ ई० पृष्ठ १० ला० म०—छह। पता—ला० नारायणदास जगलीमल, बुक्सेलर दरीबाकला देहली (आजकल यह फर्म नही रही है)

॥ १ ॥

(१५) रगत 'जी' की

यद्यपि रगत (११) के अन्तर्गत भी हमने मेरी ज्यान' और 'महराज' की रगतों के साथ रगत 'जी' की चर्चा की है तथापि हमने स्पष्ट किया है कि वास्तव में वे रगतें जी' की नही अपितु 'महाराज' और 'मेरी ज्यान' की ही हैं। स्पष्ट रूप से जी' की रगत म प्रथम पक्ति कुछ बडी और दूसरी पक्ति किंचित छोटी होती है और प्रत्येक दूसरी पक्ति के अन्त मे 'जी अवश्य आता है। इसकी प्रथम पक्ति मे प्राय २९ से ३१ तक और द्वितीय पक्ति मे प्राय १६ स १८ तक मात्राए होती हैं। इस रगत का उदाहरण इस प्रकार है—

ऽऽऽ ऽ ऽ ऽ।।ऽ। ऽ ।ऽ ।। ऽऽ ।ऽ। —३०
दुर्वासा जी का तो शाप हो गया वह उन्हें अशीश।
।। ।ऽ ऽ।। ।।ऽ ऽ। ऽ —१८
तर गए यादव बिसवे बीस जी।

टेक—तीय के ऊपर आये यादव, करने को स्नान।
वहां मच गया युद्ध घमासान जी॥
आपस मे सब लडे कटे देखते रहे भगवान।
आया फिर सबके लिए विमान जी॥
अपना भी तनु त्यागा हरि ने किया न कुछ अरमान।
धरो तुम श्री कृष्ण का ध्यान जी॥
सारे कुल को तार दिया कोई करे क्या उनकी रीस।
तर गए यादव बिस्वे बीस जी॥[1]

॥ १ ॥

(१६) रगत—बहुत छोटी अद्भुत

यह रगत वास्तव म ही बहुत छोटी है। आजकल इसका बहुत प्रचलन नही है। विशेष रूप से यह रगत 'होली' के दिनो मे गाई जाती है। इसम प्रथम पक्ति म १६ २० और द्वितीय पक्ति म १२ १३ मात्राए होनी हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है।

खेलते होली ब्रज मे नन्दलाल।—१६
मचो यह खूब धमाल॥—१२

---

१ लावनी ब्रह्मज्ञान—बनारसी कानीगिरि द्वारा लिखित—पृष्ठ ३

टेक—चले वह हस हस लटपट चाल ।
हाथ मे लिए गुलाल ॥
बजावें बशी दे दे ताल ।
गावें ध्रुपद ख्याल ॥

शे०—कृष्ण तो हाथ मे लेकर बहुत अबीर चले ।
गुलाल भर के वह झोली सुनो बलबीर चले ॥
उधर से राधिका सखियों को साथ ले धाई ।
इधर से साथ मे इनके बहुत अहीर चले ॥
गालिया गावें हस हस गोपाल ।
मचो वह खूब धमाल ॥[1]

॥ १ ॥

(१७) रगत—नई

इस रगत का नाम चाहे 'नई' है परन्तु आधुनिक काल की दृष्टि से यह 'नई' नही अपितु प्राचीन ही कही जायेगी। आधुनिक काल मे यह रगत बहुत प्रचलित नही है और लडी की दृष्टि से भी इस रगत की 'लडियाँ' प्राप्त नही हैं। फुटकल रूप से विशाल दगलो मे यह अच्छी चलती रहती है।

इसकी प्रत्येक पक्ति म प्राय ३० स ३२ तक मात्राए होती है, परन्तु टेक की दूसरी पक्ति के अन्तिम चार-पाँच वर्णों की कुछ परिवतन के साथ या वसे भी, पुनरावृत्ति की जाती है। इसमे १३ १४ मात्राओ के पश्चात टुकडे-से भी होते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है—

S S I S I I S S I I S I I S I I I S I S I -३०
मैं सत्य-सत्य कहू हाल सुनो अहवाल तन का बयान ।
S S S I S S I S I S I S S I S I I I S I S I I I I S I —४२
है ब्रह्माड म बादशाह ब्रह्म सोई आदि ज्योति भगवान सोवम भगवान॥

टेक—जहा महतत्व ह पवन करो तुम श्रवण सोई ह शक्त ।
रहे पारब्रह्म के सग वह ह अद्धग बात कहू सत्त ॥
है नीन में महादेव जी उन्हीं की सेव करो तुम भक्त ।
हैं वही ब्रह्म के खवास हाजिर रहे वहा हर वक्त ॥
सुन प्यारे, जह तरह-तरह के राग रग होते हैं।
सुन प्यारे, उस बादशाह के सभी सग होते हैं।

---

१ लावनी ब्रह्मज्ञान—बनारसी वानीगिरी द्वारा लिखित - पृष्ठ—२१

दोहा—हैं चार वो उसके वजीर, उनका जुदा-जुदा सुन नाम।
ब्रह्मा और विष्णु वो रुद्र करें, श्री गणेश पूरण काम॥
ये अगम अगोचर छद हरफ कडी बन्द ज्ञान विज्ञान
ह ब्रह्माड मे बादशाह ब्रह्म सोई, आदि ज्योति[1]

(१८) रगत डेवढी–(राग सोरठा)

यह रगत 'बहुत छोटी रगत जसी ही होती है परतु अन्तर यह है कि इसमे दोनो पक्तियाँ समान होती हैं और उसमे समान नही होती। इस रगत मे प्राय १५ से १७ तक मात्राए होती हैं। आजकल इसका विशेष प्रचलन नही है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

ऽऽ ।ऽऽ ऽऽ ऽ—१६
फकीरी खुदा को प्यारी है।
।ऽऽ ऽ। ।ऽऽ ऽ—१५
अमीरी कौन बिचारी है॥
बदन पर खाल है जो अक्सीर।
फकीरों की है यह जागीर॥
हाथ बाधे रहें खडे अमीर।
पादशा हो या होय वजीर॥
सदा ये सच्च हमारी है।
गदा को खुदा से यारी है॥
फकीरी खुदा को प्यारी है—[2]

(१९) रगत डेवढी–राग सारग

यह रगत उपरोक्त 'डेवढी से किंचित बडी है। इसकी प्रथम पक्ति मे २२ २४ तक और दूसरी पक्ति मे १५ से १७ तक मात्राओ की सख्या होनी है। यह रगत भी आजकल अधिक प्रचलित नहीं है। केवल कुछ प्राचीन लावनिया ही इन रगतो मे उपलब्ध हैं।

उदाहरण द्रष्टव्य है —

ऽ। ।।।।ऽऽ ।। ऽ ऽ।।ऽऽ—२२
इधर हजरतनौकों हम प मेहरबानी।

---

१ लावनी ब्रह्मज्ञान—बनारसी बालीगिरी द्वारा लिखित—पृष्ठ—५० ५१
२ वही—पृष्ठ १५४

I s s s s s I s s —१६
करों मैं क्या-क्या मेहमानीं ॥
नजर देने को दिल मे अपना लिया।
इसके बहुत पसन्द आया ॥
इश्क ने मेरा जब लख्ते जिगर खाया।
तो मैंने और भी बतलाया ॥
खून आशिक का ये है ताजा पानी।
पीजिए इश्क मेरे जानीं ॥[1]

(२०) रगत-सीधी

यह रगत वास्तव म ही सीधा है और सीधे ही ढग से गाई जाती है। इसकी प्रथम पक्ति और दूसरी दानो ही पक्तिया म २५ तक मात्राए प्रति पक्ति होती हैं। उदाहरण दृष्टव्य है।

I I s I s I I I I I I I I I s s s —२२
परचा प्रतीति जब तक न नजर आता है।
I I I I s I s s I I s s I s s s —२४
तब तक तू बता खातिर मैं कौन लाता है॥
था अन्धाधुन्ध गुब्बारा भरा पानी था।
और रूप रेख आकर कहाँ सानी था॥
ना ब्रह्मा, विष्णु महेश कोई ध्यानी था।
बस धुआधार के सिवा न कुछ प्रानी था॥
वो छिपा हुआ परमेश्वर हक्कानी था।
था गुप्त भेद बानी का निर्वानी था॥
जब तक कि परदा छुपाय रह जाता है।
तब तक तू बता खातिर मे कौन लाता है॥[2]

(२१) रगत रची हुई

किसी भी लावनी की एक टक म न्यूनातिन्यून दो पक्तियाँ तो होनी ही चाहिये, पर तु इस रगत मे यह एक विशेषता ही मानी जायेगी कि इसकी टेक केवल एक पक्ति की ही होती है। इस एक पक्ति म तीन टुकडे होते हैं प्रथम टुकडे म

---

१ लावनी ब्रह्मज्ञान—बनारसी काशीगिरी द्वारा लिखित—पृष्ठ—१८६

२ गु० स० तु० (चौथा भाग)—पृष्ठ १, प्रकाशित सन् १९३२ ई०
पता—नारायणदास जगलीमल दरीबा कलाँ, देहली—६

प्राय २० २१ मात्राए, दूसरे टुकडे मे प्राय ८ ६ मात्राएँ और तीसरे टुकडे म प्राय ११-१२ मात्राए होती हैं। इस रगत का गाए जाने का ढग भी अय रगतो की अपक्षा भिन्न है। एक उद्धरण प्रस्तुत है।

SS‿S S ।।।। ।S। S। S S।। ।S। —(२१+८) २९
वेदो मे जो भगवन विराट मूर्ति का, वणन सुज्ञान,
।S ।S ।। S। —११
टेक—वपू वही कर ध्यान ॥
पाताल लोक तो कहे तलुये पावो के, वेदों ने मान,
ऐडी महातल जान।
है लोक रसातल उसी पाव की गाठें, पिंडली गुणवान,
लोक तलातल मान ॥
चौ०—सुतल लोक है घुटने ताता, वितल लोक जावें विख्याता ॥
सौ०—अतल लोक सुन लेय, जाघ नीचे का भाग है।
पृथ्वी को मन देय, ऊपर का वणन किया ॥
दो०—है भुवलोक नाभी में, कथन कर गावे।
छाती में लोक है स्वग-वेद समझावे ॥
मि०—ग्रीवा में नाथ के महर लोक बतलावे, मन गुन विद्वान,
वपू वही कर ध्यान ॥[1]

(२२) रंगत जकडी

यह रगत चलता तो आजकल भी है परन्तु पुरातन काल म अधिक प्रचलित थी। आजकल भी प्राय विशाल दगलो मे जिस समय 'जकडी' रगत की लडियाँ एक के पश्चात दूसरी और दूसरी के पश्चात तीसरी चग की थाप के साथ तैरती हुई चलती है, तो दगल के वातावरण म स्वाभाविक रूप से प्राप्त होने वाला आनन्द समुद्र सा ठाठें मारने लगता है।

यह रगत गाते समय लावनीबाज को पक्ति के आरम्भ में थोडी शीघ्रता और अन्त म शब्द को लम्बा करके बोलना पडता है तथा दूसरी पक्ति को रगत लगडी की भाति टुकडे के साथ बोला जाता है।

इस रगत की प्रथम पक्ति लम्बी और दूसरा पक्ति छोटी होती है। प्रथम पक्ति म प्राय ५६ से ५८ तक और दूसरी पक्ति में २८ तक मात्राए होती हैं। प्रथम पक्ति डेढ पक्ति के समकक्ष होती हैं जो बोलते समय चार टुकडों म बट जाती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

---

१ ह० लि० ला० का चतुर्थांश, लावनीकार—श्री बजरगलाल बगटिया।

। । । । ऽ । । ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ । । ऽ । । । ।ऽ । । —३२
कर कर भूमि सुरो को वन्दन, क्रम से रथ में चढ़ रघुनन्दन
रण के सम्मुख हाका स्पन्दन, कस कटि तूणीर ।—२५
खर खडन को डटे आ समर भूमि में श्री रघुवीर ॥—२८

टेक—गिरिजा लख यान पर राम, गये हो बन्दर सबके धाम
रावण सम्मुख वीर तमाम धाये उर धर धीर ।
घिरा हूँ घबरा, सुरारी लगा सोचने घट तदवीर ॥
निरखी सेना अती विशाल, निशिचर राजा ने तत्काल
रिसिया प्रकटा माया जाल, हिये होय अधीर ।
घर घर करते, रचे बहु कपीश लक्ष्मण अगद वीर ॥

नर—घोर धुन में करता रन भये लखण हिम्मत हार जी ।
जेर हा जह के तह खडे चित्र सम सरदार जी ॥
इर के झट सेती गया, ह मूर शूरों का चतुर ।
नर नाथ रघुवर ने लखा, व्याकुल कटक मन मार जी ॥

मि०—टारन विपता कृपा निधान, टेरा निज पिनाक और बान,
राक्षसी माया को भगवान, हरिचर एक तीर ।[१]

(२३) रगत डेढ़ी

यह रगत, आजकल अधिक प्रचलित नही है, पर्याप्त समय पूर्व यह रगत अत्यधिक प्रचलित थी। इसे 'डेढी' रगत इसीलिए कहा जाता है कि इसमे प्राय डेढ पक्ति होती है (टेक की)। प्रथम पक्ति आधी और दूसरी पक्ति पूर्ण। प्रथम पक्ति मे प्राय १५ १६ तक और दूसरी पक्ति मे २६-२८ मात्राए होती हैं जो प्रथम पक्ति की मात्रा-सख्या से प्राय डेढी होती हैं। एक उदाहारण प्रस्तुत है—

। । ऽ ॥ । । । । ऽ । । ऽ —१६
मन में कर सुमरण श्रीवर को ।
। ऽ ऽ । । ऽ ऽ । । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ —२८
महावीर गये लांघ पल में सतयोजन सागर को ॥

टेक—रूप मत्सर का कपि धर के ।
चले लक के बीच लकिनी को पछार करके ॥
कोट सब देखा दृष्टि भर के ।
देखत देखत पहुँच गये वो भवन में निशिचर के ॥

---

[१] ह० लि० ला० का चतुर्थांश—लावनीकार—श्री बजरगलाल बगडिया ।

दो०—सीता जो पाई नहीं घ, दशकधर के ।
हिय में व्याकुल भये होश सब उड गये बदर के ॥
मि०—धीर धर फिर आगे सर को ॥[1]

(२४) रगत लगडी जकडी

यह रगत जकडी' होते हुए भी साधारण जकडी से भिन्न है । यद्यपि साधा
ा जकडी मे भी दूसरी पक्ति का टुकडा लगडी रगत की भाति बोला जाता है
ग्रापि वह लगडी जकडी नहीं कहलाती । इस 'लगडी जकडी' मे टेक की दोनो
क्तियो म प्राय समान ही मात्राएँ होती हैं, जिनकी ४८ से ५० तक होनी हैं ।
। रगत म टेक की दोनो पक्तिया म चार चार टुकडे होते हैं, जिन म तीन-तीन,
क-दूसरे के तुकात के और अन्तिम (चौथा) टेक की तुकात का । आजकल इस
गत का अधिक प्रचलन नही है उदाहरण प्रस्तुत है—

s I s s s I s s s I I I I I s I s s s I I s s I
ऐ बुते ऐ यार, तूने खैचकर तलवार, खाके तश कई बार
s s I I I I I I I s —५०
मेरी तरफ गुजर किया ।
तन पै नमूदार, कई जख्में भी बिगयार, ग्ररमा दिल पै ।
यहीं यार, जुदा घड से न सर किया ॥—५०

टेक—हालत हुई जार रहा सब्र न करार, जब से इश्क के—
ग्राजार, ने है दिल को मेरे जार किया ।
करत है गम तग, सौ-सौ दिखलाता है रग,
रहूँ ग्राइनास दग, है हरानी ने लाचार किया ॥
जब से दिल लगाया, चन सहजा नहीं पाया,
रजो ग्रमल उठाया, जब तने इजहार किया ।
गमगीनों नाशाद, रहा रज में बरबाद, गहे शमर मुराद,
से हुसूल नहीं यार किया ॥
उठा कभी दरद कभी गम से की न बरद, कभी खेंचो,
ग्राह शरद, कभी चश्मो को तर किया [2]

(२५) रगत चौताली

यह रगत भी है तो प्राचीन परन्तु आजकल भी अच्छे विशाल दगलो में अच्छी

---

[1] ह० लि० ला का चतुर्यान—लावनीकार—श्री बजरगलाल बगडिया ।
[2] ह० लि० ला० का चतुर्यान,—लावनीकार—श्री नरयसिंह ।

प्रचलित है। इस रगत की अधिक लावनियां प्राय शृंगार रस और भक्ति रस में ही मिलती हैं फिर भी अन्य रसों में 'रगत' का सर्वथा अभाव हो ऐसी बात नहीं है।

इस रगत की टेक की दोनों पंक्तियाँ प्रायः समान और चार चार टुकड़ों में विभाजित होती हैं। ये टुकड़े, रगत जकड़ी की भाँति ही प्रथम तीन टुकड़े एक दूसरे के तुकान्त के और अन्तिम टुकड़ा टेक के तुकान्त का होता है। परन्तु जकड़ी से यह सर्वथा भिन्न है। 'जकड़ी' के टुकड़े 'चौताली' के टुकड़ों से किंचित लम्बे और गायकी की दृष्टि से भी भिन्न होते हैं। चार टुकड़ों की दृष्टि में इस का नाम 'चौताली' रगत उपयुक्त ही है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में प्राय २६ से ३८ तक मात्राएं होती हैं। उदाहरण प्रस्तुत है—

I I I I I I I I S I S I S S I S I S I I I S I I I I I S—३६
नट खट नट घर से चला, दिखाई कला दिया तन गला कठिन भटकी।

S S S I I I S I S I I S S S I S I I S S I I S I I S—३८
राजा का दल किया दंग, दिखाके ढंग काट दिया अंग कला नट की॥

टेक—करके करतब की याद किया दिल नाद खड़ा कर नाद, कहै हर घड़ी।
निरखिए कला की नकल, नई है नकल देखिये अकल नाट की कड़ी॥
लई अड़िया हाथ निकाल, गई आकाश देखे इजलाश खल्क थी खड़ी।
राजा ने कहे कर प्यार ये नटकी नार, है गलका हार रतन की लड़ी॥
ये तेरे तईं देखला, देखिय कला कहै नट खड़ा।
झगड़ा इन्द्र से आज राजा सिरताज लगा है कड़ा॥
जाने की तयारी करी, कहै हरि हरी अकल आगरी हिये खट की
राजा का दल किया दंग, ॥१॥[1]

(२६) रगत नवेली

इस रगत का अब से अनुमानतः पचास वर्ष पूर्व अत्यधिक प्रचलन था। आजकल यह विशेष प्रचलित नहीं है। प्राय इस रगत का अधिक प्रयोग भक्ति रस में ही हुआ है। इस रगत की टेक की प्रथम पंक्ति में दो टुकड़े होते हैं और प्राय १६ से २० तक मात्राएं होती हैं। परन्तु दूसरी पंक्ति में कोई टुकड़ा नहीं होता और इसमें केवल ११ से १३ तक ही मात्राएं होती हैं। कई बार दूसरी पंक्ति के अंतिम शब्द को लम्बा करके बोला जाता है और अन्त में 'जी' ई-ई-ई—इस प्रकार गाया जाता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है।

---

१ —वही—लावनीकार—लाला लाल।

। । । s s । । ।s s । । s । —१६
छल न चन्द्रावलि—गये कृष्ण मुरार ।
।। s । s । s । s
कर मोहनी सिंगार—जी ई ई ई ॥१३[1]

(२७) रगत या ड्योढ़ी

रगत सख्या (१८) और (१९) म हमने रगत डेवढी राग सोरठा और रगत डेवढी राग सारग की क्रमश चर्चा की है परन्तु यह 'रगत ड्योढ़ी' इन दोना से भिन्न है। इस रगत मे प्रथम पक्ति तनिक छोटी और द्वितीय पक्ति कुछ बडी होती है । प्रथम पक्ति म मात्रा सख्या २६ मे २८ तक और दूसरी पक्ति की मात्रा सख्या २५ मे २७ तक होती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

।s s s s s s । । s s s । । s s —२७
चलो री देखें बिन्द्रावन में झाकी मनहारी ।
s । s । । । s । । । । । । s s । । s s —२६[2]
कोटि कोटि लखि लज्जित रति पति शोभा अति प्यारी ॥

(२८) रगत रेखता

इस रगत म प्रथम पक्ति मे २५ स २७ तक और द्वितीय पक्ति म २३ स २५ तक मात्राएँ होनी हैं। यह रगत लावनी म बहुत प्रचलित नही है । इसका उदाहरण इस प्रकार है—

।। ।।।s ।। ।s।। ।।s। s। ।।।। —२६
अय मखजने सर सखावत अयजात पाक सरवर ।
s s । s । s s s s । s । s । । —२४
विद्या विधान स्वामी, वदोक्त मूल मन्तर ॥[3]

(२९) रगत श्याम कल्याण

यह रगत प्राय भजनानन्दी लोगो म बहुत चलती थी है। इस रगत का अधिक प्रचलन भक्ति रस म ही विशेष उपलब्ध है। इसकी टेक की एक ही पक्ति होती है जिसकी, गान के ढग म अनेक बार पुनरावृत्ति की जाती है। टेक की इस पक्ति म प्राय ३१ ३२ मात्राए होती हैं। महाराज तुकनगिर क समय म लावनी-

---

१ ह० लि० ला० की एक टक । —लावनीकार—श्री प्रभुदयाल यादव ।
२. एक ह० लि० ला० की टेक—लावनीकार—श्री प्रभुदयाल यादव ।
३ वही

बाजों में इस रगत का अत्यधिक प्रचलन रहा है। धीरे धीरे आगे आने वाले समय में यह प्रचलन कम होता गया और अन्य नई-नई रगतें अधिक प्रचलित होती गई।

इस रगत के उद्धरण के लिए हम स्वयं सन्त तुक्नगिर द्वारा लिखित एक प्राचीन लावनी प्राप्त हुई है, जिसका चतुर्थांश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

ऽ ऽ । । । । ऽ ऽ । । ऽ —१६
जोगी निकल गया ह घर से,
। । । ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ —१६
रह गई मड़ैया सूनी रे ॥

टेक—जब साधू परदेश सिधारा।
भवन भयानक बन गया सारा ॥
तीरथ यात्रा को पग धारा।
नहीं आया फिर लौट विचारा ॥

मि०—चलनी उसको पड़ी वो मंजिल दूनी रे
रह गई मढ़या सूनी रे [१]

(३०) रगत पच कड़िया

यह रगत लगड़ी रगत जैसी ही है क्योंकि इसकी टेक की द्वितीय पंक्ति का आरम्भिक भाग टुकड़े में बोला जाता है। परन्तु इसकी प्रथम पंक्ति प्राय 'खड़ी रगत की भांति बोली जाती है इस दृष्टि से हम इसे खड़ी और लगड़ी दोनों रगतों का मिश्रित रूप कह सकते हैं। इसकी प्रत्येक पंक्ति में प्राय २८ से ३३ तक मात्राएं होती हैं। एक टेक उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा रही है—

ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ —२८
पावस बरिन, पावस बरिन, आन लगी दुखदाई।
। ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ —६+२३
बिना कन्हाई,—सखी ब्रज ऊपर इन्दर ने झड़ी लगाई ॥[२]

(३१) रगत डेढ खम्भी

यह रगत एक अपने ही ढग की विचित्र एव आकर्षक रगत है। इस रगत में लगड़ी रगत की भाँति दूसरी पंक्ति में तो टुकड़ा होता ही है, इसके अतिरिक्त प्रथम पंक्ति में भी अन्त में एक टुकड़ा होता है जो दूसरी पंक्ति के तुकान्त का ही तुकान्त

१ एक ह० लि० ला० का चतुर्थांश—प्राप्ति स्थान—श्री प्रभुदयाल यादव 'प्रभु' उड़िया मुहल्ला जबलपुर (म० प्र०) लावनीकार—सन्त तुक्नगिरि।

२ ह० लि० ला० की टेक—लावनीकार—श्री प्रभुदयाल यादव।

होता है। इस रगत म प्रथम पक्ति मे प्राय ३० ३२ और द्वितीय पक्ति मे केवल २२ २३ मात्राए होती हैं। यह रगत बीच बीच म रुक रुक कर टुकडा के साथ चग पर थाप लगात हुए ऐसे सुन्दर एव विचित्र ढग से लगाई जाती है मानो रुक रुक कर मोटी मोटी बूदो की वर्षा हो रही है। उदाहरण प्रस्तुत है।

।। ऽ।।ऽऽ। ऽ।।। ।।। ।ऽ ।।ऽ।।।।—३०

कर सोलह श्रृगार, नार प्रिय मिलन चली—पहने भ्रमरन

ऽऽ ऽ।। ।।।।ऽ ऽऽ ।।। ।।

खोले जोवन गज गमनी बांकी बन ठन ॥[1]

(३२) रगत वशीकरण

यह रगत प्राचीन समय में अधिक प्रचलित थी। आजकल इस रगत का अधिक प्रचलन नही है। यह रगत भक्ति रस मे ही अधिक प्रयुक्त हुई है। प्राचीन समय मे महात्मा लोग इस रगत की लावनियाँ गाते गाते इतने मस्त और तल्लीन हो जाते थे कि अनेक श्रोता भी साथ हो तल्लीन होकर गुनगुनाने लगते थे और गायक के वश मे हो जाते थे, यही कारण है कि इस रगत का नाम 'वशीकरण रगत' पड गया। अब से अनुमानत १०० वर्ष पूर्व तक भी इस 'रगत का अत्यधिक प्रचार था। इस रगत को अनेक भजन गाने वालों ने भी अपनाया है। इससे कई बार भ्रम हो जाता है कि यह रगत वास्तव मे भजन की है या लावनी की। परन्तु इस रगत की अनेक लावनियाँ प्राप्त होने के कारण यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह रगत लावनी की रगतो मे से ही एक है। उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

ऽऽ ऽ। ।।।। ऽ।।ऽ ऽऽ ।ऽ।—२५

लख्यो एक अचरज सो हम सों कह्यो न जाय।

ऽ।ऽऽ ऽ।ऽ।ऽ।—१६

सिन्धु सीपी में गयो समाय॥

इसकी प्रथम पक्ति म प्राय २५ २६ मात्राए और दूसरी पक्ति म १५ १६ मात्राए होती हैं, एतदर्थ स्वाभाविक रूप से ही इसकी प्रथम पक्ति लम्बे रूप म और द्वितीय पक्ति छोटे रूप म बोली जाती है।[2]

(३३) रगत शकील

यह रगत वास्तव म तबील' जसी ही है। रगत तबील और शकील म विशेष अन्तर नहीं है। केवल ४ ६ मात्राओ का ही अन्तर होता है जिसे लावनीबाज वसे

---

१ ह० लि० ला० की टेक—लावनीकार—श्री प्रभुदयाल यादव।

२ —वही—लावनीकार—प० पन्नालाल (आगरा)

गाकर पूरा कर लेता है। साधारणतया तो इनमे (तबील और शकील मे) कोई अंतर नही है, परंतु विशेष दगलो मे यदि लावनीबाज तबील के स्थान पर शकील और शकील के स्थान पर तबील गाने लगता है तो प्रतियोगी दल उसे तत्काल रोक देता है। इस दृष्टि से 'रगत शकील' 'रगत तबील' से किंचित छोटी होती है। जहाँ 'तबील' मे ३४ से ३८ तक मात्राए होनी हैं वहा रगत शकील मे ३२ से ३६ तक मात्राए होती हैं। उदाहरण प्रस्तुत है—

ISSIISIIIISISIISIISSIIISIS—३६
रुखे यार हुआ जब जलवानुमा, उस जुल्फ सिया के शिकन के तले।

ISSISSSIISIIISSISSIIISIS —३७
सरे चख से बोला महरे फलक है देख ये चाद गहन के तले॥[1]

(३४) रगत मुस्तफा टेढी

इस रगत मे प्राय ३२ से ३४ तक मात्राए होती हैं। इस रगत का आजकल विशेष प्रचलन नही है। इसकी पट्टी इस प्रकार है।

फाइल फायला फल फाइल फाइल फायला फल फाइल। —३२

एक इसी प्रकार की रगत केवल मुस्तफा भी होती है, जिसमे ३५ से ३७ तक मात्राए होती हैं जिसकी पट्टी इस प्रकार चलती है।

फाइल, फाइल फाइल फउलन, फाइल फाइल फाइल फउलन। —३२

यह अन्तर केवल विशेष दगलो मे ही गणनीय होता है साधारणतया इनमे कोई अंतर नही समझा जाता। गाने का ढग भी प्राय वैसा ही होता है। एक टेक उदाहरणार्थ प्रस्तुत है जिसे 'मुस्तफा टेढी और मुस्तफा' दोनो का उदाहरण कहा जा सकता है—

ISSSSSIISIIIIIIIIISIISS—३१
आइना रुखे जोनत हो गर अक्स फिगनवो गुलरू हो।

II SSISSSSIIIIISISSSIIS S
बस जाये पसामें बागे इरम तनवीर से पदा खुशबू हो॥[2]

(३५) रगत गजली

इस रगत का नाम से ही स्पष्ट है कि यह रगत गजल के ही समान है, और गजल की ही भाँति गाई जाती है। इसकी प्रत्येक पंक्ति मे प्राय ३१ से ३४ तक मात्राए

---

१ हु० लि० ला० की एक टेक—लावनीकार-प्रेमदयाल यादव।

२ —वही—

होती हैं। आजकल भी विशेष दगलों म कही-कही यह रगत मुनने मे आ जाती हैं, वसे अर से अनुमानत ४० वप पूर्व इम रगत का अत्यधिक प्रचलन था। यह रगत 'भजन' मे भी प्रचलित रही है। श्री वेगराज जालान (जिनकी चर्चा हमने 'लावनी कारा के विवेचनात्मक अध्ययन के अन्तगत की है) न इम रगत की अनक लावनिया लिखी हैं। गजलें तो आजकल भी खूब गाई जाती हैं, परन्तु लावनी म इस रगत का आजकल इतना अधिक प्रयोग नही होता। एक उदाहरण प्रस्तुत है।

ऽ।ऽ। ऽ। ।ऽ ।ऽ ऽ।ऽऽ ऽ। ऽ।ऽ—२१

जो सवाल वरल कभी किया तो कहा के साफ जवाब है।

।ऽ ।।।।।ऽ ऽ ऽ।।। ।ऽ ऽ। ऽ ऽऽऽऽऽ

कहा जब करम को तो ह सितम कहा लुफ्त को तो आताब है॥[1]

लावनी साहित्य में इस प्रकार अनेक रगतो का प्रयोग होता है। हमने उपरोक्त ३५ रगता का यह विवरण अनेक ख्याति प्राप्त लावनीबाजा और लावनीकारो के सहयाग स प्राप्त किया है। हमार विचार स लावनी साहित्य म य ३५ रगतें ही प्रचलित रही है। परन्तु पुनरपि अन्य रगतो का होना भी असम्भव नही है। अभी लावनी-साहित्य मे तत्सम्बन्धी शोध काय की अत्यधिक आवश्यकता है। हमारी जानकारी मे अब से पूव लावनी साहित्य पर शोध काय नही हुआ है, एतदथ हमारा उद्देश्य भावी शोधार्थियो के लिए माग प्रशस्त करना भी है। अब हम इस चर्चा को यहां विराम दे रहे हैं।

---

१ ह० लि० ला० की एक टेक—लावनीकार—आशिक मौलवी, आगरा।

दूसरा अध्याय

लावनी साहित्य में रस व्यंजना

अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से काव्य को दो पक्षों में विभाजित किया गया है—भाव पक्ष और कला पक्ष—इन दोनों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। कुछ आचार्यों ने कला पक्ष की अपेक्षा भाव पक्ष को अधिक महत्व दिया है, यह ठीक भी है, क्योंकि भाव पक्ष के बिना कला पक्ष की उद्भावना ही नहीं हो सकती। फिर भी दोनों का अपने-अपने स्थान पर अपना-अपना महत्व है।

भाव पक्ष' में रागात्मक और कल्पना तत्वों का अथवा रस, भाव आदि का विवेचन किया जाता है तो 'कला पक्ष' में बुद्धि तत्व अथवा अलंकार, भाषा और शैली का विवेचन किया जाता है।

'भाव पक्ष अनुभूति है तो 'कला पक्ष उसकी अभिव्यक्ति। लावनी-साहित्य में हम इन दोनों ही पक्षों के सजीव रूप में दर्शन होते हैं।

रस काव्य का जीवनाधार है उसका सार तत्व है। रस आस्वाद्य है। यों तो भाव आदि भी आस्वाद्य ही हैं परन्तु रस का प्रभाव तीव्र और दृढ होता है। लावनी-साहित्य में रस की किसी प्रकार भी न्यूनता नहीं। रसोपासक लावनीबाज वर्ण्य विषय में निमग्न होकर तन्मयता प्राप्त करता हुआ श्रोताओं के मन में भी तन्मयता का संचार कर देता है। उसकी गायकी में हम उसके भावावेश और रसोद्रेक के दर्शन कर सकते हैं। 'लावनी साहित्य की इस विशेषता के साथ लावनी गायक की अपनी भी यह एक विशेषता है कि वह अपनी गायकी के रस में स्वयं तो डूबता ही है और श्रोता-समुदाय को भी उसमें स्नान करा देता है।

यद्यपि लावनीकार' किसी परम्परा विशेष में बंध कर अनिवार्य रूप से अपनी रचनाओं में किसी 'रस विशेष' की निष्पत्ति नहीं करता तथापि उसकी रचनाओं में एक, दो नहीं अपितु समस्त रसों का निर्वाह दर्शनीय एवं प्रशंसनीय है।

हम यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि लावनीकार एक 'लोक गायक' है। वह लौकिक अनुभूतियों में ही अधिक रसास्वादन करता है। वह उच्च साहित्य से कोसों दूर रह कर भी अपने साहित्य-संसार में निर्बाध विचरण करता है। यही

कारण है कि वह अपने आपको रस आदि के किसी नियम के बंधन मे नहीं बंधा पाता परंतु रसों का आस्वादन अवश्य करता हुआ पाता है।

लावनी-साहित्य में प्राप्त अनेक रसों में से हम सर्व प्रथम रसराज 'शृङ्गार रस' को अपने विवेचन का विषय बना रहे हैं—

१—शृङ्गार रस

शृङ्गार का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। अन्य रसों की अपेक्षा यह अधिक व्यापक और सभी वर्गों और अवस्थाओं के मनुष्यों को आनन्द प्रदान करने वाला है। इसके दो पक्ष हैं—सुखात्मक (संयोग शृंगार) और दुखात्मक (वियोग शृंगार)। इसमें सभी संचारी भाव आ सकते हैं, सभी संचारी भावों पर इसका शासन रहता है, एतदर्थ इसे रसराज कहा गया है।

लावनी-साहित्य में शृंगार के इन दोनों ही पक्षों की न्यूनता नहीं है। कहीं कहीं पर सुंदर संयोग शृंगार तथा नखशिख आदि का वर्णन है तो कहीं लावनीकार अपनी प्रियतमा की वियोगाग्नि में जल रहा है। सर्वप्रथम हम एक ऐसी लावनी का चतुर्थांश प्रस्तुत कर रहे हैं—जिसमें नख शिख के सकल शृंगार बना कर के एक 'षोडसी' घर से निकलती है। उसके लिए लावनीकार अनेक उपमाओं का आयोजन करता है। कभी वह उसे 'कनक-लता' कहता है तो कभी वह उसे विधुनाथ की संज्ञा देता है। उस 'मृगदृगी सी अभिरामिनी की छटा' को देखकर कुरंग (हरिण) आदि पशु भी अपनी गति को भूल गये। ऐसा प्रतीत होता है कि लावनीकार को भी केवल वर्णन मात्र में 'सुर-दुर्लभ सुख' प्राप्त हो रहा है। उदाहरण इस प्रकार है —

नख शिख सो सकल शृंगार बना अति चंचल कोऊ कामनी चली।
नवला षोडसि—सम कनक लता विधुनाथ-सी मन भावनी चली॥

टेक—कच कुंचित की लखकर के छटा, मन में सकुचा नागनी चली।
लरी आके घिरी मनों श्याम घटा मधुराज भ्रमर्‌ा यामनी चली॥
गति खंज कुरंग भी भूल गया, मत गज सम गज गामनी चली।
धरी एक न कल, पल भर न जरा मृगदृगी सी अभिरामनी चली॥

शेर—चकित छवि लख हो गया—मन कौन ये शुभ आननी।
छटकती आभा है या, मनु चन्द्रमा की चाँदनी॥
जग गया है बन महा, मणि हो यार्के कान्ति हैं।
मद्दत करने को धरा, मानो या आई दामिनी॥

टकटकी-सी रसिकेश्वरि मदुला, मधुरा मधि सुपासिनी
नवला पोडसि-सम ॥[1]

यह लावनी इसी प्रकार के भावो से पूण चार चोको म समाप्त होती है और इस प्रकार की असख्य लावनियाँ लावनी-साहित्य म उपलब्ध हैं। अब एक उदाहरण विप्रलम्भ शृगार का प्रस्तुत किया जा रहा है—

इस लावनी म 'प्रियतमा' ऋतुराज बसन्त के आगमन पर भी प्रसन्न नही, अपितु दुखित है। वह कहती है कि फुलवारिया फूल गई 'मदन' अपनी फौज लकर मुझ पर आक्रमण करने के लिये आ गया है। बसन्त ऋतु भी आ गई, परन्तु अभी तक मेरे पतिदेव नही आये। ये गुलाब, गेंदा, चमेली और चम्पा आदि भी मानो मुझ से वैर चुका रहे हैं। मैं तो विरह की अग्नि में जल रही हूँ और इन मयूर, पपीहा और यहाँ तक कि इस कुरूप कोयलिया को भी अठमेलियाँ सूझ रही हैं—

फूली है फुलवारी हर तरफ को, मदन फौज ले बदन प छाया।
बस अन्त आया हमारा सजनो न कन्थ आया बसन्त आया॥
टेक—गुलाब, गेंदा, चमेली चम्पा, जुही केतगी से चाद तारे।
ये बर लेने को आज सजनो खिले हैं एक सग प्यारे प्यार॥
मयूर करते हैं शोर बन मे कहीं ये आली भवर गुजारे।
पपीहा पापी ने फूक डाली कुरूप कोयलिया कूक मारे॥
मि०—विहग बहुरग बोलते हैं, विरह की अगनी म तन जलाया [2]

यह तो हुआ प्रियतम के वियोग मे विरहा की दयनीय दशा का दिग्दशन अब एक अन्य उदाहरण द्वारा प्रियतमा के वियोग मे प्रियतम की दशा का भी चित्र दशनीय है—

श्री राम और लक्ष्मण अपनी कुटी म बठे वार्तालाप कर रहे हैं—श्री राम पावस ऋतु के आगमन से प्रसन्न तो तब होते जब उनकी प्रिया उनके साथ होती। अब तो यह वन की शोभा भी उनके लिए तन को तपाने वाली है—

---

१ श्री दीनदयाल अग्रवाल द्वारा लिखित एक हस्तलिखित लावनी—इस लावनी की दूसरी विशेषता भाषा के प्रवाह के साथ-साथ टेक म न और चौक मे कोहो का ब धन भी है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पक्ति मे 'यति के पश्चात् भी तुक-साम्य है।

२ एक ह० लि० ला० का चतुर्थांश—लावनीकार—पं० अम्बाप्रसाद।
हमे यह लावनी स्वय प० अम्बा प्रसाद द्वारा लिखित एक ह० लि० ला० प्र० (लावनी पुज प्रकाश) से उनके सुपुत्र श्री हरिशरण शर्मा 'हरि' के सौजन्य से प्राप्त हुई है जो प्राचीन होने के करण कहीं कहीं से कठिनतापूर्वक पढी जाती है।

प्रवेश पावस ऋतु ये लक्ष्मण, उठी गगन घन घटा घुमावन।
बिना प्रिया के बहार वन की लगी प्रचंडित ये तन तचावन॥[1]

इस प्रकार के उद्धरणो के अतिरिक्त लावनी-साहित्य मे विशुद्ध नख शिख आदि के भी अनेक उद्धरण उपलब्ध हैं। किस्से कहानियो के रूप मे भी लावनीकारो ने अपनी प्रियतमा का अतीव सजीव चित्रण किया है। अनेक लावनिया तो ऐसी है जिनमे सयोग और वियोग दोनों का एक ही लावनी मे सुन्दर चित्रण है, यथा—

एक नवोढा की बालावस्था मे ही उसके 'सजन' गुजरात मे गमन कर गए हैं। बारह वर्ष व्यतीत हो गए परन्तु न तो वे स्वय आए हैं, न कोई पत्र ही भेजा और न कोई सौगात ही भेजी है। वह तो बेचारी फेरा मात्र की गुनहगार है, चुप कैसे रह सकती है परन्तु कहे भी तो किससे और कैसे? कहते हुए लज्जा आ जाती है। रात मे दिन मे और कुछ भी नही सूझता, केवल मुझे अपने 'वे ही दृष्टिगोचर होते हैं, यही कारण है कि इस वियोगाग्नि मे जलते हुए भी कल रात स्वप्न मे मुझे अपने पति के साथ सोने का सौभाग्य प्राप्त हो गया ठीक अर्ध रात्रि का समय था, मुझे सोती हुई जान कर वे उत्पात करने लग गए, रात्रि भर उनके साथ रंगरलियाँ मनाती रही। हे सखी! इतना होने पर भी वह निर्दयी प्रभात काल मे मुझ से गले लग कर भी नही गया। यह कोई स्वप्न है या कोई चरित्र है? प्रात आखे खुलने पर पुन मै अकेली ही हाथ मलती रह गई।

यथा—

कल रात पिया के मैं सोई साथ, क्या कहूँ सपने की बात सखी।
खुली आख तो फिर नहिं पाए पिया, मैं मलती रह गई हाथ सखी॥
टेक—मेरा बालापन सेरे बाक सजन, कर गए गमन गुजरात सखी।
ना आप आए ना पाती लिखी, ना भेजी कुछ सौगात सखी॥
हुए बारह बरस, दिये फिर ना दरस, जिस दिन से चढी बारात सखी।
फेरों की नार मैं गुनहगार मन मार मार पछताती सखी॥
मि०—चुप कसे रहूँ दुख का सौं कहूँ मोहे कहते बात लजात सखी
॥ १ ॥

निद्रा की घडी में सोती पडी, थी निखण्ड आधी रात।
सुपने में आन, मोहे सोती जान पिया करने लगे उत्पात॥
कामिन कमान, सो लई तान सोने नादान, कर घात।
चट दई जगा, लई, गले लगा, फिर सोया लिपट, के साथ॥
मि०—मिटी तन की कसक, गई चोली मसक, जब मिला गात से गात

---

१ श्री वासम द्वारा लिखित एवं ह० लि० लावनी की टंव।

॥ २ ॥

रहा इन्द्र घोर घन बोले मोर थी बरिन रुत बरसात सखी।
पिया गये चले, नहिं लगे गले, जब होने लगा परभात ॥
सारी रन रग उडा पिय के सग, जनु सच्चे ग्रङ्ग फहरात।
सुपना है या ये चरित्र कोई मैं बरिन बिरहा की जात ॥
मि०—जब हुआ फजर तब बजा गजर रहे तीन ढाक के पात ॥[1]

वियोगाग्नि मे तप्त विरहिणी को अधिक तप्त करने वाले तो बहुत मिल जायेंगे, यहाँ तक कि बसन्तु ऋतु भी उसको जलाने के लिए ही आती है। परन्तु यहाँ एक अन्य लावनीकार उपरोक्त सखी की दुःखपूर्ण बातें श्रवण करके अपनी सखी के द्वारा कितने सुन्दर शब्दों में उपरोक्त 'सखी' को धर्य बधाता है, वह देखते ही बनता है—यह सखी कहती है कि मेरी नादान सखी, सपने की बात पर ध्यान धरके इतनी उदास क्या होती है? अपने पति को तूने कई दिन मे स्मरण किया था, इसीलिए रात्रि में 'विश्वास' रह गया। किसके पति विदेश नही जाते? गृहस्थी की भी तो चिन्ता होती है, पास मे बैठ कर कोई क्या करे? और जो तू कह रही है कि उन्हे गए हुए बारह वर्ष हो गए तो मुझे वैसे ही अनुभव हो रहा है तुम्हारे साजन को गए तो अभी कुल छह ही मास बीते हैं। जो तुम कहती हो कि तुम्हारे सजन ने रात्रि मे आकर यह किया, वह किया, वास्तव में वह तुम्हारा 'सजन' नहीं था अपितु 'मदन' (कामदेव) था, जो आकर 'परदाफास' कर गया। यथा—

सुपने पे ध्यान धरके नादान, क्यों कर लिया चित्त उदास सखी।
कई दिन में पिया तोहे याद किया, रह गया रात विश्वास सखी ॥
टेक—नहिं किसके सजन करते हैं गमन, और बडी दूर का वास सखी।
गृहस्थ का फिकर है बडा जबर, क्या करैं बैठ कर पास ॥
गुजरात से दी सौगात तेरे, पिय, साथ ही पानी पचास सखी।
सच से नन्द हेरी दे रही ननद है गवाह गुजरातिन सास ॥
मि०—कुछ दिन ना भये गए तेरे पिया को, कुल बीते छह मास सखी—

॥ १ ॥

करके सिंगार सो रही श्रटार चित धर के पिया की आस सखी।
जिस वक्त दबा के सख्त तेरे, नहिं दिया काम ने श्वास सखी ॥
थी आधी रात बरन बिरला, भये मैन बली परकाश।
तेरे पीका रूप धर के अनूप, घट दबा के बठा लाश सखी ॥
मि०—नहिं था वो सजन, था मदन, बदन, से कर गया परदाफास सखी—[2]

---

१ एक ह० लि० ला०—लावनीकार—श्री तेजा मगल।

२ प० शम्भुदयाल द्वारा लिखित दाखिला (लावनी) एक ह०लि०ला० का अर्थांश।

॥ २-॥

इस प्रकार के अनेक प्रश्नोत्तर तथा अन्य लावनिया-साहित्य मे यत्र-तत्र
री पड़ी हैं। विस्तार भय से इस शृंगार रस विवेचन को यही विराम दिया
रहा है।

२—करुण रस

जिस प्रकार करुण रस साहित्य मे भिन्न भिन्न स्थानो पर व्याप्त है इसी
र लावनी-साहित्य म भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। लावनी-साहित्य मे अनेक
तत्र लावनियो के अतिरिक्त अन्य अनेक कथात्मक आदि लावनिया भी है, जिनमे
ण रस की प्रमुखता है—

भरी सभा मे द्रोपदी का चीर हरण हो रहा है। अत्यधिक व्याकुल हो,
दी बहुत देर से श्री कृष्ण को रक्षा हेतु पुकार रही है और कह रही है कि यह
शासन एक हाथ से मेरे सिर के केश गहे हुए है और दूसरे हाथ से मेरा चीर
व रहा है। कृपा, द्रोण आदि धर्म धुरीण और मेरे पति, पाँचो पाण्डव भी यहाँ
देख रहे हैं परन्तु किसी को मुझ पर दया नही आती। आज भीम जैसे बलशाली
र अर्जुन जसे धनुर्धारी को क्या हो गया? आज आपकी बहन अतीव दुखित है,
ा कारण है जो मेरे दु ख में आप हाथ नही बटा सके। यथा—

बहु देर भई मैं पुकार रही, मेरी ध्यान के धीर बधा न सके।
लज्जा हित द्रुपद-दुलारी के, कारण है कवन जो धा न सके॥

टेक—रहा खेंच दुशासन चीर मेरा, एक कर सों शीश के केश गहे।
कुछ समझ मे बात नहीं आती, पाँचो पति बैठे देख रहे॥
विचलित न हुए कभी धर्म से जो, सत-प्राण चले जायें हो चहे।
कृप द्रोण से धर्मधुरीण यहाँ, उठकर न कोई इतना न कहे।

दौर—बैठे भीष्म और विदुर से ज्ञानी जन महा।
मम ओर ध्यान किन्तु किसी का नहीं हुआ॥
हैं विद्यमान धर्मराज भी तो यहीं पर।
किस हेतु मौन बैठे हैं करते नहीं मना॥

चलत—आती है किसी को लाज नहीं, लख कर के।
रहा खेंच दुशासन चीर, कोप में भर के।
हैं देख रहे सब किये हिया पत्थर के॥
करने को मना निज ठौर से ना कोई सरके॥
महाराज कौन कारण है हमारे आज।
नहीं कोई उठ करके बचाता है अबला की लाज॥

कवित्त

भीम से हों बली और नकुल से प्रतापी महा,
पति जिसके, पत्नी हो जो अर्जुन धनुर्धारी की।
प्राणनाथ जिसके हों सहदेव से धीर वीर,
नारी हो जो धर्मराज के से सुविचारी की॥
वही आज करुण दशा में है पुकार रही।
कोऊ नहीं सुनत है अबला निराधारी की।
आओ ब्रजराज आज आप ही बचाओ लाज,
जावती है बीच सभा द्रौपद-दुलारी की॥

दोहा—कियो याद जब भक्त ने, धाये तुरत ही आप।
जरा देर कीन्हीं नहीं मेट दियो संताप॥

मि०—भगिनी दुखियारी के दुख में, केहि कारण हाथ बटा न सके—[1]

३—वीर रस

अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के हाथ में धनुष बाण शोभा दे रहा है और वह चक्रव्यूह भेदन के लिए निश्चय करके युद्ध में जाने को उद्यत है। दोनों दलों में नगारों की तड़ तड़ाहट आरम्भ हो गई है। तोमर, शक्ति कृपाण आदि आयुधों से युक्त हो वीर लोग युद्ध के साज सजाने लगे हैं नगारों के शोर से पृथ्वी और पाताल भी लरजने लगे हैं। युद्ध का दृश्य दर्शनीय है—यथा—

बोले गुरु धन्य धनंजय-सुत धनु तीर तुम्हारे हाथ में है।
अब चक्रव्यूह की भी निश्चय, मा तीर तुम्हारे हाथ में है॥

टेक—उठ प्रात प्रथम दोनों दल में, घनघोर नगारे बजने लगे।
शर, तोमर, शक्ति कृपाण तान बहुवीर बाँकुरे सजने लगे॥
सर त्राण कवच तन कर धारण, घन-सम रणवीर गरजने लगे।
धुधकार नगारन की सुनके पृथ्वी-पाताल लरजने लगे॥

शेर—बढ़ा कर रथ सुभद्रा सुत भयो जब अग्रसर रण में।
गुरु माता पिता और कृष्ण का सुमरन किया मन में॥
प्रथम टंकोर कर सारंग श्रवण लग खींचकर सायक।
व्यूह द्वारे पे जा जयद्रथ के मारे विशिख तन में॥

---

१ श्री दीनदयाल अग्रवाल द्वारा लिखित एक ह० लि० लावनी का चतुर्थांश।

महाराज रगत

भयो विकल जयद्रथ बाण लगे जब कारी।
धस गये व्यूह में वीर धीर बलकारी॥
फिर सिंधराज की सब सेना सहारी।
बढ चल्यो वीर जय कर श्री कृष्ण मुरारी॥
महाराज मच गयो दल में हा हा कार।
प्राण बचा कर भगे वीर जब सह नहिं सके प्रहार॥

दोहा—प्रथम द्वार भेदन किया, पहुँच दूसरे द्वार।
तब जयद्रथ को चेत भयो देखत दृष्टि पसार॥

मि०—ये शब्द श्रवण में गुज उठा, गमशीर तुम्हारे हाथ में है[1]

॥ १ ॥

यहाँ लावनीकार ने वीर रस का सुदर चित्रण करके मानो ज्यों का त्यों ही रण का चित्र प्रस्तुत कर दिया है। इस प्रकार वीर रस के सुन्दर और आकर्षक अनेक उद्धरण लावनी साहित्य म उपलब्ध हैं।

४—वीभत्स रस

इस प्रकार क भावो स पूर्ण अनेक लावनिया उपलब्ध हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है।

लावनीकार कहता है कि बगाल की एक कन्या के वृतान्त को सुनकर अकस्मात ही हाथों म कम्पन आ गया लेखनी का भी वक्षस्थल करुणा स फट गया। श्रोताओ का भी, वह वृतात श्रवण करन के लिए हृदय का पाषाण के समान बनाना होगा। यह बात उन्ह ही सुननी चाहिए जो अपनी भुजाओं के बल से इस वीभत्सता को समाप्त कर सकें और अपने प्राणो का मोह न रक्खें। उस कन्या की यह कथा करुण कथा नही वीभत्स कथा है। यथा—

लेखनी का वक्षस्थल गया फट और अकस्मात् कर काप उठा।
बगाल की अबलाओं का जब आँखों के सामने दृश्य खिचा॥

टेक—एक बग की कन्या का है कथन मुद्रित ये पत्र कल्याण का है।
सुनने के लिए करना होगा उर निजी प्रथम पाषाण का है॥
बल से हों बाहू परिपूर्ण, विश्वास जिन्हें कि कृपाण का है।
उनको ही चाहिए यह सुनना, नहिं मोह जिन्हें निज प्राण का है॥

---

१ श्री मूलचन्द्र(शिष्य प० चुन्नीलाल कानपुर वाले) द्वारा रचित एक लावनी का पद्यांश।

शेर—कहा उसने कि हा मैं लुट गई सुनता नहीं कोई।
मेरी लज्जा गई मरयाद-कुल यू कह विलख रोई॥
किया ह धम मेरा भ्रष्ट बुत्तों ने यवनों ने।
किई ह दुदर्शा मेरी कि विष की बेल है बोई॥

मि०—सवस्व गया छिन मेरा पर, एक पापी प्राण ह कितु बचा

॥ १ ॥

क्या कहू न कहते बनता है अन्याय हुआ जो जो मुझ पर।
मम पती श्वसुर और पिता पुत्र को बांध दिया सब ने मिल कर॥
किया बलात्कार सामने ही, बारी-बारी होकर के निडर।
तिसके पीछे उन दुष्टों ने, अन्याय किया हा! जी भर कर॥

शेर—पकड कर केश धरनी पर घसोटा फिर लगाकर बल।
किई बहु भाति से इन पापियों ने मुझ को पुनि बेकल॥
मेरा सिन्दूर माथे का दिया फिर पोंछ जूती से।
दई सब चूडियाँ कर तोड हूँ तब से मैं अति विह्वल॥

मि०—मिलकर क पुन बल से सब ने हा मुझ अबला से निकाह किया

॥ २ ॥

प्रत्यक्ष मेरे मम स्वामी की, निमम हत्या पहले कर दी।
अरुबाद मे मार पिता जी को, बस लाश मेरे सम्मुख धर दी॥
मेरे बच्चों को मार के फिर आकर के मेरी झोली भर दी।
हा! जल्लादों ने तिस पीछे, यहाँ तक दिखलाई बेदरदी॥

शेर—मेरा मुह रग दिया उस खून से और रग दिये छिन्कर।
मुझे बुरका उढ़ा करके, गये फिर ले वो अपने घर॥
ए हिन्दू जाति, तूने कुछ सुनी दारुण कथा मेरी?
पता ना कितनी बालाओं पे ऐसा ही हुआ यहाँ पर॥

मि०—ओ ब्राह्मण, क्षत्री, वश्य, शूद्र क्या तुम्हें नहीं कुछ ध्यान हुआ—[1]

॥ ३ ॥

यहाँ करुणा और वीभत्स दोनों का समन्वय होने पर भी अधिक चित्रण वीभत्स का ही होने से हमने इसे 'वीभत्स' के अन्तगत माना है।

---

१ श्री दीनदयाल अग्रवाल द्वारा लिखित एक ह० लि० लावनी के तीन चौंक। इस लावनी मे इसी प्रकार के सात चौंक हैं।

यह सम्पूर्ण लावनी पढ कर वास्तव मे ही मन मे विशेष भावोद्वेग होता है। यहाँ भी तीसरे चौक मे बीभत्स अपनी सीमा पर है, जो वीभत्स का चित्र प्रस्तुत करने मे पूर्ण समर्थ है।

५—हास्य रस

लावनी का 'अभिनय' आदि स भी सम्बन्ध रहा है एतदर्थ 'हास्य रस' की लावनी म न्यूनता नही है। उदाहरण द्रष्टव्य है।

नारद मुनि द्वारा प्रार्थना करने पर विष्णु भगवान न उन्हें सुन्दर मुख देने की अपेक्षा बन्दर का रूप प्रदान कर दिया। किसी भरी सभा मे, जबकि सभा भी 'स्वयवरसभा' हो और वहाँ कोई मर्कट के रूप म आए और वह भी वर' चुना जान की इच्छा मे, तो हँसी का फव्वारा छूटना स्वाभाविक ही होता है। नारद मुनि' केवल उन दो गणो क लिए ही नही (जो उनके साथ थ) अपितु सभी के लिए हसी क पात्र बन गए है। लावनीकार की इस रचना म हास्य दर्शनीय है —

राख हिये बिच प्रेम हरी ने नारद को समझाय दिया ह।
मगन होय उन दव ऋषी का, बन्दर रूप बनाय दिया है॥

टेक—राजी हो अत्यत स्वयम्बर को मुनि कदम बढाय दिया है।
महीपाल जुड रहे सबो के अगाडी आसन लाय दिया ह॥

राज-सुता जब ले वर माला चली रूप चमकाय दिया है।
महा सुघड छवि लख सब मोहे मोहनि मन्त्र सुनाय दिया है॥

नर—राव कुल मोहे व पूछो कुछ न नारद की कथा।
मन मथन कर अपना असर एक क्षण मे जिनका मन मथा॥

राजीव लोचन नप सुता लख शीश को ऊचा करे।
मत कहीं भूले मुझे मन प्रेम जिस पर है यथा॥

मि०—राजों को देखत फिरती, चौतरफा मन दौडाय दिया है

॥ १ ॥

रावल मुनि की दशा देख शिव गण मिल हास्य रचाय।
मतलब समझ नहीं सुनी, मन, पर के हाथ बिकाय दिया है॥
राह जौन बठे मुनि नप कन्या वह मग छिटकाय दिया है।
मरकट रूप देख मन हिचकी, इसको कौन बठाय दिया ह॥

शर—राकेश मुखि का लख चरित आश्चर्य मुनि नारद किया।
मधु के अरीले सग रमा हरि चरम आ वहा पर दिया॥
राजी छबी सुदर गिराई माल गल लख नप सुता।
मन हो मुदिक सग ले उसे हरि रास्ता अपना लिया॥
मि०—राते रूप काम भाते मुनि सिर धुनि पेट लफाय दिया है

॥ २ ॥

राय मिला दोउ शिवगण आपन नारद को भडकाय दिया है।
महाराज, मुख देखो दरपन, रूप जगत शरमाय दिया है॥
राई देर न करी मुनो सुन जल मे मूड झुकाय दिया है।
मथन समझ गये मकट छबि लख रिस हो श्राप सुनाय दिया है॥

शर—राक्षस बनो तुम जाय शठ मिलकर हसी मेरा करी।
मसखरी की लो सजा अब जाऊ वहा जहा हैं हरी॥
रासा चले करने मुनो दृग लाल फडके हैं अधर।
मग मे मिले हरि लक्ष्मी-युत सग नप-सुता यौवन भरी॥
मि०—रावणारि यो बोले मुनि से व्याकुल कहा सफर उठाय दिया है[1]

॥ ३ ॥

उक्त 'लावनी' म लावनीकार की जहा नारद मुनि क बन्दर रूप स हास्य प्रकटीकरण की विशेषता है वहा उसका शब्द-चयन भी तदनुरूप ही है—यथा—मूड झुकाय दिया है,' मसखरी, 'रासा, आदि शब्द स्वय म भी हसी के द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त इस लावनी म एक अन्य विशेषता यह है कि आरम्भ से अन्त तक प्रत्येक पक्ति का प्रारम्भिक अक्षर विषम' पक्ति म 'र और सम पक्तियो म म' है।

६—भयानक रस

लावनी-साहित्य म भयानक रस को अनेक प्रकार स चित्रित किया गया है। हम लावनी म वर्णित उस कथा का कुछ अश उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं जिसक अनुसार जयन्त सीता माता क चरण कमल म चोंच मार कर उड जाता है और श्री रामचन्द्र जी अपना भयावह तीर जयन्त क पाछ छोडते हैं। जयन्त भय के कारण इधर उधर व्याकुलता स भागा जा रहा है इन्द्र तक भी उसे अपन यहाँ

---

१ श्री बजरगलाल वगडिया द्वारा लिखित एक हु० लि० ला० के तीन चौक। इस लावनी म चार चौक हैं।

शरण देन से भय मान रहे है। वह भयभीत हुआ ब्रह्मलोक और शिवलोक आदि अनक लोको म घूम चुका है परन्तु न तो किसी न उसका आदर ही किया और न कोई उससे बोला ही—श्री राम का 'शर' जो पीछे लगा था। यथा—

टेक—भक्त हेतु अवतरे कृपानिधि भूतलभार विपत हरने।
अद्भुत लीला करी बसि चित्रकूट सिय रघुवर ने

नाम जयन्त इन्द्र कर सुत मतिमन्द अधम अति अज्ञानी।
धर वायस तन, चला रघुवीर निकट शठ अभिमानी॥

चाहसि रघुनायक बल देखा, प्रभु-महिमा खल नहिं जानी।
जनक-सुता-पद, चोंच हृयि चला भाग नहिं भय मानी॥

शर—चला पदतें रुधिर सिय के तभी रघुनाथ ने जाना।
गहा कोदण्ड पर प्रभु ने सहज शर सींक सन्धाना॥

भया सो अग्नि-सम शायक श्रवण लगि राम ने ताना।
उडा शर देख सो वायस फिरा भयभीत भरमाना॥

मि०—देख कराल व्याल सम शर उर मध्य लगा वायस डरने

॥ ३ ॥

देख बाण भयमान शक्र सुत मुख मलीन व्याकुल भागा॥
ब्रह्म शस्त्र सम, सींक शर है तापसु पाछे लगा॥

धर निज तन गया पास इन्द्र के अति सभीत मन दुख दागा।
विमुख रामतें, जान पितु भयेउ शत्रु निज सुत त्यागा॥

शर—विमुख रघुनाथ तें जाना निकट नहिं तात बठाया।
गया पुनि ब्रह्मपुर आतुर, विकल बिलखात घबराया॥

समझ रघुनाथ कर द्रोही न काहू नेक विरमाया।
मिले मग माहि मुनि नारद, विकल लखि ताहि समझाया॥

मि०—करि हैं नाथ सनाथ जाय रघुनाथ चरन को गह शरने

॥ ४ ॥

ब्रह्म लोक, शिवलोक फिरा भयभीत विकल तिहु पुर डोला।
ना काहू ने, दिया आदर ना कोई मुखतें बोला॥

तब कहि त्राहि चरण गहि प्रभु के गिरा त्याग वायस चोला।
एक नयन कर, तजा शठ रामचन्द्र कर बल तोला॥

शर—कहे हरदयालसिंह महाराज रयालीराम गुरु ज्ञानी ।
सुमिर रघुनाथ निशिवासर मिले सुरधाम रजधानी ॥
धरम मे लीन बलवासिंह, धरमसिंह रहे ध्यानी ।
कहें गुणवंत लाला लाल पन्ना परम प्रिय बानी ॥
मि०—हुकमचंद कहे रूपचंद पद बंद फंद लागे जरने [1]

॥ इति ॥

यहाँ कब्बे के भय का चित्रवत सुंदर वर्णन किया गया है।

७—रौद्र रस

'लावनी साहित्य' में अन्य रसों के साथ 'रौद्र रस' का भी अपना स्थान है। हम जिस लावनी को रौद्र रस के लिए उदाहरण स्वरूप रख रहे हैं वह लावनी ऐसी प्रतीत होती है मानो केवल 'रौद्र रस' का चित्रण करने की ही दृष्टि से रची गई है क्योंकि इस लावनी में स्थाई भाव, आलम्बन और उद्दीपन आदि की भी पृथक्-पृथक् चर्चा की गई है कुछ अंश देने की अपेक्षा हम यह सम्पूर्ण लावनी प्रस्तुत कर रहे हैं—

महाराणा अपने दरबार में सज सजाए बैठे हैं। उनका एक हाथ कृपाण पर है। अन्य वीर भी निज निज आसनों पर बैठे हुए हैं। उसी समय एक दूत ने सूचना दी कि शत्रु आ का दल इधर बढ़ता हुआ आ रहा है। मान (मानसिंह) भी अपना मान खोकर विशाल सैन्य बल के साथ आ रहा है। यह सुनते ही महाराणा के हृदय में एक लहर सी उठी और भुजाएं फड़कने लगीं। पल भर में ही वह अति उज्जवल वर्ण वाला राणा रक्त के समान लाल हो गया। दोनों आँखें लाल एवं कराल हो उठीं। त्योरी चढ़ गई। किटकिटा कर ओष्ट चबाने लगा। भ्रू वक्र हो गई और क्रोधित हो बोलने लगा। सिंह की भाँति हुंकारता हुआ उतावला होकर दाँत पीसने लगा। यथा—

भावों से भरी हो ओज भी हो, विद्वत्ता झलकती हो जिसमे प्रखर।
दस रसों मे से केवल चुन कर चित्रित रस रौद्र को लेखनी कर॥

टेक—जिस समय शिविर मे बैठा था राणा दरबार लगाए हुए।
निज निज आसन पर वीर सकल बैठे थे सजे सजाए हुए॥

---

१ ख्याल रत्नावली (प्रथम भाग) पृष्ठ—४३-४४।
प० रूपकिशोर द्वारा रचित लावनी के अंतिम तीन चौक। इस लावनी मे चार चौक हैं।

एक कर था कृपाण पै पड़ा हुआ, उत्साह से मन हर्षाये हुए।
होता था प्रतीत के दूत हैं ये, यमराज के भू पर आए हुए॥
दार—उस समय लेके संदेशा दूत एक आया वहाँ।
यूं लगा कहने कि अरि दल आ रहा चढ़ता यहाँ॥
'मान' भी निज मान खोके, आ रहा है संग मे।
है प्रबल सेना सकल, आया हूँ मैं लखकर तहाँ॥
मि०—सुन करके भुजाएँ फड़क उठीं राणा के हृदय मे उठी लहर
॥ १ ॥
अति उज्ज्वल वरण विशाल जो था, हो गया लाल एक पल भर मे।
दृग लाल-कराल भये दोनों कुछ ही पल के बस अंतर मे॥
त्यौरी को चढ़ा यूं कहने लगा, लेकर कृपाण को निज कर मे।
किटकिटाने होठ चबाने लगा, अति क्रोधित हो बोला स्वर मे॥
दार—मैं ऐसा हू मचा दूं गा प्रलय एक पल मे जाकर के।
ये कहता आज हू मैं कुल शिविर भर को सुना करके॥
कहा है फौज यवनों की बता दो इस घड़ी मुझको।
अभी मैं लौट कर आता विजय अरि दल प पा करके॥
मि०—भृ वह भई दोनो तत्क्षण गगा पहुँच तुरत कृपाण प कर
॥ २ ॥
भुजदण्ड के अङ्ग फड़कते थे तुल, तूणीर प कर जाता था कभी।
आवेश मे आ तलवार का भी झटका सा लग जाता था जभी॥
उद्दीपन उग्रता जिसमे हो वह आते थे भाव चेहरे प सभी।
गह करके शस्त्र भाषण कठोर देता जाता कर गव तभी॥
दार—उछलता था सिंहासन पर कभी कर क्रोध अति मन में।
भयकर हो कभी जाता समाता था न निज तन में॥
चपलता उग्रता आवेश में आता कभी वो था।
कभी हुँकारता था हो जनु कोई सिंह उपवन में॥
मि०—पीसता था दाँत उतावला हो उठती थी लहर कह जाके समर
॥ ३ ॥
कवि सूरज तेरी लेखनी के, समझेगा अनाड़ी भेद ही क्या ?
रस रौद्र स्वरूप अनूप को जो तूने है विचित्र ये ख्याल कथा॥
लक्षण हैं सकल अनुभाव सहित, आलम्बन उद्दीपन भी भरा।
पड़ती है दिखाई इसमें कुल सचारी भावों की भी छटा॥

नर—है स्थायी भाव इसमें क्रोध दृष्टिगत हुआ ।
गा रहा सीलू ह मुख से काव्य रस कविता सदा ।।
ओज तेरी तूलिका में ह सदा से दीनानाथ ।
आज ईश्वर की कृपा से हो रहा आनन्द महा ।।
मि०—रस काव्य कला पूरित श्यामा, तूणीर से तेरे निकलते हैं नर १

॥ ४ ॥

यहाँ प्रत्यक्ष ही रौद्र रस का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है ।

८—अद्‌भुत रस

'लावनी-साहित्य म वस्तु वचित्र्य के अनक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—
एक बात अचम्भी देखो मियां बिल्लियों को जो चुहियां खाने लगी ।
गन्धव को गान सुनाता गधा, सुन इन्द्र की रुह चकराने लगी ।।
टेक—लख नाच पिनाच पिनाचिन के मु ताक परी हो जाने लगी ।
नमशीर ने ढाल पे वार किया तब तेग म म्यान समाने लगी ॥
एक बाज का बाजू पकड चिडिया, पर फेंक के मास चबाने लगी ।
तब अन्धे ने देखके हैफ किया गुगी गुरु ज्ञान बताने लगी ॥
मि०—मगराज को मार तब मग ने दिया सुन बहरे की बुद्धि डुलाने लगी २

॥ ५ ॥

यहाँ अद्‌भुत रस का सुन्दर चित्रण किया गया है । लावनी-साहित्य मे अद्‌भुत रस के ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं ।

९—शान्त रस

लावनी साहित्य मे शान्त रस के अनेक उदाहरण यत्र-तत्र दर्शनीय हैं ।

लावनीकार मन को सम्बोधित करके उसे ससार से विरक्त होने का, क्षमा शील, सन्तोष, दया आदि के धारण का माया से प्रीत त्याग का उपदेश दे कर शान्ति का पाठ पढाना चाहता है क्योकि यह 'शान्ति ही मोक्ष पद रूपी फल का प्रदान करने वाली है । इसी से अमरता को प्राप्त कर आवागमन और 'चौरासी का त्रास समाप्त किया जा सकता है । इसी से मनुष्य शिवजी के समान होकर कलाशी का वासी भी बन जाता है । यथा—

---

१ श्री दीनदयाल अग्रवाल द्वारा लिखित ह० लि० ला० ।

२ मा० कन्हैयालाल काल कवि द्वारा लिखित एक ह० लि० ला० का चतुर्थांश ।

रे मन पक्षी छोड़ भिरमना, क्यों फिरता जंगल जंगल ।
हरे वृक्ष की डाल बैठ कर राम नाम भज भाग कुशल ॥
टेक—काल बधिक बरी है तेरा, सो सब तेरी घात में है ।
बचा जाय तो बच इससे नहिं फिर तू इसके हाथ मे है ॥
प्रीत त्याग माया की कर, क्यों माया के उत्पात मे है ।
करनी करे तो अच्छी कर चल, दिन मे है सोई रात में है ॥
मि०—'ब्रह्म बीज' बो ते शरीर में, चाख खुशी तरुवर के फल

॥ १ ॥

ब्रह्म बीज की पूछते पहले, अच्छा किसी गुरु ज्ञानी से ।
तिस पीछे रो रोके उसको सींच दृगन के पानी से ॥
करम कला उपजे उसमें वो अपने आप निशानी से ।
बीज मन्त्र पढ़ पढ के उसको बढा वेद की बानी से ॥
मि०—जगत विरक्त होकर के कर भजन, मिटे सभी माया चचल

॥ २ ॥

क्षमा शील-सन्तोष दया ये हैं तरुवर के पात हरे ।
और वो फल से फूल रहे हैं जो तू केवल कर्म करे ॥
डाल यही है हरी कि जिसमें भूल-पात सब रहें भरे ।
जड है शिव रूपी कल्याणी, क्या कोई उसको पशु चरे ॥
मि०—है अखंड नहिं जिसका, रूप रंग सब है उज्ज्वल [१]

॥ ३ ॥

१०—वात्सल्य रस

'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (द्वारा डा० गोविन्द त्रिगुणायत) के पृष्ठ १६६ पर गोस्वामी तुलसीदास की रचना की निम्नलिखित चार पंक्तियां 'वात्सल्य रस के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत की गई हैं जिन्हें हम 'लावनी साहित्य' की 'रंगत तबील' के अन्तर्गत भी गिन सकते हैं ।

कबहूं शशि मागत आरि करें, कबहूं प्रतिबिम्ब निहारि डरें ।
कबहूं कर ताल बजाय के नाचत मातु सबै मन मोद भरें ॥
कबहूं रिसिआई कहें हठि कै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरें ।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में विहरें ॥

---

१ प० पन्नालाल (आगरा) द्वारा रचित एक ह० लि० सा० के तीन चौक ।

कहीं पे साकी, कहीं पे सागिर कहीं बहदते मुल म ही तो हू।
कहीं पे गेसू लटा कहिं जुल्फे सम्बुल म ही तो हू॥
मि०—अजब तरह तन-चमन बसा गुलजार, मुझे अपना देखा[1]
मस्त हुआ मैं,

॥ १ ॥

इस लावनी मे एक ही उपमेय के लिए ('मैं के लिए) गुल, बुलबुल, साकी, सागिर, गेसू लटा आदि अनेक उपमाना की विद्यमानता के कारण यहाँ मालोपमा अलकार है।

३—शब्दालकार

टेक— जानकी है तकरार नार नहिं की मैं बात अजान की है।
जानकी न दूगा, जान को मालिक इस जो जानकी है॥

यहाँ उक्त (लावनी की) टेक म—रावण अपनी पत्नी मन्दोदरी स कह रहा है कि—हे नार जान (जीवन) की तकरार ठनी हुई है मैं जानकी (सीता को) को नही लौटाऊगा यह जानकी (सीता) मरे जी और जान (जीवन) की मालिक है।

यहाँ जानकी ('जान की) शब्द का चमत्कार दर्शनीय है। यदि यहाँ पर जान की क स्थान पर सीता जो आदि अन्य पर्यायवाची शब्द रख दिये जाएँ तो यह चमत्कार नष्ट हो जायेगा एतदथ यहा शब्दालकार है।[2]

४—छेकानुप्रास

टेक—कक्का कर में लेकर कृपाण, हय चढ़े वीर रण में जाये।
खख्खा खाली करदे मदान शका न काल की भी खाये॥[3]

यहा उक्त लावनी टेक म कक्का और खख्खा क साथ 'कर और 'खाली, आदि की आवृत्ति एक ही बार होने के कारण यह छेकानुप्रास है।

५—वृत्यानुप्रास

कलिकाल का काम कराल कडा करें क्या कितने कलपाके गए।
खन खेलत खेल खिलारो खिरक खाली खल खेल खिलाके गए॥

टेक—गम्भीर गए गरबाए गरब, गिर गिरते गरब गला के गए।
घन घोर घमड घिरे घर घर घमसानी घाल घलाके गए॥

---

१ प० शम्भूदास द्वारा लिखित एक अप्रकाशित लावनी का चतुर्थांश।
२ प० चुन्नीलाल, कानपुर वाली द्वारा लिखित एक ह० लि० ला० की टक।
३ इन पक्तियो के लेखक द्वारा लिखित लावनी एक टेक।

चिन्तातुर चतुर चकोर चली चातक चिनचेत चिता के गए।
छलिया छिन छिन छर छन्द छिपा, छल छाड़त छान छवाके गए।।
मि०—जग जाच जिये जीवन जुग जिन जगल जुग जाप जपाके गए [1]

॥ १ ॥

इस लावनी में 'क' 'ख' आदि वर्णों की आवृत्ति एक बार से अधिक होने से यहाँ वृत्यानुप्रास का सजीव चमत्कार द्रष्टव्य है।

६—यमक

टेक—हमदम की कसम, हमदम के लिए हमदम से गए, हमदम न मिला।
बढ़-बढ़ के जख्म नासूर हुए, मरहम भी गए, मरहम न मिला॥

यहाँ 'हमदम' और 'मरहम' शब्दों में सुन्दर 'यमक' के दर्शन होते हैं। एक ही शब्द अनेक अर्थों का समन्वय देखते ही बनता है एतदर्थ यहाँ 'यमक अलंकार' है।

७—वक्रोक्ति

हे प्राण पियारी खोलो उठ कनक किवारे।
तुम को हो पिछली रात पुकारत द्वारे?॥

टेक—हम माधव हैं, मधुरी धुन धारन हारे।
तो बसो जाय, निरवैनो पार किनारे॥
हम बिरजनाथ बृजवन में विचरन हारे।
जा होवो ठाढ़े ये जहाँ बसें वन जारे॥
मि०—हम हैं स्याने तो घर घर करो उतारे

॥ १ ॥

हम हैं प्यारी घनश्याम, तिहारे प्यारे।
तो बरसो वन बागन में गरज-सहारे॥
हम भोगी हैं, सब भोग विलास हमारे।
तो चाहिये वन से वास विरक्त तुम्हारे॥
मि०—हैं हरि तो क्यों बैकुण्ठ विलास विसारे

[२]

हम रागी हैं, अनुरागी पुरुष विचारे।
तो राग अलापो द्वार बजा इकतारे॥

---

१ प० शम्भूदास द्वारा लिखित ह० लि० सा० का एक चौक। इस लावनी में छह चौकों में इसी प्रकार सम्पूर्ण ककेहरा बांधा गया है।

हम हैं विरही बजचन्द्र विरह के मारे।
तो बसो विरहणी ललिता पे सम प्यारे ॥
मि०—है बनवारी, तो बन में करो गुजारे

[३]

हम हैं मन मोहन नटवर नन्द दुलारे।
तो फिरो मती मोहन बज कपटी लार ॥
आओ जी बठो धरमा लाल पुकारे ॥
पन्ना पुनीत प्रति उत्तम पदनि उचारे ॥
मि०—हैं लल्ला रूपकिशोर दृगन के तारे [1]

[४]

इस लावनी मे श्रीकृष्ण जी रात्रि को विलम्ब से घर आए हैं और राधिका से किवाड खुलवा रहे हैं—राधिका क द्वारा पूछे जाने पर कि आप कौन हैं, श्री कृष्ण कभी अपने को माधव कभी वृजनाथ कभी घनश्याम और रागी तथा बनवारी आदि बताते हैं परन्तु राधिका प्रत्यक बार वक्रोक्ति के द्वारा उन्ह कह दती है कि यदि आप मधुरी धुन धारण करने वाले माधव है तो यहां तुम्हरा क्या काम है ? त्रिवेणी के उस पार जाकर बन्शी बजाओ, यदि वृजवन म विचरण करने वाले वृजनाथ हो तो, जहा बनजारे रहत हैं, वहा जाओ। यदि तुम घनश्याम हो तो वन बागो म जाकर गरजो और बरसो। यदि तुम रागी हो तो द्वार द्वार पर जाकर इकतारा बजाओ और रागो का अलापो। यदि तुम बनवारी हो, तो बन म जाओ वही गुजारा करो—आदि—इस प्रकार अभीप्सित अथ स भिन्न अथ ग्रहण किया जाने के कारण यहा 'वक्रोक्ति' अलकार का अतीव सुन्दर एव आकषक चित्रण हुआ है।

८—चित्रालकार (चित्र लावनी)

जब कोई कवि छन्द योजना मे एसे वर्णों का नियोजन करता है जिनसे, विशेष प्रकार के विन्यासो द्वारा विशेष प्रकार के चित्रो का प्रादुर्भाव हो सके, तब उस छन्द योजना को 'चित्र काव्य' के नाम से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार क चित्र काव्यो मे विद्वानो ने वास्तव मे अलकारत्व नही माना है। परन्तु इससे कवि का बुद्धि कौशल तो दृष्टिगोचर होता ही है। इस अलकार द्वारा कवि कमल साथिया, छत्र, चक्र चवर ध्वजा, हाथी घोडा, वृक्ष और दपण आदि के चित्र प्रस्तुत करता है।

---

१ प० रूपकिशोर (आगरा) द्वारा लिखित एक ह० लि० ला०।

लावनी-साहित्य मे इस प्रकार का प्रयास अनेक ख्याति प्राप्त लावनीकारों ने किया है। हमे अपनी खोज मे, इस प्रकार के कुछ 'चित्र-ख्याल' या 'चित्र-लावनी' प्राप्त भी हुई हैं। यद्यपि इस प्रकार की चित्र लावनिया अन्य भी अनेक अखाडो' में उपलब्ध हैं परन्तु आगरे के अखाडे मे इनका विशेष प्रचलन रहा है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१—चित्र लावनी

रस रास रचो वन में नव चोर सरासर।
रच राच रहे न तजें तन हेर चराचर॥

टेक—रव धारा मौन रस का सर नमो राधावर।
रत ताल होर लख के खल रही लता तर॥
रव लय राधा वर को, रव धारा पल-वर।
रग रग लालो लरजे, रस लोला गर गर॥

मि०—रख आसन नोरध का धरनो नस आखर

[१]

रद साहस रख नतचात न खर सह सादर।
रद रह साहर रन मे नर रह साहस दर॥
रह रह बरन वन में नव वर ने हर हर।
रम का पै रस हरके रहे सर प कामर॥

मि०—रव रोस हेर रन रहे सरोवर

[२]

रसना रव मीना ने नाभी वर नासर।
रज राज हेर के की के रहे जराजर॥
रगना वस है दावा दा है सब नागर।
रम माया का रनते नर काया भामर॥

मि०—रज्जक जारा खल का लख राजा कज्जर

[३]

रथ रथ रोको का पै का कोरी थर-थर।
रन की लोला दर क रद साली को नर॥

रह नाभा रथरत मे तर धर मा ना हर ॥
रचना लर लाला का साला रल ना चर ॥

मि०—सर के पा रूप कहैं रूप रूपा के सर [1]

[४]

॥ इति ॥

इस लावनी म एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसम प्रत्येक पक्ति म प्रथम और अन्तिम अक्षर 'र' आया है और अधिकसरयक अक्षर बिना मात्रा के हैं विशेष रूप से प्रथम और अन्तिम शब्द ।

इस सम्पूर्ण लावनी का इस प्रकार साथिया म लिखा जा सकता है कि साथिये के एक एक भाग का उलटा-सीधा करके दोनो प्रकार से पढा जाने पर यह सम्पूर्ण लावनी प्रत्यक्ष हो जाती है । इसका चित्र पुस्तक के अन्तिम पृष्ठो म सख्या एक पर देखें ।

चित्र लावनी—२

चामर कदली शीट कमल, चारा को चार प्रकार कहूँ ।
इनको करके एक सुनावे उसका परम उदार कहूँ ॥

टेक—श्याम सोम यम हेम छेम भ्रम भूम रूम रस भ्रम जम-जम ।
याम तुम बाम सोम किम नेम धाम इम जिम सम दम ॥
श्याम दाम भ्रम भूम धूम रम धाम धाम दम-दम हम हम ।
राम नाम-सम काम धाम मम, नेम प्रेम क्रम क्षम क्रम तम ॥

मि०—अधम निश्चरी काव्य जिसे, कहते हैं, सो विस्तार कहूँ
इनको करके

[१]

लाल भाल गल माल डाल बल, शाल शाल खल दल-पल पल ।
नैल बाल भल लाल पाल कुल काल व्याल दल दल मल-मल ॥
ग्राल बाल कल जाल टाल खल घाल हाल हिल मिल थल यल ।
काल-व्याल दल डाल कल रल भूल भूल फुल दल कल मल ॥

मि०—चार लेन सम्पुट क्रम अक्षर, अय ग्रन्थ अनुसार कहूँ
इनको करके

[२]

---

[1] प० रूप किशोर (आगरे वाले) द्वारा लिखित एक ह० लि० 'चित्र लावनी' ।

शूर वीर वर धीर बीर हर, पीर हीर पर घर गिर वर ।
वार-वार सर मार-मार अर, छार छार कर-कर हर हर ॥
जोर-शोर कर घेर-घेर घर, मार धार फुर कर धर घर ।
पार-पार सर पूर-पूर सुर, हेर-हेर डर कर पर पर ॥
मि०—नीति धर्म पद धीर बखाने, अपर स्वरूप सुधार कहूँ
इनको करके

[३]

मीन मन मन लेन सन तन, मेन देन धुन गुन गिन गिन ।
चैन ऐन घुन बैन मान हन, सीन पीन पुन मन छिन छिन ॥
बीन तान सुन कान छान धन, ध्यान कान बिन हन दिन दिन ।
मन बान तन तान दान हन, खान-पान बिन हन तन जिन ॥
मि०—परमा लाला लाल परम, पन्ना रूपा का प्यार कहूँ
इनको करके

[४]

इस लावनी को नीचे चित्रित कर के दिखाया जा रहा है तथा समझने की सुविधा के निमित साथ ही चौक संख्या आदि भी लिख दी गई है।[1]

लावनी-साहित्य में इस प्रकार की अन्य अनेक चित्र-लावनियाँ प्राप्त हैं परन्तु विस्तार भय के कारण यहाँ पर हमने केवल दो ही चित्र-लावनियाँ उद्धृत की हैं।

६—अन्योक्ति अलंकार

गुलशन मे है सर गुलों की, गुलों से रोशन तख्ते चमन ।
चमन मे सब्जी, सब्जी मे परत पत्तो मे सबनम दुर अफगन ॥
टेक—अफगन में है आव, आव में नम, नम में बरगे सोसन ।
सोसन में है जबां, जबां में शीरीं में शीरीं सखुन ॥
सखुन में लज्जत, लज्जत में उल्फत, उल्फत में आराम-अमन ।
अमन में राम, राम में तबियत तबियत में है गुंचे दहन ॥
मि०—दहन में दांत, दांत में मिस्सी मिस्सी में अमवट की पवन
॥ १ ॥

उक्त लावनी में केवल एक-दो वस्तुओं का ही नहीं, अपितु अनेक वस्तुओं का परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है एतदर्थ यहाँ अन्योन्य-अलंकार

---

१ इस लावनी की 'टेक' और प्रथम तीन चौकों के 'मिलान' चित्र रूप में प्राप्त न होने के कारण, चित्रित नहीं किए जा सके हैं।

है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पंक्ति का अंतिम शब्द ही उससे आगे वाली पंक्ति का प्रथम शब्द होने के कारण यहाँ 'सिंहावलोकन' भी दर्शनीय है।

१०—विनोक्ति अलंकार

बिना म्यान सूनी कृपाण क्षत्री सूने संग्राम बिना।
भुजंग मणी बिन है सूना है सखी सूनो श्याम बिना ॥

टेक—बिन बादर के बिजुरी सूनी तारागण सूने रात बिना।
रन शूनी बिन है सूनी हैं तरवर सूने पात बिना ॥
पंचानन बिन जंगल सूना खेती सूनी बरसात बिना।
भानु बिना दिन है सूना, चातक बूंद स्वात बिना ॥
मि०—बिन गुलशन के बुलबुल सूनी आशिक आह कलाम बिना
॥ १ ॥

बिन ग्वालों के गऊ सूनी नदिया सूनी नीर बिना।
बिन अफसर के दल है सूना, सूना शूरा शमशीर बिना ॥
बिना ज्ञान के हृदय सूना, सूना मस्तक तकदीर बिना।
नारि कंथ बिन है सूनी सूना भाग अबीर बिना ॥
मि०—बिन श्रद्धा नहिं दान, है सूना मुखारविन्द हरिनाम बिना
॥ २ ॥

उक्त लावनी में अनेक वस्तुओं के बिना अनेक वस्तुओं को सूना (अशोभित) कहा गया है। एतदर्थ यहाँ 'विनोक्ति अलंकार' है।

११—विषम अलंकार

ना जिसके संग में बसंत अपना उसे तो है अब अपनी जुदाई।
बगर बालम के ये बेहूदी तूं कैसा मालिन बसंत लाई ॥

टेक—बसंत खेलेंगी वो सुहागिन के जिनके पहलू में कंत होगा।
हमारे हक में तो दिन खिजां के किसी के हक में बसंत होगा ॥
अलम हमारे लिए आज, सुख सौतिन के घर बसंत होगा।
हिज्र में हम दम के कोई दम में इस मेरे दम का बसन्त होगा ॥
मि०—है ऐसा मितर कौन हमारा जो प्राण प्यारे को दे मिलाई
॥ १ ॥

यह देख छाई बहार कैसी बनाये फिरती है शकल कैसी।
बसंत उनका कि जिनके पिव घर, मुझ चंदरी की बसंत कैसी ॥

---

१ मुन्शी राजेराम (उर्फ—नत्थूसिंह) द्वारा लिखित एक अप्रकाशित लावनी।

तू और जलती को क्यों जलावे, भला हो तेरा री हट परे सी।
न आवे दुश्मन के दुश्मनों को, ये आई मुझको बसन्त जैसी ॥
मि०—यहाँ जुदाई से ज्यान जलती, तुझे तो बैरिन चाहे बधाई[१]

॥ २ ॥

उक्त लावनी मे मालिन द्वारा बसन्त की बधाई दी जाने पर विरहिणी उसे अनेक प्रकार के उपालम्भ देती हुई जली कटी बातें सुनाती है और कहती है कि बसन्त तो उनके लिए है जिनके पति घर पर हैं मेरे लिए बसन्त कैसा? यहाँ 'विरहिणी' के साथ 'बसन्त' का वर्णन अनुचित होने के कारण या विरोधी या विषम होने के कारण विषमालंकार है।

हमने ऊपर कुछ साधारण अलंकारों की चर्चा की है। वैसे, लावनी-साहित्य में अन्य भी अनेक अलंकार विद्यमान हैं, परन्तु विस्तार भय के कारण यहाँ समस्त अलंकारों की चर्चा सम्भव न जान कर हमने कुछ ही अलंकारों को चुना है। यदि इस दिशा में अन्य शोधार्थी कार्य करें तो बहुत कुछ सम्भावनाएं हैं।

नोट—'चौक' तथा 'मिलान' के लिए पुस्तक के अन्त में प्रकाशित पृष्ठ मय चित्र के देखिए।

---

१ प० अम्बा प्रसाद द्वारा लिखित एक अप्रकाशित लावनी का अर्थांश।

चौथा अध्याय

लावनी-साहित्य में बन्दिशें

अलकारा के किंचित विवेचन के पश्चात अब 'लावनी-साहित्य म प्राप्त कुछ सनदो या बदिशा पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

बन्दिश या 'सनद' की परिभाषा विषयक चर्चा हमने प्रथम परिच्छेद म प्रस्तुत की है। साधारण दृष्टि से सनद 'लावनी-साहित्य म अलकार का ही दूसरा नाम कहा जा सकता है।

'लावनी-दगला म प्रतियोगिता के समय या लडी लडाते समय इन सनदो का विशेष ध्यान रक्खा जाता है। यदि एक लावनीबाज कोई सनद-पूर्ण लावनी सुना रहा हो और दूसरा उस पर बिना किसी सनद की या उससे न्यून सनद का लावनी सुनाना आरम्भ कर दे तो उसे तत्काल रोक दिया जाता है और कहा जाता है कि वह भी वैसी ही या उससे अधिक सनद की लावनी सुनाए अन्यथा अपनी पराजय स्वीकार कर ले आदि आदि। उदाहरणतया एक लावनीबाज ने यह टेक सुनाई।

करतार से केवट कहता वचन, अव्वल में यह इजहार करू ।
लटका हू मुझे में धोऊँ चरण, बिन धोये नहीं असवार करू ।।

इस टेक म सनद' यह है कि (१) इसका आरम्भ 'ककहरा' (क ख आदि) से होता है (२) इस एक टेक की दो टेकें बनाई जा सकती हैं, (मध्य मे वचन' और 'चरन पर क्रमश विराम होने के कारण), (३) आधे टुकडे म तिसरफी अर्थात् 'अलिफ, बे आदि का बन्धन है, अर्थात् यदि टेक को उलटा कर के पढा जाय तो टेक' का आरम्भ 'अलिफ बे आदि से और मध्य का आरम्भ 'ककेहरे' स होगा। यथा—

अव्वल में यह इजहार करू, करतार से केवट कहता वचन।
बिन धोये नहीं असवार करू, लटका हू मुझे में धोऊ चरन।।

इस प्रकार उलटने स टेक' का तुकान्त भी करू' के स्थान पर वचन' चरन आदि हो गया।

अब इस टेक पर सुनाने के लिए कोई ऐसी ही टेक चाहिए जिसमें इस प्रकार की सनदें हों या इनसे अधिक सनदें हों। यथा—

कक्का कर में लेकर कृपान, हय चढ़े वीर रण में जाये।
खख्खा खाली करदे मदान, नाका न काल को भी खाये॥

इस टेक में प्रथम तो यह कि यह टेक उसी रंगत (तवील) में है जिस रंगत की प्रथम टेक, दूसरे इसका ककेहरा 'क' से आरम्भ न होकर 'डबल क' कक्का से आरम्भ होता है, तीसरे इस टेक का मध्यान्त भी सम तुकान्तों में होने के कारण इसकी भी दो टेकें बनाई जा सकती हैं, चतुर्थ सनद इसमें यह है कि इसकी 'यति' के पश्चात् पुनः 'उलटा ककेहरा' आरम्भ हो जाता है अर्थात् प्रथम पंक्ति में बारह खड़ी का अन्तिम अक्षर 'ह' और द्वितीय पंक्ति में 'बारह-खड़ी' का द्वितीयान्तिम अक्षर 'श' यति के पश्चात् आया है—अर्थात्, इस टेक को उलटने से टेक का आरम्भ उलटे ककेहरे से और मध्यान्त सीधे ककेहरे से आरम्भ होगा और तुकान्त भी 'जाए खाए' के स्थान पर कृपान, मैदान, आदि हो जायगा। यथा—

हय चढ़े वीर रण में जाये कक्का कर में लेकर कृपान।
शका न काल को भी खाये, खख्खा खाली कर दे मदान॥

इस प्रकार दोनों टेकों में सनद साम्य के कारण यह टेक 'उपरोक्त टेक' पर सुनाई जा सकती है क्योंकि प्रथम टेक में तिसरफी की अधिक विशेषता है तो द्वितीय 'टेक' में उलटे ककेहरे की विशेषता है और साथ में डबल ककहरे की विशेषता द्वितीय टेक में अधिक है। इस दृष्टि से प्रथम टेक सुनाने वाला लावनीबाज अपनी आगामी टेक दूसरे लावनीबाज से मिजल सुनायगा और पुनः दूसरा लावनीबाज प्रथम गायक से मिजल सुनायगा और यह क्रम एक दूसरे की प्रतियोगिता के रूप में तब तक चलता ही रहेगा, जब तक कि उनमें से एक पराजित न हो जाये।

सनदों के इस विवेचन में हम सब प्रथम 'ककेहरे' को ही प्रस्तुत कर रहे हैं।

१—ककेहरा

ककहरा लावनी-साहित्य में प्रचुर मात्रा में प्राप्त है और लावनी-साहित्य में इसका अपना महत्व है। जहाँ लावनी की प्रत्येक पंक्ति क, ख आदि व्यंजनों से आरम्भ हो वहाँ 'ककेहरा' कहा जाता है। लावनी-साहित्य में 'ककेहरे' का बंधन उलटा, सीधा, सिंगल डबल आदि अनेक प्रकार से प्राप्त है जैसा कि उपरोक्त उदाहरण में स्पष्ट है।

२—तिसरफी

यह 'सनद' उर्दू की दृष्टि से ही प्रचलित है। जैसे हिंदी में क, ख आदि से आरम्भ होने वाली पंक्तियों में ककेहरा होता है वैसे ही जो पंक्तियाँ अलिफ,

ये, प आदि से आरम्भ होती है उन में तिसरफी का बन्धन माना जाता है। यह भी उलटा सीधा आदि अनेक प्रकार से प्रयुक्त होता है। यथा—

अलिफ से अल्ला, इलाही अकबर, न पार पाया अपार तू है।
बे बनो में बागो में बस्तियों में, भजन में बस बर करार तू है॥

यद्यपि यह सनद प्रचलित तो उर्दू की दृष्टि से है, तथापि लावनी उर्दू की ही तो यह आवश्यक नही है। हिन्दी की लावनी मे भी इस 'सनद' का प्रयोग पर्याप्त प्रचलित है।

३—चुअग छ अग अठग आदि

लावनीकार लावनी रचना के समय किसी भी एक अक्षर को ले लेता है और एक एक पंक्ति में वह अक्षर न्यूनातिन्यून चार चार बार अवश्य आता है तब उसे उस अक्षर का चुअग कहा जाता है इसी प्रकार जब कोई अक्षर विशेष एक एक पंक्ति में छह छह बार आए तो उस अक्षर का छ अग और किसी अक्षर की आवृत्ति आठ-आठ बार होने से उस अक्षर का अठग कहा जाता है। इसी प्रकार दो अक्षर प्रति पंक्ति में आने से उस अक्षर का दुअग माना जाता है। यथा—

(क) रटा न हरि हर एक छिन नादा नहीं क्यों नकर की जटा।
रात दिना कर रहा नकल कर चाल ख्याल ये अधर डटा॥

(ख) रहेगा राजी रजा से हाजिर, अगर ये करके करार तू है।
रखेगा राहत रजाक तेरी रट हर कर तन आधार तू है॥

उपरोक्त उदाहरणों में क भाग में प्रति पंक्ति में चार या अधिक र होने से यहाँ र का 'चअग' और दूसरे उदाहरण ख भाग में र की आवृत्ति प्रति पंक्ति आठ बार हुई है एतदर्थ यहाँ र का अठग माना जायगा। छअग दुअग भी इसी प्रकार होता है।

४—अधर

इस सनद का लावनीबाजी में विशेष महत्त्व माना जाता है। इस प्रकार की लावनियों में ऐसे अक्षरों का सर्वथा अभाव होता है जिनके बोलने में 'अधर (ओष्ठ) मिलते हों अर्थात् पवर्ग' आदि अक्षर इस सनद में नहीं होते। यथा—

रजा से राजी रहेगा दाना हरिहर रसना अगर रटा।
रगर रगर कर नार चरन से, रत दिना रख ध्यान डटा॥

इस उपरोक्त टेक को गाने या बोलने से कहीं भी ओष्ठों का मिलन नहीं होता एतदर्थ इसे अधर कहा जाएगा। अधर के साथ साथ यहाँ प्रति पंक्ति आठ आठ 'र' होने से इसमें 'र' का अठग भी है, अर्थात् इसमें दो सनद है।

५—बिना मात्रा

इस सनद क अन्तगत वे लावनिया आयेंगी, जिनमे किसी भी वण के साथ कोई मात्रा लगी हुई न हो। इसम केवल वही अक्षर शब्द होते हैं जिनम कही भी आ इ, उ आ ए आदि की 'मात्रा' नही होती। वास्तव मे ही यह एक कठिन काय है, इसीलिए लावनीबाजो म इस सनद का अच्छा महत्व है। यथा—

तन तरसर मन लरजत हरदम चमन पवन तन गरजत घन।
घन गरजत जल बरसत हरदम खरग बदन पर हरत मदन॥

यहाँ सभी अक्षर बिना मात्रा के होने से यह 'बिना मात्रा' या 'बेलगमात' सनद की लावनी है। इसके साथ इस लावनी म एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसकी प्रत्यक पक्ति अपने से पूव वाली पक्ति के अतिम शब्द म आरम्भ होन क कारण यहाँ सिंहावलोकन भी है।

६—रुकन

जब एक टेक म कम से कम दो तुकान्त हो तब उस दूसरे तुकान्त को 'रुकन' कहा जायगा इसी प्रकार कई लावनिया म चार चार और छह छह तक तुकान्तो का मेल होना है, उन्हें हम क्रमश चार चार या छह छह रुकनो वाली लावनी कहेंगे। यथा—

अगर है जानें जहा बसन्ती है खिल बरगे चमन गुलाबी।
बहार में बागवा बसन्ती हुआ गुलजार बन गुलाबी॥

यहाँ 'यति' पर दोनो पक्तियो मे बसन्ती का भिन्न तुकान्त भी होने स इस टेक मे एक 'रुकन' है उसके साथ प्रथम पक्ति म 'अगर' (अलिफ) और दूसरी पक्ति म 'बहार' (बे) आ जाने स निसरफी का सनद और हो गई। एक अन्य उदाहरण और प्रस्तुत है।

यासू से निकल महजम से निकल मजनू से निकल ठनगन से निकल।
हारू से निकल मकनम् से निकल अकनू से निकल मामन से निकल॥

यहाँ एक अन्तिम तुकान्त के अतिरिक्त तीन अन्य तुकान्त और हैं इन्ह रुकन कहा जायेगा—अथात—यहाँ तीन रुकन हैं।

रुकन का अथ है—रुकना—इन स्थानो पर गायक को रुक रुक कर गाना होता है एतदथ इसे 'रुकन' कहा जाता है। लावनीबाज 'रुकन' को भी महत्वपूर्ण सनद मानते हैं।

७—जिला

कई लावनिया म ऐसे शब्दो की विशेष व्यवस्था की जाती है जिनके अथ देखने म तो सीधे प्रतीत होते हैं परन्तु साथ म वे ही शब्द किसी वस्त्र के नाम या

नगर के नाम या हीरे-जवाहरात के नाम या अन्य भी किसी वस्तु विशेष के नाम होते हैं, ऐसी दशा में वे शब्द जिस भी वस्तु विशेष के द्योतक होते हैं वहाँ उसी वस्तु 'जिला' कहा जाता है—यथा—

लखू में लाला ये लाल पन्ना, जो रूपा मोती सलट के निकले।
कथन में प्राशिक नरान खन्ना, ये हीरा माणिक विकट के निकले॥
प्रलख में ओंकार श्याम पन्ना, दयाल पिरभू सुमट के निकले।
विजय में वल्लभ मणी से मन्ना सुमन में 'मानव' लपट के निकले॥

यहा प्रथम पक्ति म प्रत्यक्ष रूप स तो कवि क अपन अखाडे के लावनीकारो के नाम (लाला लाल पन्ना लाल रूप किशोर आदि) हैं परन्तु य ही हीरे जवाहरात आदि के नाम भी होन से यहा 'जवाहरात' का जिला भी है। इसके साथ यति पर तुक साम्य हाने के कारण यहा एक एक रुक्न भा है, अर्थात एक लावनी की दो लावनिया (यति क पश्चात् उलटने स) बन जाती है।

इस प्रकार की अन्य भी अनक सनदा का प्रयोग होता है। हमने यहाँ पर केवल कुछ ही सनदो की उदाहरणार्थ चर्चा की है।

पाँचवा अध्याय

लावनी-साहित्य में विविध भावों का निरूपण

१—गृह-नक्षत्र आदि ज्योतिष' वर्णन

लावनी-साहित्य म एसी अनेक लावनियाँ प्राप्त हैं, जिनमे ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतिष शास्त्रीय चर्चा अतीव सु दर ढग स की गइ है—यथा—

सिर धर गुरु पद पद्म धूर, कर चूर तिमिर रूपी अज्ञान।
सर्व घात ग्रह कहू मकरद युक्त निज बुद्ध प्रमान॥

टेक—वेद मेख वृष अष्ट मिथुन, रवि कक तत्व ग्रह सिह सुजान।
जन्मे कन्या तुले राशि वृश्चिक दिव्य दिशा अनुमान॥

धन समुद्र और रूप मकर युग कुम्भ मीन तये पहिचान।
इनको घाती सूय जो जाने सो जानो विद्वान॥

नर—मेख जन्म वृष पच में मिथुनें नवें पहिचानिये।
उभयो करक सिंहे छठे कन्या दिशा कर मानिये॥

तुल तीन वृश्चिक सप्त धन श्रुति मकर अष्टम् जानिये।
कुभ ग्यारह मीन बारह चन्द्र घातक जानिये॥

मि०—सूय चन्द्र फल कहे सुनो अब मगल के गुण कहू बखान।
सब घात ग्रह कहूँ

॥ १ ॥

२—पिंगल ज्ञान

लावनी-साहित्य म पिंगल शास्त्र विषयक अनेक लावनियाँ रची गई हैं जिनसे लावनीकारो के पिंगल ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है—यथा—

छद पर बन्ध किया चाहे तो पढ़े काव्य पिंगल सुख धाम।
शुद्ध बने सब गद्य पद्य रमणीय वर्ण कर पूरन काम॥

टेक—नूपुर रसना चामर कुण्डल अरु ताटक शब्द गुन ग्राम।
ये सब हैं गुरु की संज्ञा और मानस वलय हार अभिराम॥
वाहन कनक मेरु सम समझो शब्द रूप रस गन्ध समाम।
रेखा कला 'म' तलक विनायक गाय गये य लघु के नाम॥
मि०—सानुस्वार दीर्घ युक्तादिक वि-सर्ग युत गुरु सही कलाम
शुद्ध बने सब

३—वर्णिक मात्रिक आदि छन्द ज्ञान

वर्णिक मात्रिक दोनों छन्द का कहैं वृत्त सदृश अनुमान।
तब जाने को वृत्त में बनाने कुछ हैं पिंगल से ज्ञान॥
टेक—कला संख्या में छंद वर्ण की संख्या को दीजिए घटाय।
जितना बाकी रहे वर्ण सोई लघु की संख्या हो जाय॥
मिलें वर्ण जो उक्त छंद के ताको गुरु लीजे ठहराय।
वर्ण मात्र, वर्णिक मात्रिक दोनों छंद में इसी प्रकार से गुरु लघु देय बताय॥
मि०—खंड मेद मर्करी पताका के बिन हो जाता पहचान
तब जाने

॥ १ ॥

उपरोक्त उद्धरण से लावनीकार का छन्दादिक ज्ञान स्पष्ट है।

४—श्रव्य काव्य आदि का ज्ञान

श्रवण मात्र से छन्द ज्ञान से उसे कहैं सत कवि श्रुत बोध।
सार खींच के उदाहरण बिल्कुल लेवे पद इसी से शोध।
टेक—संयुक्तादि बिन्दु दीर्घ युत विसर्ग से होता गुरु ज्ञान।
पाद अन्त में विकल्प से गुरु लघु वर्णों को कहै सुजान॥
ह्रस्व एक मात्रिक दुई मात्रिक हो त्रिमात्रिक लुट को जान।
अर्ध मात्रा हो केवल सो व्यंजन उसको कहैं महान्॥
मि०—इन वर्णों के क्रमिक ज्ञान से छन्द ज्ञान का लेय सुबोध
सार खींच के

[१]

इस उद्धरण मे श्रव्य-काव्य आदि की ह्रस्व आदि के साथ सुन्दर व्याख्या की गई है।

५—दग्धाक्षर विचार

दु ख हरन शुभ करन कामना भरन बरन शुभ कर दिलशाद ।
दुग्ध वर्ण जो परै तो उसका कर डाले छिन में बरबाद ।।

टेक—देवे सम्पति प्रकार सो भी हृस्व दीर्घ प्लुत सम हो नाद ।
दु ख टले सुख मिले हमेशा इकार से करे छद आबाद ।।
द ध, च, प, से भी ऐसे फल मिलें चले उसकी औलाद ।
दून कर दुख ट, ड, ल य, ह्र, प आदि त्याग कर छद जगाद ।।

मि०—दिखलावे शुभ 'शकार और 'नकार' सरवाभन्द खुशाद
दाध वर्ण

॥ १ ॥

प्राचीन कवियो म 'दग्धाक्षर विचार आदि की परम्परा का यह सुन्दर उदाहरण है ।

६—गणागण विचार

बिना गणागण ज्ञान छद क्यों करके शुद्ध हो सक कथन ।
बिल्कुल लच्छन सही छद का, गाते पिंगल करके मथन ।।

टेक—मगन नगन हैं मित्र भगन औ यगन दास का कर करम ।
महा शत्रुता सगन रगन की जगन तगन हैं दोनो सम ।।
मित्र मित्र से सिद्धि मिले जैं, मिले दास और मित्र परम ।
मिले और कुछ लक्षण उसके मित्र उदासी युत एकदम ।।

मि०—मिले शत्रुओ मित्र तो वृद्धि पीडा की हो उसके तन
बिल्कुल लच्छन सही छद का

॥ १ ॥

लावना के इस अन्त मे कवि का गणागण' ज्ञान दर्शनीय है ।

७—राग रागनी ज्ञान

होय गणागण ज्ञान शान-शौकत से नायर कहलावे ।
छ श्रो राग औ तीस रागनी भरी सभा में बतलावे ।।

टेक—बगाली मधु माध्वी भरवी और सिंघवी बरारी ।
ये पांचों रागनी कहाती भरों की बिरहन नारी ।।
टोडी गोरी और गुनक्ली को कब खबावति भारी ।
मालकोस की पांच रागनी सुनत कहत लागत प्यारी ।।

रामक्लो देशी ग्री ललित बिलावल ।

सग हिंडोल पर मजरो रहे मन बावल ॥

मि०—देशी मट काहरा केदारा मोद से दीपक बतलावे

छ ग्रों राग ग्री तीस रागनी

॥ १ ॥

उपरोक्त उदाहरण से लावनीकार का राग रागनी ज्ञान स्पष्ट रूप से प्रशसनीय है।

८—पद्मनी चित्रनी ग्रादि नारी भेद ज्ञान

उत्तम मध्यम लघु निकृष्ट रति चार तरह की विस्तारी ।

उत्तम रति ह वो ही जो जसा पुरुष मिले वसी नारी ॥

टेक—प्रथम पद्मनी नार चित्रनी दूजी सब गुन ग्रागर है ।

त्रिया शखनी तीजी चौथी चतुर हस्तिनी नागर है ॥

प्रथम पुरुष सु साहेब वरनू दूजा मृग बरन उनागर है ।

ग्रश्व वरन तीजा ग्री चौथा हस्ती तन सुख सागर है ॥

मि०—बरनू इनके भेद गती चारों की कर यारी-न्यारी ।

उत्तम रति है वो ही

॥ १ ॥

इस प्रकार का पद्मनी चित्रनी आदि भेद ज्ञान लावनीकार के सासारिक अनुभव का भी द्योतक है।

६—व्याकरण ज्ञान

कहूँ रीत गीत की मिला मीत बैरी गण—महाराज—

वण—उच्चारण कहूँ विचार ।

फिर छदो की रिचा रूप युत वरणू विविध प्रकार ॥

टेक—क ख, ग घ, ङ ग्र ग्रा हा, ये ग्रक्षर—महाराज—

ग्रोर वरणू विसर्ग विश्राम ।

उच्चारण इन वर्णों का है कठ देश ग्रभिराम ॥ आदि

यहाँ उच्चारण स्थान तथा विसग और विश्राम आदि की चर्चा लावनीकार के व्याकरण ज्ञान की द्योतक हैं।

१०—सगीत-स्वर चर्चा

हो प्रबल गधवाहो वायू नलियों को—महाराज—

करे पूण स्वर को भर के।

कहें उसे गन्धार गती सगीत को लेकर के ॥
वोही स्वर होंगे प्रवृत फिर नाभी में—महाराज—
रूप ये हैं मध्यम स्वर के।
मध्यम से आगे खींचे वो हो धवत भर के ॥
जब षडज रिषभ गधार मध्य औ धे वत—महाराज—
मिलें सुर पाँच बराबर के।
कहें उसे पचम प्रवीण, जो जो हैं उस घर के ॥ आदि

यहाँ लावनीकार न स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि सगीत गाने समय स्वर-साधना कसे वस की जाती है।

११—प्रकृति वणन

गुलशन में है सर गुला की, गुलों से रोशन तख्ते-चमन।
चमन में सब्जी सब्जी में पत्ते पत्तों में सबनम दुर अफगन ॥

यहाँ गुलशन, सब्जी पत्ते आदि प्राकृतिक वस्तुओ का सुन्दर समन्वयात्मक वणन है।

१२—नख शिख वणन

लावनी साहित्य म नख शिख वर्णन का अपना विशेष महत्व है। नख शिख वणन से लावनी साहित्य ओत प्रोत है। यथा—

नख शिख सो सकल शृङ्गार बना, अति चचल कोऊ कामनी चली।
नवला षोडसि सम कनकलता विधुनाय सो मन भावनी चली ॥
टेक—कच कु चित की लखकर के छटा, मन में सकुचा नागनी चली।
खरी आके घिरी मानों श्याम घटा, मधुराज भ्रमा यामनी चली ॥
गति खज कुरग भी भूल गया मत गज सम गज गामनी चली।
घरी एक न कल पल भर न जरा, मृग दृगी-सी अभिरामनी चली ॥ आदि

इस सम्पूर्ण लावनी म नख शिख का सुन्दर चित्रण किया गया है। हमने यहा केवल कुछ ही अश उद्ध त किया है।

१३—उपदेशात्मकता

अनेक लावनीकारो ने उपदेश पूर्ण लावनियाँ भी रची है—यथा—

हिकमत से नसीहत लिखू मैं तुम्हें सुनाऊ—महाराज—
तरीका कर लेना अख्त्यार।
हरदम रखना याद काम पडता है बारम्बार ॥

टेक—एक लवल त्रिया के सदन भूल नहिं जाना—महाराज—
न जा तू सूनी बारवर मे।
रत हरक्त तिरिया सग कभी मत करना बासर मे ॥
पचों में बठ मत दीपक जोत सम्भालो—महाराज—
फूक मत बहते सागर में ॥
सबसे पहले हाथ पात में न दे तू पातर में ॥
जूवे का उधम मत करो चतुर परबीना।
ठाढ़े होकर के नीर कभी नहिं पीना ॥
शठ मूख मसखरा और सुनो ना बीना ॥
कारज में इन्हें मत बूझ तुझे कह दीना ॥
मि०—महाराज हँसो मत भोजन करते बार
हरदम रखना याद काम पड़ता है बारम्बार आदि

॥ १ ॥

अर्थात—मैं तुम्हे कुछ उपदेश पूर्ण बातें बता रहा हू उन्हे कार्य रूप देना और हर समय स्मरण रखना क्योंकि इस प्रकार की बातो से बारबार काम पड़ता है। भूल कर भी किसी नवोढा के घर न जाओ। सूने सेन मे भी न जाओ। पत्नी के साथ कभी प्रात काल रति-क्रीडा न करना। पच लोगो के मध्य बठकर दीपक की लौ को न छेडो और बहत समुद्र आदि मे थूको नहीं। पत्ता आदि मे सब प्रथम हाथ न डालो। अरे चतुर और प्रवीण भाई, जुए का उपद्रव न करो। पानी खडे खडे न पीवो हमने तुम्हे बता दिया है कि दुष्ट मूर्ख और मसखरा आदि व्यक्तियो को विवाह आदि मे न बूझ। भोजन करते समय कभी हसना नही चाहिए—आदि—इस प्रकार लावनीकार की उपदेशात्मकता स्पष्ट ही प्रशसनीय है।

१४—वास्तु प्रकृति चित्रण

वास्तु प्रकृति चित्रण' से किसी भी वस्तु के जन्मजात स्वभाव का चित्रण करने से अभिप्राय है। इस प्रकार के चित्रण लावनी साहित्य मे बहुलता से प्राप्त हैं। इस प्रकार की लावनियो को उपदेशात्मक लावनियो के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है क्योंकि इस प्रकार के चित्रणो से लावनीकार का अभिप्राय परोक्ष रूप से उपदेश देना ही होता है—यथा—गुड-घृत आदि से भी चाहे नीम को सीचा जाए परन्तु वह अपनी कटुता को नहीं छोडता इसी प्रकार दुर्जन व्यक्ति को कोई कितना ही समझाए परन्तु वह वर नही छोडता, आदि-आदि।

गुड घत से बार हजार सिंचे, पर नीम न कडवापन छोडे।
कैसे हो कोई समझाया करे, पर बर नहीं दुर्जन छोडे ॥

यहाँ एक प्रकार से लावनीकार प्राकृतिक वस्तुओं के वास्तु चित्रण के बहाने से उपदेश ही दे रहा है।

१५—प्रख्यानात्मक या कथानात्मक लावनियाँ

लावनी-साहित्य म 'कथात्मक' लावनियाँ भी असख्य रची गई हैं। यहा तक कि साधारण जन समुदाय का विश्वास ही यह है कि लावनी-साहित्य' 'कथा-साहित्य' ही है। विशेष रूप स दक्षिण भारत के अनेक लावनी प्रेमी उसी को 'लावनी' मानते हैं, जिसमे काई कथा या 'कहानी' गा कर सुनाई जाए। पर तु वास्तव मे ऐसी बात नही है कि 'लावनी-साहित्य केवल 'कथा-साहित्य हा है, हाँ इस बात से कथात्मकता की प्रचुरता अवश्य समझी जानी चाहिए। यहाँ तक कि एसी भी अनेक कथात्मक लावनिया हैं जिन स कथा के साथ उपदश भा प्राप्त हाना है। हिन्दी लावनी जगत म महाराजाधिदि सत्यवादी हरीश्चन्द, वीर हकीकत राय रामायण सम्बन्धी कथाए महाभारत सम्बन्धी कथाए, शहादत नामा, भक्त प्रहलाद, भत हरि, कृष्ण-सुदामा, श्रवण कुमार, मोरध्वज आदि के सम्बन्ध म लिखित लावनिया के अति रिक्त ताना मना, राजा रानी, व्याध और मग आदि से सम्बन्धित कथात्मक लावनियाँ भी अत्यधिक मात्रा मे प्रचलित हैं। जसे—

(श्रवण कुमार)

माता पिता-पद प्रीत पाल, नवनीत पुनीत सुयरने को।
कावर लेकर, चले सरवण वन तीरथ करने को॥

(कृष्ण सुदामा)

कर कोटिन करुणा कलाप कहे विलख सुदामा की नारी।
खबर तुम्हारी, बिसारी सखा हैं कैसे गिरधारी? ॥

(मोरध्वज)

तन धन धरनी धाम राज कुल, कोश पुत्र दारा और मान।
सतवादी को, सत्त आगे है सब धूर-समान॥

(भक्त प्रहलाद)

राम सहायक हैं जिनके, उन्हें शोक और सन्ताप नहीं।
जपें नाम को, रैन दिन भूलें एक छिन जाप नहीं॥

कथात्मक लावनियाँ प्राय लम्बी होती हैं, एतदथ विस्तार भय से यहाँ केवल चार टेकें ही उदाहरणाथ प्रस्तुत की हैं।

टेक—एक लवल त्रिया के सदन भूल नहिं जाना—महाराज—
न जा तू सूनी बारवर मे।
रत हरकत तिरिया सग कभी मत करना बासर मे॥
पचा में बठ मत दीपक जोत सम्भालो—महाराज—
थूक मत बहते सागर में॥
सबसे पहले हाथ पात में न दे तू पातर में॥
जूवे का उधम मत करो चतुर परबोना।
ठाढ़े होकर क नीर कभी नहिं पीना॥
शठ मूख मसखरा और सुनो ना बीना॥
कारज में इन्हे मत बूझ तुझे कह दीना॥
मि०—महाराज हँसो मत भोजन करते बार
हरदम रखना याद काम पडता है बारम्बार आदि
॥ १ ॥

अर्थात—मैं तुम्हें कुछ उपदश पूण बात वता रहा हूँ उन्ह कार्य रूप दना और हर समय स्मरण रखना क्योंकि इस प्रकार की बाता से बारबार काम पडता है। भूल कर भी किसी नवोढा के घर न जाओ। सूने खेत म भी न जाओ। पत्नी के साथ कभी प्रात काल रति-क्रीडा न करना। पच लोगो के मध्य बठकर दीपक की लौ तो न छेडो और बहते समुद्र आदि म थूको नही। पत्ता आदि मे सर्व प्रथम हाथ न डालो। अरे चतुर और प्रवीण भाई जुए का उपद्रव न करो। पानी खड खडे न पीवो हमने तुम्हें बता दिया है कि दुष्ट, मूर्ख और मसखरा आदि व्यक्तियो को विवाह आदि म न बूझ। भोजन करते समय कभी हमना नही चाहिए—आदि—इस प्रकार लावनीकार की उपदेशात्मकता स्पष्ट ही प्रशसनीय है।

१४—वास्तु प्रकृति चित्रण

'वास्तु प्रकृति चित्रण से किसी भी वस्तु के जन्मजात स्वभाव का चित्रण करने से अभिप्राय है। इस प्रकार क चित्रण लावनी साहित्य म बहुलता से प्राप्त हैं। इस प्रकार की लावनिया को उपदेशात्मक लावनिया के अन्तगत भी रखा जा सकता है क्योंकि इस प्रकार के चित्रणा से लावनीकार का अभिप्राय परोक्ष रूप से उपदेश देना ही होता है—यथा—गुड घृत आदि से भी चाहे नीम को खाचा जाए परन्तु वह अपनी कटुता को नही छोडता, इसी प्रकार दुजन व्यक्ति को कोई कितना ही समझाए परन्तु वह वर नही छोडता, आदि-आदि।

गुड घत से बार हजार सिंचे, पर नीम न कडवापन छोडे।
कसे ही कोई समझाया करे पर बर नहीं दुजन छोडे॥

यहाँ एक प्रकार से लावनीकार प्राकृतिक वस्तुओं व वास्तु चित्रण के बहाने से उपदेश ही दे रहा है।

१५—आख्यानात्मक या कथानात्मक लावनियाँ

लावनी-साहित्य म 'कथात्मक' लावनियाँ भी असख्य रची गई हैं। यहा तक कि साधारण जन समुदाय का विश्वास ही यह है कि लावनी-साहित्य' 'कथा-साहित्य ही है। विशेष रूप स दक्षिण भारत के अनेक लावनी प्रेमी उसी को 'लावनी' मानत हैं, जिसमे कोई कथा या 'कहानी' गा कर सुनाई जाए। पर तु वास्तव म ऐसी बात नही है कि 'लावनी-साहित्य केवल 'कथा-साहित्य ही है, हाँ इस बात से कथात्मकता की प्रचुरता अवश्य समभी जानी चाहिए। यहाँ तक कि ऐसी भी अनेक कथात्मक लावनिया हैं जिन स कथा के साथ उपदेश भी प्राप्त होता है। हिन्दी लावनी जगत म महाराजशिवि सत्यवादी हरीश्चन्द, वीर हकीकत राय, रामायण सम्बन्धी कथाए महाभारत सम्बन्धी कथाए, शहादत नामा, भक्त प्रहलाद, भत हरि, कृष्ण-सुदामा, श्रवण कुमार, मोरध्वज आदि के सम्बन्ध म लिखित लावनिया के अतिरिक्त तोना मना, राजा रानी, व्याध और मग आदि से सम्बधित कथात्मक लावनियाँ भी अत्यधिक मात्रा मे प्रचलित हैं। जसे—

(श्रवण कुमार)

माता पिता-पद प्रीत पाल, नवनीत पुनीत सुधरने को।
कावर लेकर, चले सरवण वन तीरथ करने को॥

(कृष्ण सुदामा)

कर कोटिन करुणा कलाप कहे विलख सुदामा की नारी।
खबर तुम्हारी, बिसारी सखा हैं कसे गिरधारी? ॥

(मोरध्वज)

तन धन धरनी धाम राज कुल कोश पुत्र दारा और मान।
सतवादी को, सत्त आगे है सब धूर-समान॥

(भक्त प्रहलाद)

राम सहायक हैं जिनके उन्हें शोक और सताप नहीं।
जपें नाम को, रैन दिन भूलें एक छिन जाप नहीं॥

कथात्मक लावनियाँ प्राय लम्बी होती हैं, एतदथ विस्तार भय से यहाँ केवल चार टेकें ही उदाहरणाथ प्रस्तुत की हैं।

१६—देवी देवताओं की लावनियाँ

(देवी जी)

माता आदि सती महामाया जग जननी जन प्रतिपाली।
जय जय काली कृपा कर सकल काज करने वाली॥

(हनुमानजी)

देवों में महादेव बडे और वीरों में महावीर बडे।
रामचद्र के, काज सारे हैं आपने अडे अडे॥

(कृष्ण जी)

करुणा निधि कृष्ण कृपाल हरो कहाँ सोये हो विरद विसारा है।
खल खल्ल खडे मोहे मारन को दुख पावत प्राण हमारा है॥

(शिव जी)

महादेव देवन के देव सुर करत सेव शिव चरनन को।
हो मल भजन कहो जन जय जय जय पचानन की॥

(राम जी)

राम-नाम को त्याग अरे निरभाग नाम जपता किसका।
कर्मों के अनुसार रूप वही धर मेल मिले जोतिष का॥

(गणेश जी)

जय जय जय गज वदन विनाशन विघ्न सकल सुर नायक जी।
नमो विनायक, सिद्ध सतन के सदा सहायक जी॥

(नमदा जी)

मुक्ति मूल अघ मूल समन दुख–, दमन, दिव्य गति देवी है।
स्वग न सन नमदा पापन को असि पैनी है॥

यहाँ केवल सकेत मात्र के रूप म कुछ टेकें ही उद्धरणा के लिए दी गई हैं। साधारणतया लावनी-साहित्य इस प्रकार की अनेक लावनियो स भरपूर है।

१७—राष्ट्रीय लावनियाँ

यद्यपि सम्पूण हिंदी लावनी साहित्य मे भक्ति और शृगार की लावनियो की हो प्रचुरता है तथापि अनेक सम सामयिक लावनियो की भी न्यूनता नही है। विशेष रूप से स्वतत्रता-आदोलन के दिनों म राष्ट्रीय लावनियो की अत्यधिक रचना हुई। यद्यपि लोक-साहित्य के सभी अगो ने स्वतत्रता आदोलन मे अपनी-अपनी भमिका निभाई तथापि लोक-साहित्य के इस अग ने (लावनी ने) जो जन-

जागृति का काय किया, वह सदा अविस्मरणीय रहेगा। यथा—गाधीजी न 'साल्ट एक्ट को रद्द करके असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया है। सरकार की अब दाल नही गली है। समस्त भारत मे स्वतन्त्रता रूपी कली खिल उठी है, नगर-नगर मे स्वय सेवको के दल के दल बन गए हैं। आपस का वैर-भाव दूर करके सभी व्यक्ति भ्रातावत् विचार विमश कर रहे हैं। सब मे परस्पर अत्यधिक प्रेम है और हृदय की बेकली समाप्त हो गई है। प्रत्येक बाजार और गली म खद्दर का प्रचार हो रहा है। आदि—

(असहयोग-आन्दोलन)

वो एक्ट रौलट' को रद्द करके स्वराज की गुचि हवा चली है।
किया असहयोग गाधी जी ने, न दाल सरकार की गली है॥
टेर—समस्त भारत के बीच इस दम, स्वतन्त्रता की खिली कली है।
स्वयम् वो सेवक बने अनेकों, नगर-नगर बीच मडली है॥
विचारते भ्रात एक होकर, वो दूर दुश्मन हवा टली है।
बढ़ा है परिपूर्ण प्रेम सब में हुई दूर दिल की बेकली है॥
मि०—प्रचार खद्दर का हो रहा है बजार में और गली गली है

(विदेशी वस्तु त्याग)

एक हिन्द छोडो विदेशी कपडा, यहा है गांधी का मूल मन्तर।
बिना विदेशी ये वस्तु त्यागे, न होगा भारत कभी स्वतन्तर॥

(वीरता की प्ररणा)

पैगाम मादरे हिन्द का है, शमशीर तुम्हारे हाथ मे है।
अब लाज बचा लो भारत की, तो कीर तुम्हारे हाथ मे है॥

इसी प्रकार कही कोई लावनीकार जनता मे असहयोग आन्दोलन का सन्दश दे रहा है तो कोई विदेशी वस्तु-त्याग का पाठ पढा रहा है और कोई भारत मा की लाज बचाने के लिए हाथ मे 'शमशीर लेकर वीरता-पूण काय करने की प्रेरणा दे रहा है।

१८—अनेक भाषाओं मे लावनियां

जहां तक पथक-पथक लावनिया की बात है न्यूनाधिक रूप म लावनियां भारतवष की प्राय प्रत्येक भाषा मे उपलब्ध हैं। यद्यपि मूल रूप मे व सब लावनिया ही हैं और उन सभी लावनीकारो की वही मान्यताए हैं, जो एक साधारण लावनी-की होती है तथापि उनका अपना-अपना ढग ही उनकी अपनी विशेषता है। उदाहरणतया महाराष्ट्र के लावनीबाज लावनी गाते समय अभिनय कला का भी

प्रदान करते हैं परन्तु हरियाणा और उत्तर प्रदेश आदि स्थानों पर यही अभिनय हेय दृष्टि से देखा जाता है। इसी प्रकार कन्नड भाषा भाषी लावनीबाजों में 'तुर्रा 'कलगी' का पार्थक्य दिखाने के लिए तुर्रा गायक अपने मस्तक पर बेंदी लगाते हैं, परन्तु अन्य प्रान्तों में ऐसी प्रथा नहीं हैं। इसी प्रकार कुछ साधारण परिवर्तनों के साथ लावनी-साहित्य अपने-अपने स्थान पर अनेक भाषाओं में अतीव समृद्ध रहा है। उदाहरण के लिए यहाँ अन्य भाषाओं की लावनियों के कुछ अंश प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(क) कन्नड

होवु बदिस्तु मतु नोडिरो क्रति हिंदुवजनक।
सिद्धिन मन्दि भटर हलगलि पुट्ट लिरल दडक॥
विलातिपिन्द कल विदर कुम्पणि सरकारा।
यल्ला जनरना तरिसि जोर माडि तरबेक हत्यारा॥

अर्थात—तनिक इधर देखिए फिर से हाथ में तलवार पकड़ने का समय आ गया है। हलगलि के शुद्ध देशभक्त अब तक भी अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सके हैं। विलायती लोगों की कम्पनी, जो चोरों की सरकार है, ग्राम के सभी व्यक्तियों को बलपूर्वक अपने वश में करके अपनी आज्ञा का पालन कराना चाहती है। आदि।

कन्नड भाषा की लावनी का यह अंश 'उत्थान' नामक कन्नड मासिक पत्र के जनवरी १९६७ के अंक (सक्रान्ति संचिके) के पृ० १६१ में प्रकाशित डा० शिवराम के एक लेख 'हलगलिय कलिगलू' से लिया गया है। इससे विदित होता है कि बीजापुर के अन्तर्गत स्थित 'हलगली' नामक ग्राम के ग्रामीणों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए मर मिटने की कितनी उत्कंठा है?

(ख) गुजराती

छो आप गुरु गण पती, दियो शुभ मती कृपा करो रती।
दास दुखियारो, रस राता, करो सुख साहाता, दया उर धारो
टेक—तब दासों नू छू दास प्रेम थी खास, चरणो नी आस,
तो राखन हारो। कुमती हरो, सुख करो, नहीं बिसारो।
तमे छो जगना प्रतिपाल, श्री दीनदयाल, कालो ना काल,
प्रलभा प्रहारो छेगती प्रबल, तमे सबल भर्या भण्डारो॥
छो महान ज्ञान विज्ञान तणा देनारा।
छो मान समान गुणवान घणा गण प्यारा॥
छो मान पान सनमान सदा कर नारा।

मि०—सक्ट सघला करो दूर, भरो भरपूर, कठ मा सुर प्रमी थी ठारो ॥
रस राता करो सुख साहाता, दया उर धारो

॥ १ ॥

अर्थात—हे गणपति महाराज। आप आदि गुरू हैं, मुझे सुन्दर बुद्धि दीजिए, रक्षक कृपा करो, यह आपका दास दुखी है। मुझे कृपा रूपी रस म डवा दो सुख द दो और हृदय म न्या को धारण करो। मैं तुम्हारे दासा का दास हू, आपका विशेष प्रेमी हू। आपके चरणा की मुझे आशा है आपके बिना मुझे कौन रक्षन वाला है ? मेरी बुरी बुद्धि को दूर कर दो, सुख द दो और मुझे भुलाओ नही। आप तो जग का प्रतिपालन करने वाले हैं और दीना पर दया करन वाले दीनदयाल हैं। आप काला के भी काल है और पल भर म नाश कर सक्त हैं आपकी गति प्रबल है, आप सबल हैं, आपक भडार भरे है। आप महान नान और विनान के देने वाले हैं। आप सूय के समान गुणा से पूण और अपन भक्ता के प्यारे ह। आप उनका सदा मान सम्मान करने वाल हैं। हमारे सभी सक्टा का दूर कीजिए कठ म अमत जसे भरपूर स्वर भर दीजिए।

गुजराती लावनी का यह अ श श्री खेतसीदास तुलस्यान, बम्बई के प्रयत्नो मे प्राप्त 'ओम् तुरा नामक प्रकाशित पुस्तक क सन् १६२८ के सस्करण से लिया गया है।

(ग) सस्कृत

नमोस्तुते सव लाक नाथम्, नमामि विष्णुम् विघ्नोपहरणम्,
जपन्त देवाय नर मुनीश्वर विरच शिव शेषत्वहशारणम् ॥

अथात्—हे विघना को दूर करन वाले समस्त विश्व के नाथ—विष्णु जी ! मैं आपको नमस्कार करता हू। आपको नर मुनि, ब्रह्मा शिव और शेष आदि भी जपते हैं। मैं आपकी शरण म हू। आदि—

सस्कृत की सम्पूण लावनी की यह टेक मात्र है। प० हरवश द्वारा लिखित स टक की सम्पूण लावनी, हम हस्तलिखित रूप से ही प्राप्त हुई है।

(घ) मराठी

सालूची लावणी—सालू की लावनी

महार—सालू माझी गोष्ट आईक जरा, एक बार मोडिन तुझा करा।
शिपाई हिंडे फुरा बावरा निकावून तुरा चलजीग।
महारीण—कना पायीं मोडाल माझा कुरा, घराम धीं अन्न खाया नहा जरा।
बायको जाते शेजारणी च्या दारा, नित उस याला जलजीर ॥

महार—माझ्या घरीं काय उन, रुपये भर ले उदड सोना।
गांवां त करतो देन घेन गला काय उन ।। घलजीम
महारीन—तुला नाहीं कांहीं उन मग फिरतोस गल्लीन ।
किती सांगु तुला ज्ञानपन येडा कां झाला।। घलजीम

अर्थात् —

महार—हे नारू। जरा मरी बात सुनो एक बार म तुम्हरा बड़प्पन समाप्त कर दूगा। मैं सिपाही हू और पूर्ण सगा कर शान के साथ घूम रहा हू।

महारिन—मरा बड़प्पन तुम कस दूर कर दोग तुम्हार घर म तो खान को जरा अन्न भी नहीं है। तुम्हारी पत्नी तो पड़ोसी के यहाँ प्रतिदिन मांगन जाती है।

महार—मरे घर म क्या कमी है? मरा घर रुपया और स्वण स भरा हुआ है। मैं गावा म लेन देन करता ह। तुम क्या कमा है?

महारिन—तुम्हारे पास कोई कमी नहीं है तो गलिया म क्या फिरते हो? मैं तुम्ह क्या ज्ञान दू मूख न बनो। आदि।

यह लावनी अश हमने मराठी भाषा म प्रकाशित एक लघु पुस्तिका 'ढालाकी लावणा' स लिया है।

(ङ) पजाबी

श्रीकृष्ण के उत्पातो से तग आकर गोपियाँ यशोदा को उपालम्भ देन आई हैं और कह रही हैं कि हे भाई, तुम्हार बच्चे न सार वृज की जड़ उखाड़ दी है। इसकी तुम्हे हम क्या बात बताए, इसने सभी जटटी (गोपियाँ) लूट ली हैं ये बन माली कृष्ण बड़ा हठी है, एक तो यह हम से जबरदस्ती करता है और दूसरे हम पर रौब जमाता है आदि—जसे—

च्वाडे काके नू माई सब वृज दी जड़ पटटी।
की गल्ल इस दी दस्सां लूट लई जिसनू सब जटटी।।
दादे दा मुहावणा कान्हा, है ऐसा हटटी।
इक तां करदा जोरी उल्लों दें वा सिर घटटी।।[1]

(च) हरयाणवी

तों जाणें थिर स्याणों के सा करके जाया स।
थिरा गोने खागड म्हारे पाछे लाया स।।
देश का गतराडा जल्या मसखरी ठाया स।
जाया—रोया रांड का यो कडे तें आया स।।

---

१ प० अम्बाप्रसाद (नादरी, हरियाणा) द्वारा रचित लावनी का अश।

म्हारा देश से हरियाणा हमने जाणे से ससार
अपनी अपनी जवान मे करती अपना इजहार

अर्थात—गोपियाँ कृष्ण स तग आकर यशोदा को कह रही हैं कि—ह सखी, तू ही जानती है कि इसे तूने क्या खाकर जन्म है ? य साड जसा हमारे पीछे क्या लगा दिया है ? ये दिन भर का बिगडा हुआ है और खूब मजाक पीटता है। य अपनी माँ राड को रोने वाला (प्रेमपूर्ण गाली) यहाँ पर कहाँ से आ गया ? हमारा देश (प्रदेश) हरियाणा है, इसे सारा ससार जानता है।[1]

(छ) राजस्थानी

राम मारयो म्हाके हाथ हियडे डारे छ।
बाई जी, नना बिरछी तक तक मारे छ॥
ठाकुर जी री सोगन म्हाके जी—ने प्यारे छ।
डोल्ले लारे लारे लोठो काहीं हारे छ॥
राजाजी र जास्यां म्हाके लूटे स शिंगार
अपनी अपनी जवान मे करती अपना इजहार

अर्थात—राजस्थानी स्त्रियाँ भी यशोदा को उपालम्भ द रही हैं कि—ये राम द्वारा मारे जाने योग्य (मीठी गाली) हमारी छातिया पर हाथ डालता है। हे बाई जी य आखो की बरछी बना तक-तक कर मारता है। हम ठाकुरजी की सौगन्ध खाकर कहती हैं कि हम इसस बहुत तग हैं। यह हर समय हमारे पीछे-पीछे घूमता रहता है और थकता भी नही है। य हमारा शृगार लूटता है, हम राजा (कस से) स जाकर कह देंगी।[2]

ये कुछ लावनी-अश केवल कुछ ही भाषाओ के उद्धरणो क रूप म दिय गय हैं इनके अतिरिक्त भी 'बगाली', 'उर्दू' 'अरबी' 'फारसी', 'इगलिश' आदि अनेक अन्य भाषाओ मे भी लावनियाँ उपलब्ध हैं, परन्तु विस्तार भय म यहाँ य सब नही दी जा रही हैं।

यह तो हुई पृथक्-पृथक् लावनियो की बात। इसके अतिरिक्त ऐसी भी लावनिया हैं जिनमे एक एक लावनी मे ही छह-छह सात सात भाषाए होती है। लावनीकार श्रोताओ पर अपना प्रभाव डालने की दृष्टि से इस प्रकार की अनेक भाषाओ और बोलियो की लावनिया रचता है जिन स श्रोता यह समझें कि लावनीकार बहु भाषा विद है। लावनी साहित्य म ऐसी बहु भाषा पूर्ण लावनियाँ अत्यधिक सख्या मे प्राप्त हैं।

---

१ ह० लि० ला० से उद्धृत (प० अम्बाप्रसाद)।
२ प० अम्बाप्रसाद द्वारा लिखित लावनी का एक अश।

उन्हें लडी लडाना या दाखला देना आदि कहा जाता है। सम्वादात्मक या अभिनयात्मक लावनियाँ वे होती हैं, जहाँ एक ही लावनी या रचना के आधार पर पुरुष और स्त्री के रूप में या पुरुष पुरुष (या स्त्री-स्त्री भी) दो व्यक्ति सम्वाद या अभिनय करते है। इस अभिनय या सम्वाद के लिए एक उच्च मच का निर्माण किया जाता है और यह एक प्रकार का नाटक या नाटक का एक अग ही बन जाता है। अब से अनुमानत ६० ७० वर्ष पूर्व इस प्रकार की अभिनयात्मक लावनियों का अत्यधिक प्रचलन था, आजकल भी महाराष्ट्र और राजस्थान आदि कुछ स्थानो पर ऐसी अभिनयात्मक लावनियाँ सुनने और देखने को मिल जाती हैं। परन्तु हरियाणा, उत्तर प्रदेश और दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों में लावनी के इस रूप को आजकल हेय दृष्टि से देखा जाता है।

सम्वादात्मक और स्पर्धात्मक लावनियो मे अन्तर

सम्वादात्मक लावनियों में और स्पर्धात्मक लावनियों में यह अन्तर है कि सम्वादात्मक लावनियों का रचयिता एक ही होता है और वह सम्वादों की दृष्टि से ही इनकी रचना करता है। परन्तु स्पर्धात्मक या लडीवन्द रचनाएं तुर्रा कलगी या तुर्रा-तुर्रा और कलगी कलगी के भिन्न अखाडो के लावनीकार लडी लडाने की दृष्टि से या दूसरे दल को नीचा दिखाने की दृष्टि से रचते हैं।

लावनी साहित्य मे हाजिर जवाबी के प्रसग

हाजिर जवाबी के प्रसग से स्पष्ट ही है कि वे प्रसग जिनमें लावनीबाज अपनी हाजिर जवाबी या तत्काल उत्तर देने की कला का प्रदर्शन करता है। लावनीबाजी में हाजिर जवाबी के प्रसग यत्र तत्र सर्वत्र विद्यमान हैं। केवल यही नही अपितु लावनीबाज की हाजिर जवाबी ही उसकी लावनी का विशेष महत्व है, जिसके आधार पर वह दगल के श्रोताओ को अपने मनोनुकूल बनाने में समर्थ होता है। वास्तव मे लावनीबाजी के दगलो की अत्यधिक ख्याति का कारण इनकी हाजिर जवाबी ही रही है। इस हाजिर जवाबी को लावनी की भाषा में लडी लडाना या दाखिला देना कहा जाता है।

वास्तव में लडी लडाने का अर्थ होता है—एक ही तुकान्त और रंगत की पूरी लडी—अर्थात—लावनीबाज के पास अनेक लावनियाँ होती हैं, जिस समय कोई लावनीबाज उस तुकान्त की और उसी रगत की लावनी सुनाता है, तो उसी समय अन्य लावनीबाज को भी ठीक वैसी ही लावनी सुनानी पडती है। इस पर प्रथम लावनीबाज पुन उसी तुकान्त और उसी रगत की लावनी सुनाता है और इसी क्रम से एक के पश्चात दूसरी और दूसरी के पश्चात तीसरी, अनेक लावनियाँ दोनो ओर

से गाई जाती हैं। जिसकी लावनियाँ समाप्त हो जाती हैं उसी की पराजय समझी जाती है। कुछ उदाहरणा से यह बात पूर्ण स्पष्ट हो जाएगी।

एक लावनीबाज ने एक लावनी का चतुर्थांश इस प्रकार सुनाया—रावण अपनी पुत्र वधू सुलोचना को धैर्य बधाते हुए कहता है कि—

कल देख समर जाऊँगा करन, हों शस्त्र मेरे कर घात के हैं।
खडित कर मान सुलोचन रन सिर काट लेऊँ दोउ भ्रात के हैं॥—टेक
गिन गिन के हनू भालू कपिगन, वो तनिक मेरे आघात के हैं।
घमसान करूँ जा रण आँगन लेऊँ बर बिरन और तात के हैं॥
निश्चय ले चलू सग्राम करन, रख धीरज बस पल स्यात के हैं।
चहुँ ओर से घेर करूँगा हनन ये काम निशाचर जात के हैं॥

शेर—छका रण मे देउ कपियन, सती धीरज डिगा जाया।
जलन कर जा हनू अरियन, भरोसा रख हो मनचाया॥
झडी बाधूँगा रण बाणन बचे ना एक भी सूरा।
टेक मेरी यो ये लक्षमण, फँसे हैं आन रघुराया॥
ठठ ठाठ सभी रण के आपन, परिचित आयुध लूँ घात के हैं।
खडित कर मान सुलोचन रण, सिर काट लेऊँ दोउ भ्रात के हैं॥

इसी बीच दूसरे लावनीबाज ने तत्काल यह चौक सुनाया—श्री राम दूत रावण से कह रहा है—

हम दूत उन्हीं श्रीराम के हैं जो भ्राता नर दो जात के हैं।
सुत अवध-ईश गुण धाम के हैं अति सुन्दर कोमल गात के हैं॥—टेक
सुन बन मेरे शठ दसकन्दर बल मे अद्भुत हैं श्री रघुवर।
आए हैं विपिन खोजन निशिचर, धर वचन हिये पितु-मात के हैं॥
तू लाया प्रभु की प्रिया को हर नहिं माना मूरख किंचित डर।
होवेगा मरन कुल सहित समर क्रोधित हृदय दोउ भ्रात के हैं॥

शेर—जतन मरने से पहले ही, करो असुर अपना राया।
नहीं तो मूढ अभिमानी काल तव शीश पर छाया॥
जनक-पुत्री को आगे कर, झुका क शीश जा सम्मुख।
दया तुझ पर करें दस मुख, दयालू हैं वो रघुराया॥
दिन बीत चुके आराम के हैं सब रजनीचर पल स्यात के हैं—
सुत अवध ईश गुणधाम के हैं, अति सुन्दर कोमल गात के हैं—

इसी प्रकार जब एक लावनीबाज ने यह टेक सुनाई कि

मेघनाद सग लेके शूरमा कूच बिगुल बजवाय दिया है।
इधर से सज कर लखन जती ने आ सग्राम मचाय दिया है॥

तो तत्काल दूसरा लावनीबाज इस प्रकार बोल उठा

> भिडे एक से एक मोरचा आप से आप अडाय दिया है।
> महावीर घुस निशिचर दल मे, सबका जोर घटाय दिया है॥

एक और साहब बोल

> कार किया क्या जिसने आला करतब क्या दिखलाय दिया है।
> मगन होय उन देव ऋषी का, बन्दर रूप बनाय दिया है॥

इस प्रकार एक ही तुकान्त और रगत की सौ-सौ लावनियाँ तक एक एक लावनीबाज के पास होती हैं। परन्तु दाखला लडी से कुछ भिन्न होता है। लावनी की दृष्टि से दाखल का अर्थ है किसी को उत्तर देना अर्थात मान लीजिये किसी लावनी बाज ने लावनी म ही गाकर कोई प्रश्न कर दिया है अथवा प्रश्न न करके अपनी कोई बात कह दी है तो दूसरा लावनीबाज उसके प्रश्न का या कही हुई बात का लावनी की उसी रगत मे और उसी तुकान्त म उत्तर देगा या वह स्वय भी वैसी ही बात गाकर सुनायगा। इसी प्रकार यह क्रम भी तब तक चलता रहता है जब तक उनम से एक लावनीबाज अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर लेता। दाखल के एक दो उदाहरण प्रस्तुत हैं —

आगरा वाले पण्डित रूपकिशोर ने एक टेक इस प्रकार लिखी

> पिया छोड के मोहि सिधार गए मै पिया जी के सग सती न भई।
> नित सत्य के ताल तुलाई करी पर पूरण ब्रह्म गती न भई॥

यह टेक सुन कर भिवानी वाले मास्टर कन्हैयालाल ने यह दाखला लिखा

> तोहे छोड गए निरभाग समझ प्यारी तेरी सुमत मती न भई।
> तनें पाप अनाप शनाप किये किये एहि कारण परम गती न भई॥

एक लावनीबाज ने नव इलाही म इस प्रकार निवेदन किया कि

> इलाही कब वो हमारे ऊपर मेहर की अपनी नजर करेंगे।
> मिला के सीने से सीना वो ठडा दिल और जिगर करेंगे॥

तो दूसरे लावनीबाज ने इस प्रकार दाखला दिया

> उठायेंगे लुत्फ वो ही आशिक जो दार पर अपना घर करेंगे।
> बदस्त खुद काट करके सर को जो दिलरुबा की नजर करेंगे॥

परन्तु हाथ की हाथ ही दूसरे लावनीबाज कहते हैं कि

> अदा पे देंगे जो लुत्फ मे दम मका वो क्या दार पर करेंगे।
> बिचारे सर की है क्या हकीकत जो दिलरुबा की नजर करेंगे॥

एक साहब सारे जमाने की खिलाफत झेल कर भी हजारों लोगो की भीड म अपने उन पर अपना सिर फिदा कर रहे हैं

> खिलाफ हो जाए गर जमाना जरा न खौफो-खतर करेंगे।
> हम उन की तेगे अदा के ऊपर फिदा हजारो मे सर करेंगे॥

इस प्रकार लावनी साहित्य लडी और दाखलो के रूप मे हाजिर-जवाबी के प्रसगो से ओतप्रोत है।

तीसरा परिच्छेद

★

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

प्रथम परिच्छेद म हमने लावनी के 'उद्भव और विकास' पर प्रकाश डालते हुए 'लावनी शब्द आदि पर भी सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। इस परिच्छेद मे स्थान तथा अखाडे आदि का उल्लेख करके हम विशिष्ट लावनी कारो एव उनकी रचनाओ पर विचार करेंगे। परन्तु ऐसा उल्लेख करने से पूर्व 'लावनीकार,' लावनीबाज' और लावनीप्रेमी आदि शब्दो को सक्षेप म प्रस्तुत करने से हम समग्र सामग्री का प्रकटीकरण करने म सुविधा रहेगी इस दृष्टि मे इन नामो पर विचार कर लेना आवश्यक है।

'लावनीकार या ख्यालकार—जसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि लावनीकार या ख्यालकार का अथ है लावनी या ख्याल का कर्ता अर्थात ऐसा व्यक्ति जो लावनी या ख्याल की रचना करता है उसे लावनीकार या ख्यालकार कहा जा सकता है। प्राय लावनीकार लावनी के प्रस्तुतीकरण म भी पूर्णतया दक्ष होते हैं, व जहा लावनी की रचना कर सकते हैं, वहा उसे गाकर श्रोताओ को भी आकर्षित कर सकते हैं। परन्तु अनिवाय रूप से ऐसा हो ही, ऐसी बात नही है कुछ लावनीकार एसे भी होते हैं, जिनकी रचनाए (लावनिया) तो अतीव सुदर एव आकषक होती हैं परन्तु वे स्वय दक्ष गायक न होने के कारण भली प्रकार गा नही पाते। उनके शिष्य प्रशिष्य या अ य व्यक्ति ही इस गायन-कार्य को पूण करते हैं।

हम ऐसे व्यक्तियो को जो लावनी की रचना तो कर सकते हैं, परन्तु गा नही सकते लावनीबाज न कह कर लावनीकार ही कहेंगे। य 'लावनीकार अपने अपने अखाडे की आवश्यकता पूर्ति हेतु नित्य नवीन रचनाए करके जहाँ लावनी साहित्य की वृद्धि करते हैं वहाँ अपने अखाडे के गायको का उत्साहवधन भी करते हैं क्योकि गायक प्राय इन्ही के बलबूते पर अच्छे से अच्छे लावनीकारो से भी 'दगल मे प्रतियोगिता कर बठना है और परिणामस्वरूप अनेक अवसर एसे हो जाते हैं कि अपने गायक की सहायताथ लावनीकार को वही दगल' म बठे-बठे भी अपनी आशु रचनाओ द्वारा प्रतियोगी को नीचा दिखाने की ठान लेनी पडती है। इस प्रकार

दोना पक्षो के लावनीकार अपने अपने पक्ष-समर्थन-हेतु तत्कालिक लावना रचना द्वारा अपने अपने गायको को प्ररित करते रहते हैं।

इस प्रकार क लावनीकार किसी विशेष अवसर पर (जिस समय उनके पक्ष का गायक प्रतियोगी के द्वारा कुछ दब सा जाता है) स्वय भी लावनी गान लग जाते है चाह चग दूसरा व्यक्ति ही बजाता रहे या वे स्वय भी कई बार चग ले लेते हैं। ऐसी दशा म प्राय श्रोता समुदाय मे हसी का फव्वारा-सा छूट पडता है क्योकि प्रथम तो यह कि लावनीकार की 'उक्ति एसे अवसर पर प्राय अताव विचित्र एव आकषक होती है, (इसी विचित्र उक्ति के कारण वह अकस्मात गाने के लिए उद्यत होता है), दूसर उस गाने का विशेष अभ्यास न होने के कारण वह स्वय भी हसी का पात्र बन जाता है। पर तु ऐसी दशा म भी श्रोताओ मे लावनीकार क प्रति श्रद्धा म न्यूनता नही आती। वह हसी केवल हसी के निमित्त ही होती है। उनके हृदयो म कवि के प्रति जो श्रद्धा होनी चाहिए वह ज्यो की त्यो या उससे भी अधिक होती है अपितु वह हसी भी कई वार प्रशसात्मक होती है उपहासात्मक नही। लावनीकार को भी इसमे उत्साह एव प्रेरणा ही प्राप्त होती है वह हतोत्साह नही होता।

कुछ लावनीकार ऐस भी होते हैं जो लावनीकार और 'लावनीबाज दोना होते हैं। अर्थात् लावनी की रचना एव उसके गायन आदि पर भी जिस व्यक्ति का समान अधिकार हो उसे हम लावनोकार और 'लावनीबाज दोनो ही नामा से अभिहित कर सकत हैं। लावनी गायको मे ऐसे व्यक्तिया की भी न्यूनता नही है जिनमे य दोनो ही गुण विद्यमान हैं।

लावनीकार वसे तो अनेक प्रकार की लावनियो की रचना करता है, परन्तु विशेष रूप से वह ऐसी ही लावनिया रचता है जिनके द्वारा वह या उसके अखाडे के अन्य व्यक्ति अपने प्रतियोगी को पराजित कर सकें। वह अपनी लावनियो के तुकान्त तथा विषय प्राय ऐसे ही चुनता है जो विशेष रूप से दगला म प्रचलित होते हैं या प्रतियोगियो द्वारा अधिक चर्चित होते हैं। इस प्रकार लावनीकार का मुख्य विषय यही होता है कि वह सम-सामयिक (या अन्य भी) लावनियो की रचना करे।

लावनीबाज या ख्यालबाज—लावनीबाज या ख्यालबाज का सीधा सादा अथ लावनी या ख्याल गान वाला होता है, लावनी या ख्याल की रचना करने वाला नही। लावनीबाज अपने गुरु या अपने अखाडे के अन्य व्यक्तियो की रचनाए (लावनियाँ) सकलित किए रखता है और समय आने पर दगलों मे अतीव आकषक ढग से उनका प्रस्तुतीकरण करके जनता की 'वाह वाह लूटता है। यद्यपि रचनाए प्राय अपने ही अखाडे की सकलित की जाती है तथापि अन्य अखाडो की रचनाए भी समय समय पर प्राप्त हा तो सग्रहीत कर ली जाती हैं। प्रतियोगी के समक्ष भी,

वसे तो वह अपने ही 'अखाडे' की लावनियाँ सुना सकता है, परन्तु यदि प्रतियोगी कहीं बाहर से आया हो या किसी अन्य वर्ग का हो (कलगी, तुर्रा आदि) तो वह अपने वर्ग के किसी भी अखाडे की लावनियाँ सुना सकता है। उदाहरणाथ—यदि 'तुर्रे' और 'कलगी' के लावनीकारो मे परस्पर प्रतियोगिता चल रही हो तो 'तुर्रे' वाला 'तुर्रे' वाला के किसी भी अखाडे की लावनी और कलगी वाला 'कलगी वाला के किसी भी अखाड की लावनी सुना सकता है। परन्तु यदि 'तुर्रे' वाला किसी अन्य अखाड के 'तुर्रे' वाले की प्रतियोगिता मे ही कुछ सुना रहा है तो उसे अनिवाय रूप से अपने ही अखाडे की या अपने अति निकटस्थ मित्र अखाड की ही लावनी सुनानी होगी। ऐसी दशा म उसे तुर्रे' के अन्य सभी अखाडा की रचनाए सुनाने का अधिकार नही रहता।

मुख्य रूप से तो 'लावनीबाज' वही होता है जो 'लावनियाँ' गाता है, परन्तु कभी-कभी 'लावनीबाज' भी लावनीकार की भाँति लावनिया की रचना कर लता है। प्राय एसे लावनीबाज वे हाते हैं जिन्हे अनक लावनियाँ कठस्थ होती हैं और कठस्थ लावनिया क आधार पर वे कुछ अन्य लावनिया की भी रचनाए कर लेते हैं। परन्तु वास्तव म वे 'लावनीकार' नही 'लावनीबाज' ही होते हैं।

एक अच्छा लावनीबाज एक साधारण सी लावनी को भी इतने प्रभावशाली ढग न गा सकता है कि श्रोता समुदाय मन्त्र मुग्ध हो जाता है। परन्तु इसके विपरीत कई बार अच्छी 'गायकी' क अभाव म एक अच्छी लावनी भा लोगो को प्रभावित नही कर पाती। परन्तु प्राय ऐसा नही होता, क्योंकि लावनीबाज प्राय अच्छे गायक होते ही हैं।

प्रथम परिच्छेद में हम 'गाने का ढग' शीषक स लावनीबाजा के गाने की चर्चा पहले ही कर चुके हैं।

'लावनीकार' और 'लावनीबाज' या 'ख्यालकार' और 'ख्यालबाज' म विशेष अन्तर तो यही है कि 'लावनीकार' या 'ख्यालकार' 'कवि' और 'लावनीबाज' या 'ख्यालबाज' 'गायक' होता है। परन्तु अपने-अपने अभ्यासानुसार इन दोना मे ही अपने-अपने मुख्य गुणो के अतिरिक्त एक मे दूसरे का गुण भी साधारणतया होना असम्भव नहीं है। वसे साधारण श्रोता-समुदाय प्राय 'लावनीकार' और 'लावनीबाज' के अन्तर को न समझ कर दोनो को ही 'लावनीबाज' या 'ख्यालबाज' कहा करते हैं। वृद्ध लावनीकारो के अनुसार—जो 'लावनीबाज' केवल अपने ही अखाडे की लावनियाँ गाते हैं, उन्हें 'टकसाली' और जो अन्य अखाडो की भी लावनियाँ गाते हैं उन्हे लश्करी कहा जाता है।

लावनी प्रेमी या ख्याल प्रेमी— लावनीकार' और 'लावनीबाज —विषयक स्वल्प चर्चा के पश्चात हमारे लिए 'लावना प्रेमी' या ख्यात प्रेमी' 'कौन होते हैं, यह जान लेना भी आवश्यक है। साधारणतया तो यही कहा जा सकता है कि 'लावनी' या ख्याल' को सुनने म रूचि रखने वाले सभी व्यक्ति लावनी प्रेमी' कह जाते हैं। परन्तु यह उत्तर स्पष्ट एव उपयुक्त होते हुए भी हमारा दृष्टिकोण इसक साथ कुछ अन्य भी है।

वास्तव मे कुछ व्यक्ति विशेष ऐस होते हैं जो न तो लावनीबाज' होते हैं और न 'लावनीकार। परन्तु लावनी या लावनीकार या लावनीबाज के भक्त होते हैं। ऐसे व्यक्ति साधारण लावनी श्रोताओ से भिन्न एव विशिष्ठ होते हैं।

इन लावना प्रेमियो मे भी भिन्न भिन्न रुचि के व्यक्ति होते हैं। उनकी रूचि क अनुसार हम मुख्य रूप से उन्ह निम्नलिखित तीन भागो म विभक्त कर सकते हैं—

(१) धनी लावनी प्रेमी
(२) मध्यमवर्गीय लावनी प्रेमी और
(३) साधारण लावनी प्रेमी।

(१) **धनी लावनी प्रेमी**— धनी लावनी प्रेमी जसा कि नाम से ही स्पष्ट हैं, ऐसे धनी व्यक्ति होते हैं जिन्ह लावनी से प्रेम होता है। य व्यक्ति प्राय किसी उत्सव के समय कलगी या तुर्रा या दोनो ही वर्गों के लावनीकारो को अपने यहा आमन्त्रित करके उनसे लावनी गाने की प्रार्थना करते हैं। इन लोगो का प्राय किसी पक्ष विशेष से कोई लगाव नही होता। इतना ही होता है कि ये स्वय या अपने मित्रो के साथ लावनी गायन का रसास्वादन करते हैं। आमन्त्रित लावनीबाजो और श्रोताओ आदि के बैठने तथा स्वागत आदि का प्रबन्ध इनके ही उत्तरदायित्व पर होता है। आने वाले लावनीकारो को कुछ दक्षिणा आदि देना भी इन्ही का काय होता है। कई बार य लोग लावनीकारो को बिना किसी 'उत्सव के भी आमन्त्रित करके उनसे कुछ सुनने का आग्रह करते हैं। ऐसी दशा मे भी य लोग स्वल्पाहार आदि का प्रबन्ध करते हैं। तथा लावनीबाज को दक्षिणा के रूप म कुछ प्रदान करते हैं। परन्तु ऐसा प्रत्येक बार नही होता, क्योकि कुछ लावनीकार ऐसे भी होते हैं जो किसी प्रकार की दक्षिणा आदि स्वीकार नही करते केवल अपनी 'रूचि के कारण ही गाते हैं। ऐसी दशा म उस धनी व्यक्ति को अधिक धन व्यय करने की आवश्यकता नही होती। परन्तु लावनीबाजो म ऐसे (दक्षिणा न लेने वाले) व्यक्ति अधिक सख्या मे नही होते।

कई बार 'धनी लावनी प्रेमी' की रुचि जहाँ लावनी सुनने की होती है, वहाँ साथ में यह भी उद्देश्य होता है कि निकटस्थ जन-समुदाय वास्तव में ही उसे धनी एवं उदार व्यक्ति समझे। वह लोगों से यह भी आशा रखता है कि लोग उसके यहाँ हुए 'लावनी-दंगल' की यत्र-तत्र अच्छी चर्चा करें और उसके धनी होने की स्वीकारोक्ति का प्रसार करें। यही कारण है कि कई बार उसकी इच्छा न होते हुए भी उसे लावनीबाजों को इसलिए आमन्त्रित करना पड़ता है कि अमुक व्यक्ति ने लावनीबाजों को आमन्त्रित करके 'दंगल' कराया था, यदि उसने ऐसा नहीं किया तो समाज में उसकी नाक कट जायगी। इस प्रकार अनेक भावनाओं से प्रभावित यह धनी लावनी प्रेमी किसी समय लावनी से प्रेम चाहे न भी करे, परन्तु लावनीबाजों पर तथा 'दंगल' आदि पर व्यय अवश्य करता है। वस्तुतः प्रायः लावनी पर इस प्रकार व्यय करने वालों का 'लावनी' से भी न्यूनाधिक स्नेह होता ही है। ऐसे व्यक्तियों की संख्या नगण्य ही है, जिन्हें लावनी से स्नेह भी न हो और व्यय भी करते हों।

(२) मध्यम वर्गीय लावनी प्रेमी—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है—मध्यम वर्गीय लावनी प्रेमी वह होता है, जिसे 'लावनी' से तो प्रेम होता है परन्तु 'लावनी' के लिए वह व्यय नहीं कर सकता। प्रायः उसका भी 'लावनी प्रेम' तो किंचित न्यूनाधिक मात्रा में 'धनी लावनी प्रेमी' जैसा ही होता है, परन्तु 'व्यय' करने में पूर्ण समर्थ न होने के कारण वह न तो अपने प्रेम का पूर्ण प्रकटीकरण कर सकता है और न ही पूर्णतया 'लावनी प्रेम' को सन्तुष्ट कर पाता है। परन्तु ऐसा करने की उसकी इच्छा अवश्य रहती है। ऐसी दशा में वह एक ओर से धनी लावनी प्रेमियों से और दूसरी ओर से लावनीबाजों से अपना सम्पर्क स्थापित किये रखता है और जब भी कभी इस प्रकार के आयोजन का अवसर आता है, वह उससे पूर्ण लाभ उठाता है। एक ओर से वह धनी को प्रेरणा देता है कि 'दंगल' होना चाहिए, और दूसरी ओर से वह 'लावनीबाज' से भी अवश्य 'दंगल' में आने का आग्रह करता है। ऐसा करने में उसका प्रायः लावनी श्रवणानन्द प्राप्ति का ही स्वार्थ होता है आर्थिक आदि लाभ का स्वार्थ नहीं। यहाँ तक कि कई बार ऐसा करने में उसे किंचित आर्थिक हानि भी उठानी पड़ जाती है, परन्तु ऐसे अवसरों पर वह इसे (आर्थिक हानि) गौण समझता है। उसकी मुख्य रुचि इस समय यही होती है कि 'दंगल' होना चाहिए। 'दंगल' के आयोजन के लिए उसे यदि अपने दैनिक कार्य क्रमादि में भी कुछ परिवर्तन करना पड़े तो वह परिवर्तन उसे सहर्ष स्वीकार्य है।

जब कभी 'लावनी-दंगल' का आयोजन इस प्रकार 'मध्यम् वर्गीय लावनी प्रेमी' की प्रेरणा से हो रहा हो तो समझना चाहिए कि इस आयोजन की रीढ़ की हड्डी' यदि कोई है तो वही (मध्यम् वर्गीय लावनी प्रेमी) व्यक्ति है, क्योंकि

दूसरा अध्याय

भिवानी

'भिवानी' हरयाणा प्रान्त का एक प्रमुख नगर है। यह दिल्ली से पश्चिम की ओर बस के मार्ग से ११६ किलो मीटर दूरी पर स्थित है। जन सख्या की दृष्टि से चाहे इस नगर की जनसख्या अनुमानत एक लाख ही है परन्तु यहा के लोगो का रहन महन एव खान पान किसी भी विशाल नगर क लोगो क रहन सहन आदि स जाचा जा सकता है। यहाँ के निवासी प्राय 'सादा जीवन उच्च विचार' म विश्वास रखते हैं। भिवानी के आस-पास क क्षत्र के लाग अधिक सख्या म कृपक तथा भिवानी क निवासी अधिकतर व्यापारी और श्रम निष्ठ हैं। साधारणतया यहा क लोग साहित्य म विशेष रुचि रखने वाले एव धार्मिक वृत्ति के हैं। प्राचीनकाल मे भारतीय सस्कृति का प्रतीक यह स्थान अपने धार्मिक विचारो एव शिक्षा के कारण छोटी काशी के नाम से विख्यात था। 'सस्कृत भाषा का यहा विशेष प्रचार था। आजकल पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण वह सस्कृत-स्नेह तो नही रह गया है, तथापि समय के अनुसार सस्कृतज्ञ विद्वानो का अभी भी यहा न्यूनता नही है। साहित्यक दृष्टि से प० तुलसीराम शर्मा दिनेश प० माधव मिश्र और प० राधाकृष्ण मिश्र इसी क्षेत्र की उतज हैं, जिन्होने क्रमश पद्य और गद्य के क्षेत्र म हिन्दी साहित्य म अपना सुनिश्चित स्थान बना लिया था। लोक-साहित्य की दृष्टि से यहाँ अनेक सागीतकार कथावाचक, गायक रागी विरागी और लावनीकारो, लावनी बाजा, लावनी प्रेमिया ने समय-समय पर अपने लोक साहित्य-स्नेह का परिचय दिया है।

लावनी की दृष्टि से इस स्थल को हम गगा, यमुना और सरस्वती का पुण्य पावन 'सगम स्थल' कह सकते हैं।

प्रथम परिच्छेद मे हमने सक्षेप मे लावनीबाजो के अखाडा की चर्चा की है। यहाँ, गगा, यमुना और सरस्वती आदि से हमारा भाव इन अखाडो से ही है। यद्यपि ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ एकाधिक अखाडे हैं तथापि भिवानी के एकाधिक अखाडो की छटा अनूठी ही है। हमने प्राक्कथन मे जिन स्थानो के नामो की चर्चा की है उन सबसे सम्बन्धित लावनीबाज तो भिवानी मे उपलब्ध हो ही जायेंगे उनके अतिरिक्त

अन्य भा अनेक लावनीबाजा का यहाँ जमघट रहा है। 'लावनी की दृष्टि से इस नगर की यह विशेषता ही कही जाएगी कि यहा अनेक प्रकार की लावनिया और अनक अखाड़ों के लावनीबाज प्राप्य रहे हैं।

आगे चलकर, इसी परिच्छेद म, हम इन समस्त भिन्न भिन्न अखाडा पर सम्भिप्त रूप मे प्रकाश डालेंगे। अब तो हम केवल इतना ही जान लेना चाहिए कि यहा किन किन अखाडा मे सम्बन्धित लावनीकार। लावनीबाज रहे हैं और क्या ?

भिवानी मे लावनीबाजो के अखाडे,—क्यो ?

जसा कि हमने अभी सकेत किया है कि भिवानी कभी लावनीबाजी का गढ रहा है। दूरस्थ स्थाना के लावनीकार भी समय-समय पर यहा आते रहे हैं और यहा के लावनीबाज भी दूसर स्थानो पर जाकर अपनी लावनीबाजी का परिचय देते रहे हैं। दूर-दूर से अन्य अनक लावनीकारो। लावनीबाजा के यहाँ आगमन के मुख्य रूप मे दो कारण थे। प्रथम तो यह कि यहाँ के निवासियों म लोक-साहित्य (विशेष तया लावनी) के प्रति विशेष श्रद्धा एव रुचि थी और दूसर यहा के लोगा की उदार-वृत्ति भी इसका कारण थी, क्योकि किसी भी लावनीबाज या सन्त महात्मा आदि के आगमन पर यहा के लोगा का विशेष प्रसन्नता होती थी और दक्षत-देखत ही आने वाला के रहन सहन तथा आहार आदि का पूर्ण प्रबन्ध कर दिया जाता था। इस नगर की इस प्रकार की ख्याति श्रवण करके अनेक व्यक्ति समय-समय पर आते ही रहते थे। उनमे से कुछ तो किंचित काल आवास के पश्चात चले जाते थे और पुन आन आते रहत थे तथा कुछ यहाँ स्थायी रूप से भी अपना आवास स्थान बना लेते थे, यही कारण है कि यहा लावनियो के अनेक दगल हाने रहे हैं और अनेक अखाडो की स्थापना भी। अखाडा की स्थापना के साथ-साथ स्थानीय व्यक्ति भी इन अखाडा म सम्मिलित हो जाते थे और परिणामस्वरूप इन अखाडो को स्थायित्व प्राप्त हो जाता था। अब हम भिन्न भिन्न अखाडा और इनके अन्तगत आने वाले भिन्न भिन्न लावनीबाजो पर विहगम दृष्टिपात करेंगे।

भिवानी के इन समस्त अखाडो और लावनीबाजा का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है।

(१) श्री नत्थासिंह का अखाड़ा।

(२) आगरे वाला का अखाडा।

(३) दादरी वाला का अखाडा।

(४) नारनौल वाला का अखाडा।

(५) श्री उमराव सिंह का अखाडा।

आश्चर्य की बात है कि भिवानी जैसी लावनी प्रिय नगरी में भिवानी वालों का अखाड़ा' नाम से कोई अखाड़ा नहीं है। यहाँ तक कि भिवानी के किसी लावनीकार। लावनीबाज के नाम पर भी किसी विशिष्ट अखाड़े को ख्याति नहीं हुई। हाँ ये उपरोक्त अखाड़े से सम्बंधित लोग, रहे हैं सब भिवानी में ही। यद्यपि इस उपरोक्त विभाजन के अनुसार सभी लावनीबाज भिन्न भिन्न अखाड़ों से सम्बंधित हैं तथापि जब कभी ये लावनीबाज भिवानी से अन्यत्र कहीं जाते थे। जाते हैं तब इन सब को ही भिवानी वाले कहा और समझा जाता था। जाता है। भाव स्पष्ट है कि भिवानी से अन्यत्र भिवानी की प्रधानता और भिवानी में अखाड़ों की प्रधानता होती थी होती है। हम इन समस्त अखाड़ों और अखाड़ों से सम्बन्धित लावनीबाजों के विषय में क्रमशः संक्षिप्त चर्चा कर रहे हैं।

भिवानी के अखाड़े—१

(१) श्री नत्थासिंह का अखाड़ा

भिवानी का यह अखाड़ा, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, श्री नत्थासिंह के नाम से ख्याति सिद्ध है। एतदर्थ सर्वप्रथम श्री नत्थासिंह विषयक जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

श्री नत्थासिंह—आपका जन्म एक मध्यम् वर्गीय वैश्य परिवार में 'खतौली (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपके जन्म सम्वत् आदि के विषय में किम्वदन्ति के आधार पर भी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अनुमानतः आपका जन्म सम्वत् १९०० में माना जाना चाहिए, क्योंकि आपके प्रशिष्य श्री आशा राम के अनुसार आपका देहान्त आषाढ़ शुक्ल षष्ठी वृहस्पतिवार सम्वत् १९६५ में हुआ था और देहान्त के समय आपकी आयु अनुमानतः ६५ वर्ष थी। आप जीवन भर अविवाहित रहे। आपके जीवन के अन्तिम दिनों की एक अतीव रोचक घटना की विशेष चर्चा की जाती है कि आप ने खतौली भर में मुनादी करा दी थी कि 'मैं अपना घरबार त्याग कर सन्यास ले रहा हूँ जिसे जो कुछ चाहिए, ले जाय। परिणामस्वरूप देखते देखते ही घर का सारा सामान उठ गया और आप सन्त कबीर की भाँति— लिये लकुटिया हाथ —घर से निकल पड़े।

अब आप नत्थासिंह' के स्थान पर महाराज अनन्त गिर हो गए और अन्तिम चरण में इसी नाम से अधिक ख्याति अर्जित की। आपने 'तालिबे दीवान' नामक लावनी की एक पुस्तक हिन्दी उर्दू मिश्रित भाषा में लिखी थी, जो प्रकाशित भी हुई थी, परन्तु आजकल वह पुस्तक प्राप्य नहीं है। हाँ, तालिबे दीवान' की अनेक लावनियाँ (ह० लि० रूप में) आपके शिष्यों और प्रशिष्यों के पास अभी भी

सुरक्षित हैं। आपने इसके अतिरिक्त भी अनेक फुटकल लावनियाँ लिखी थीं, जो आज कल भी समय-समय पर दंगलों में गाई जाती हैं। आप उर्दू, फारसी और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता तथा अंग्रेजी के भी जानकार थे। आपके 'लावनी गुरू' श्री देवी शुक्ल थे जो अपने समय के अच्छे लावनीकार समझे जाते थे। परन्तु ख्याति की दृष्टि से आप अपने गुरू से भी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुए। आपके भी श्री खुशदिल, श्री कुन्दन और दयाशंकर आदि अनेक शिष्य हुए।

आपके फकीरी के दिनों की एक विशेष चमत्कारपूर्ण घटना प्रसिद्ध है—कहते हैं कि आपके पास 'एक रुपया और एक अठन्नी' सदा रहती थी। जब भी आपको किसी वस्तु की आवश्यकता होती तो आप रुपया देते थे और कुछ काल के पश्चात वह रुपया आपके पास पुनः लौट आता था। एक बार आपके शिष्य दयाशंकर के माँगने पर (वह चमत्कारिक रुपया और अठन्नी) आपने कहा—"ये फकीरों की बातें हैं, यदि तुमने पुनः कभी इस प्रकार की अभ्यर्थना की तो तुम्हें कोढ़ हो जायगा। आपके द्वारा रचित लावनियाँ उत्तर प्रदेश, देहली, हरयाणा, और पंजाब आदि प्रान्तों में विशेष रूप से प्राप्य हैं। आप अधिकतर नालापानी (देहरादून के पास, उत्तर प्रदेश) में रहते थे। अन्त में आषाढ़ शुक्ल षष्ठी, बृहस्पतिवार, सम्वत् १६६५ में नालापानी में आपका देहावसान हुआ। अब भी आपकी एक समाधि 'नालापानी में और एक खतौली' में विद्यमान है जहाँ श्रद्धालु शिष्य और भक्त जन प्रतिवर्ष मेले के रूप में एकत्र होते हैं और भंडारा आदि भी करते हैं। आपके शिष्यों प्रशिष्यों की एक लम्बी शृंखला के कारण तथा आपके अपने अनेक काव्योचित गुणों के कारण भी, यह अखाड़ा आपके नाम से ही प्रसिद्ध हुआ। भिवानी में आपके एक प्रशिष्य—श्री आशाराम थे।

श्री आशाराम—श्री आशाराम का जन्म भिवानी में ही, पं० भीमराज जी के घर, मार्गशीर्ष, कृष्ण १, सम्वत् १९७६ में हुआ। आप अपने शैशवकाल से ही भिवानी के नामिया परिवार से सम्बन्धित रहे हैं। लावनीबाजी का चाव भी आपको आरम्भ में ही है। आप एक अच्छे गायक तो हैं, परन्तु अच्छे रचनाकार नहीं हैं। आप श्री नत्थासिंह (उपरोक्त) के शिष्य श्री कुन्दनलाल के शिष्य हैं। आपका अधिकतर जीवन लावनीबाजी तथा साधु-सन्तों की सेवा में ही व्यतीत हुआ है। अब भी आपके पास श्री कुन्दनलाल, श्री खुशदिल और श्री नत्थासिंह (अनन्तगिर महाराज) तथा अनेक अन्य ख्यातिप्राप्त लावनीकारों की रचनाओं का अच्छा संग्रह है। भिवानी के लावनीबाजों में आपका अच्छा मान है। प्रायः लोग आपको भाईजी नाम से सम्बोधित करते हैं। इस समय आपकी अवस्था अनुमानतः ६६ वर्ष की है। आपको भिवानी में श्री नत्थासिंह के अखाड़े का एक मात्र दीपक कहा जा सकता है। यद्यपि आपके कुछ मित्र, उनके भी साथी संगी आपके अखाड़े की लावनियाँ समय समय पर गाते

रहते हैं तथापि उन्हें आप की शिष्य-परम्परा में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। (अभी गत वर्ष ही श्री आत्माराम गत हो चुके हैं)।

भिवानी के अखाड़े—२

(२) आगरे वालों का अखाड़ा

आगरे वालों का अखाड़ा मुख्य रूप से तो आगरे में ही है, जिसकी चर्चा आगरे के अन्तर्गत ही की जाएगी परन्तु भिवानी में भी इसकी एक शाखा है और इस शाखा के सूत्रधार के रूप में आते हैं—पं० अयोध्या प्रसाद पं० भगवानदास तथा पं० किसनलाल 'छक्कड़' और इनके शिष्य। पं० भगवानदास और पं० अयोध्या प्रसाद गत हो चुके हैं और पं० किसनलाल छक्कड़ अभी भी वर्तमान है।

पं० अयोध्याप्रसाद—लावनी की दृष्टि से पं० अयोध्याप्रसाद आगरे के ख्याति प्राप्त लावनीकार अनन्तराम ब्रह्मचारी के शिष्य थे। आप अधिक शिक्षित तो नहीं थे पर तु लावनी सग्रह और लावनी गाने का आपको अच्छा चाव था। इसी चाव के कारण कुछ अभ्यास हो जाने से आप लावनियाँ बना भी लेते थे। आपके पास अपनी रचनाओं का तो विशेष सग्रह न था पर तु विशिष्ट ख्याति सिद्ध लावनीकारों की लावनियों का अच्छा सग्रह था। कुछ लावनीबाजों के अनुसार आप जगन्नाथ ब्रह्मचारी के शिष्य थे परन्तु हमारी खोज के अनुसार आप अनन्तराम ब्रह्मचारी के ही शिष्य थे। जगन्नाथ ब्रह्मचारी के नहीं। आपका अधिक जीवन कलकत्ता में व्यतीत हुआ। आपको लावनी दंगल आयोजन का अत्यधिक चाव था। आप के विषय में प्रसिद्ध है कि एक बार किसी प्रसिद्ध लावनीकार से आपकी लावनियाँ लड़ गई[1] और आप के पास लावनियाँ कम पड़ गई आपने उसी समय दंगल में कह दिया कि आगामी सप्ताह हम पुनः दंगल करेंगे और उस दंगल में आप अपने गुरु को बुला लीजिए, हम अपने गुरु को बुला लेंगे। परिणामस्वरूप उसी समय आपने अपना मकान बेच दिया और पैसा एकत्र करके स्वयं आगरे गए और वहाँ के प्रसिद्ध लावनीबाजों को तत्काल भिवानी ले आए। अब एक ओर तो आगरे वालों का अखाड़ा जमा था और दूसरी ओर नारनौल दादरी आदि अखाड़ों के प्रमुख लावनीबाज थे और एक के पश्चात दूसरा, दूसरे के पश्चात तीसरा सब अपने अपने ढंग से लावनियाँ सुना रहे थे। कहा जाता है कि यह दंगल अपने समय के बहुत विशाल

---

१ लावनियाँ लड़ाने का अभिप्राय है—प्रतिस्पर्धात्मक या प्रतियोगितात्मक लावनियों का गाया जाना जिसमें लावनीबाज को एक के पश्चात दूसरी और दूसरी के पश्चात तीसरी उसी प्रकार की लावनियाँ सुनानी पड़ती है और अन्त में जिस लावनीबाज का उस प्रकार की लावनियों का कोष समाप्त हो जाता है, उसे ही पराजित समझा जाता है। इसे लड़ी लड़ाना भी कहते है।

दगलो म से एक था, जो ८ १० दिन तक एक रस होकर चलता रहा और अन्त म जब किसी की भी लड़िया समाप्त होने का नाम नही लेती थी तो दोनो अखाडा वालो ने एक दूसरे के प्रति अतीव स्नेह एव श्रद्धा का प्रदर्शन किया और दगल का विसर्जन हुआ। इस प्रकार मकान बेचकर दगल का आयोजन करना वास्तव मे ही 'लावनी साहित्य' के प्रति आपकी वास्तविक लग्न का परिचायक है। आपकी लावनी सग्रह की रुचि भी अनूठी थी। इस सम्बन्ध म भी एक रोचक घटना प्रचलित है। कहते हैं कि एक बार किसी अन्य (भगवानदास नामक) लावनीबाज से जब लावनीबाजो करने की या लड़िया लडाने की बात सामने आई तो उक्त भगवानदास ने गर्वोक्ति पूर्ण शब्दो म कहा कि मेरे साथ आप क्या लडी लडाएँगे, मेरे पास नौ धडी (अनुमानत पैंतालिस किलो) दफ्तर[1] है—अर्थात् मेरे पास इतनी हस्तलिखित लावनिया हैं कि जिनके कागजो को तोला जाए तो वे नौ धडी बठेंगे। यह गर्वोक्ति प० अयोध्याप्रसाद जी के लिए असह्य थी और वे तत्क्षण ही बोल उठे कि यदि ऐसी ही बात है तो 'विजय पराजय' इसी पर निश्चित रही, निकालिए अपना दफ्तर और बुलाइए तौलने वाले को, मेरे पास 'ग्यारह धडी (अनुमानत पचपन किलो) दफ्तर है। कहा जाता है कि वहा भारी भीड एकत्र हो गई और दोनो के 'दफ्तर तोले जाने पर दोनो ही सत्य प्रमाणित हुए। ऐसे थे प० अयोध्याप्रसाद। वे अपनी धुन के पक्के और वास्तविक लावनीबाज थे। अपने जीवन के अन्तिम समय म वे दण्डी स्वामी हो गए थे। उनका जन्म पलावास (भिवानी) म सन् १८७० मे और मृत्यु सन् १६३४ मे हुई। ता० ४ ८ १६३३ का एक पत्र, जो श्री प्रभुदयाल यादव (जबलपुर) ने उनको लिखा था, हमे उनके 'लावनी सग्रह' म ही उपलब्ध हुआ है, जिससे निश्चय किया जा सकता है कि उस समय तक वे जीवित थे। खेद है कि अब उनके द्वारा सगृहीत समस्त सामग्री उपलब्ध नही है तथापि आज भी उसम से पर्याप्त सामग्री श्री किसनलाल छकडा भिवानी के पास सुरक्षित है।

प० भगवानदास—पडित भगवानदास भी श्री अनन्तराम ब्रह्मचारी (आगरा) के ही शिष्य और पण्डित अयोध्याप्रसाद के गुरुभाई थे। पण्डित अयोध्याप्रसाद के साथ लडी लडाने वाले (उपरोक्त घटना के अनुसार) भगवानदास इन भगवानदास से भिन्न थे। आपके विषय म केवल इतना कहना ही पर्याप्त है कि भिवानी म आगरा के अखाडे की शिष्य परपरा को बनाए रखने का श्रेय आपको ही है। प० अयोध्याप्रसाद चाहे एक ख्यातिसिद्ध लावनीबाज थे परन्तु भिवानी मे उनकी शिष्य-परम्परा न चल

---

१ ह० लि० ला० के रजिस्टर आदि के समूह को लावनीबाज 'दफ्तर' या बस्ता कहते हैं। 'दफ्तर' प्राय अधिक सख्यक लावनियो के समूह को और 'बस्ता' न्यून-सख्यक लावनियो के सग्रह को समझा जाता है।

सकी जो पण्डित भगवानदास के द्वारा चली। पण्डित भगवानदास ख्याति की दृष्टि से अधिक ख्याति प्राप्त नहीं हो सके, बस साधारणतया आप एक अच्छे लावनीबाज थे। आपके शिष्यों म भिवानी मे श्री किसनलाल छकडा अभी भी आगरा अखाडे का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। आप 'बिसाऊ' के एक मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार म उत्पन्न हुए थे। आपका जीवनकाल ई० सन् १८८० स १९४० तक माना जाता है।

कुछ लावनीकारो क अनुसार आप अनन्तराम ब्रह्मचारी क शिष्य न होकर जगन्नाथ ब्रह्मचारी के शिष्य थे परन्तु हमारी खोज के अनुसार आगरे के अखाडे म अनन्तराम ब्रह्मचारी ही हुए है जो प० रूपराम के शिष्य थे। सम्भव है कुछ काल के पश्चात् इन अनन्तराम ब्रह्मचारी को ही जगन्नाथ ब्रह्मचारी कहा जाने लगा हो।

श्री किसनलाल छकडा—आगरे के अखाडे के भिवानी म प्रतिनिधि लावनीबाज श्री किसनलाल छकडा का जन्म भिवानी म ही एक सामान्य ब्राह्मण परिवार म प० दाताराम क घर सम्वत १९५० म हुआ। आप दो भाई हैं और दोनो ही अच्छे लावनीबाज है। परन्तु दानो के ही अखाड भिन्न हैं। आपक भ्राता जी की हम प्रसगानुसार अन्यत्र चर्चा करेंगे। श्री छकडा आगरे के अखाडे के ख्यातिप्राप्त लावनीबाज श्री भगवानदास जी क शिष्य है। आजकल भिवानी के वयोवृद्ध लावनीबाजो म तथा अच्छे चगवादको मे एव कुशल ख्याल गायको म आपका अच्छा स्थान है। वसे ता आप गायक ही अधिक हैं परन्तु सामान्यतया रचना भी अच्छी कर लेते हैं। यद्यपि अब भी आप के पास अनुमानत दो हजार या इससे भी अधिक लावनिया सुरक्षित रखी हैं, तथापि आपको अधिक विश्वास अपनी स्मरणशक्ति पर ही रहता है। वास्तव म ही आप की स्मरण शक्ति सराहनीय है। कभी विशेष प्रतियोगितात्मक दगलो क अतिरिक्त, अपनी स्मरण शक्ति के बल-बूत पर ही आपन अनक अच्छे अच्छे दगलो मे वाह वाह लूटी है। अब इस अवस्था म भी आप की गायकी आप के यौवन के दिनो की स्मृति ताजा कर देती है।

आप एक सन्तोषी तथा निश्छल प्रकृति के ब्राह्मण हैं। इन पक्तियो क लेखक ने भी अब से अनुमानत २२ २३ वष पूर्व अपनी लावनी रुचि के कारण आप को अपना लावनी गुरु स्वीकार किया था। भिवानी म तथा अन्यत्र भी आपक अनेक शिष्य आज भी आप की कीर्ति को चार चाद लगा रहे हैं।

आपक विषय म एक अतीव अनूठी तथा चमत्कारिक घटना सुनने म आती है। कहते हैं कि एक बार कोई व्यक्ति आप स लावनिया का एक हस्तलिखित प्रति अवलोकनार्थ माग कर ल गया परन्तु जब वह प्रति लौट कर आई तब उसके कुछ पृष्ठ फटे हुए थे। श्री छकडा ने उसी समय उद्गार प्रकट किए कि जिन हाथो से य पृष्ठ फाड गए हैं व शीघ्र ही 'बेकार हो जाएँगे। परिणामस्वरूप कुछ ही काल क पश्चात उस व्यक्ति के हाथो म कोई विशेष रोग हो गया और वे बेकार हो गए।

अच्छे लावनीबाज होने के नाते प्राय आप 'उस्ताद' नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। आप की शिष्य परम्परा म अ्य अनेक शिष्या के अतिरिक्त मुख्य रूप से इस प्रकार हैं—

श्री राधाकृष्ण लोकाट, पुष्यम चन्द 'मानव', ठा० मर्गूसिह, श्री मुरारीलाल। विस्तार भय की दृष्टि से हम आगे केवल दो ही चरित्र प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्री छक्डा ने समय-समय पर अनक धार्मिक, सामाजिक और राजनतिक रचनाओ क अतिरिक्त लडीवद लावनियाँ भी लिखी हैं। नीच हम आपकी एक रचना उदाहरणाथ प्रस्तुत कर रहे हैं। इस रचना म श्री छक्डा न प्रत्यक्ष रूप स तो पतग-बाजी की चर्चा की है परतु स्पष्ट ही है कि पतगबाजी के बहान से कवि ने अपनी राष्ट्रीय भावनाओ का परिचय दिया है। आपकी एसी ही तथा अ्य भी अनक रचनाएँ हमारे पास सुरक्षित हैं। इस रचना का शीषक है। पतगबाजी

पतगबाजी

लडालो दो दो ये पेच हमसे, अगर तुम्हारी जो होवे राजी।
मिनट मे काटें हम गुडडी उनकी, करें जो हम से पतगबाजी॥

टेक—तिरगे रग की हमारी गुडडी, मैं ठुमकी देके इसे चढ़ा लू।
जो ढील देवे तो खच लू मैं, तुम्हारी कल्लो को काट डालू॥
तुम्हारी कल्लो हैं जितनी गुडडी, बढा के डोरा इन्हें दबालू।
निकल के जायेंगी कल्लो कसे म पेच डालू इन्हें फँसा लू॥

शेर—लडावो पेच जो हमसे कटा कर गुडडी जावोगे।
ढूंढ कर मुश्किल से काली कहा से लावोगे॥
करो हमसे पतगबाजी तो हशमत को लुटावोगे।
ये करके नीची ही गदन हमारे पास आवोगे॥

मि०—लडा के करदे ये धन की मिट्टी, न काम आयेंगे मुल्ला-काजी
मिनट मे काटें

लडेगी मैदाने जग मे गुडडी तिरगी काली लडे भयकर।
तिरगी गुडडी की जीत होगी, सहाय जिसकी करेंगे शकर॥
तिरगी गुडडी हमारी ऐसी तुम्हारी कल्लो को देवे तग कर।
न पेश पावेगी कल्लो हम से लडे भी चाहे हजार ढग कर॥

शेर—तिरगी से तेरी कल्लो न हरगिज पेश पावेगी।
गिरेगी कटके जब कल्लो, तिरगी बल दिखावेगी॥
कटेगी नाक कालो की तिरगी रग जमावेगी।
न दीखे शक्ल कल्लो की तिरगी चम-चमावेगी॥

लावनी की दृष्टि स आपने अनेक लावनियों की रचना की है परन्तु अच्छे गायक न होने के कारण आपको लावनीबाजो म विशेष ख्याति प्राप्त न हो सकी। आप श्री किसनलाल छकडा (आगरे वालो का अखाडा) के शिष्य हैं। कालान्तर मे आपके भी अनेक लावनी शिष्य हुए परन्तु लावनी के प्रति उनकी विशिष्ट रुचि नही प्रतीत होती। आपके अध्यापन काल म विद्यार्थियो के अवकाश के पश्चात् प्राय सदा ही आपके स्थान पर लावनीबाजी का जमघट लगा रहता था।

श्री मर्गूसिंह—आपका जन्म भिवानी के प्रतिष्ठित राजपूत परिवार मे स० १६७८ म हुआ। आपका लावनी-साहित्य से अत्यधिक प्रेम है, परन्तु 'गायकी' और 'रचना' की दृष्टि से आपको विशेष रुचि नही है। वैसे तो 'लावनी सग्रह' का भी आपको विशेष चाव नही है परन्तु कभी-कभी कोई रुचिकर लावनी लिखकर रख लेना या उसे गा लेना आपकी रुचि के अनुकूल है। आपमे गुरु के प्रति विशेष श्रद्धा एव भक्ति भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। आपके गुरु है—श्री किसनलाल छकडा (अखाडा आगरा)। कहते हैं कि एक बार आप किसी 'लावनी-दगल' मे गए तो वहाँ आपको श्री छकडा के दर्शन नही हुए। आप ने तत्काल ही सस्कृत का एक श्लोक सुनाया और यह कह कर चल दिए कि जिस सभा म 'गुरु जी' नही हैं वह सभा व्यर्थ है। एक सच्चे राजपूत होने के नाते वास्तव म आप लावनीकार या लावनीबाज कम और अपने अखाड के रक्षक एव सहयोगी अधिक हैं।

भिवानी के अखाडे—३

दादरी वालों का अखाडा

वसे तो आगरे क अखाडे की भांति हम दादरी के अखाडे की चर्चा भी दादरी के अन्तगत करेंगे परन्तु भिवानी म दादरी वालो की शाखा सम्बन्धी चर्चा करना अप्रासगिक न होगा। दादरी वाला क अखाड के मुखिया के रूप मे हम प० शम्भूदास दादरी वालो को मानते है। परन्तु उनका आवास स्थान भिवानी म न होने के कारण हम उनकी चर्चा यहाँ न करके उनकी शिष्य-परम्परा पर किंचित दृष्टिपात करेंगे।

इस शिष्य श्रृखला की दृष्टि स दादरी वाला क अखाडे के प्रमुख लावनीकार (लावनीबाज) के रूप म हम श्री कन्हैयालाल कालकवि को भिवानी का ख्याति सिद्ध लावनीकार (लावनीबाज) स्वीकार करते है।

श्री कन्हैयालाल कालकवि—हमारा यह निश्चित मत है कि यदि श्री कन्हैया लाल कुछ काल और जीवित रहते तो उनके नाम से भी भिवानी का अखाडा या कालकवि का अखाडा अवश्य प्रचलित हो जाता। यद्यपि जब आप कहीं अन्यत्र

जाते थे तो भिवानी के लावनीकार (लावनीबाज) के रूप म ही आप प्रसिद्ध थे। आप म लावनीकार और लावनीबाज, दोनो के गुण तो थे ही इसके अतिरिक्त यदि आप भली भाँति शिक्षित हुए होते तो सम्भवत अपनी उच्चकोटि की साहित्यिक रचनाओ द्वारा भी भिवानी के नाम को चार चाँद लगा देते। आप म एक कवि के गुण एव सस्कार विद्यमान थे। आप के द्वारा की गई अनेक समस्या-पूर्तियाँ आज भी आपकी कवि-गोष्ठियो मे उपस्थिति की गाथायें कहने म समथ हैं।

दगलो मे अनेक बार आपकी आशु-लावनियाँ श्रोताओ को मन्त्र मुग्ध कर देती थीं। यही कारण है कि आप तत्काल कवि या कालकवि के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे।

साधारण धोती, साधारण कमीज और ऊपर सलेटी रग का कोट हाथ म बेंत या बडा दड मुस्कान पूर्ण मुख गम्भीरतापूर्ण चाल, छाती पर लगे अनेक रजत पदक, बात चीत की मुस्कानपूर्ण गम्भीरता, मानो आज भी आपकी कल्पना करते ही सजीव हो उठती है।

एक साधारण परिवार मे जन्म साधारण ही शिक्षा दीक्षा हुई और साधारण वातावरण में रहने के कारण आप अन्य क्षेत्रो म अधिक प्रतिभावान प्रमाणित नही हो सके, परन्तु अपने दन्यजन्य स्वाभिमान के समक्ष आपने कभी किसी अमीर उमराव से करबद्ध प्रार्थना नही की, अपितु अनेक बार अपनी लावनी शक्ति द्वारा अनेक धनियो की आलोचना ही की।

लावनी की दृष्टि से श्री कालकवि दादरी निवासी प० शम्भूदास जी के प्रशिष्य और प० मूलचन्द्र के शिष्य थे। आप एक अच्छे लावनी रचयिता और लावनी-गायक तथा कुशल चग वादक थे। आपने अपनी प्रतिभा से भिवानी के ही लावनी बाजो में नही अपितु अन्यत्र भी अपना सम्माननीय स्थान बना लिया था।

कुल मिलाकर आपके ८२ शिष्य भिन्न भिन्न स्थानो पर अब भी आपके नाम का डका बजा रहे हैं जो मुख्य रूप से भिवानी और हैदराबाद म अधिक है। आपके प्रमुख शिष्यो म हैं—प० नन्दकिशोर प० मुरलीधर पुजारी प० रूलिराम, श्री बजरग लाल गुप्ता और श्री नौरग राय गुप्ता।

आपका जन्म सन् १६०० और मृत्यु सन् १६६० मे भिवानी म ही हुई।

लावनी की दृष्टि स आपने अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि लावनियो के अतिरिक्त लावनीबाजो के दगलो मे गाई जाने योग्य भी अनेक लडियाँ[1]

---

१ एक ही प्रकार की भावनाओ तथा रगतो की एव तुकान्तो की लावनियाँ।

और 'दावले'[1] लिखे। यद्यपि यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री के रूप मे आपके अनेक शिष्यों के पास आपकी अनेक रचनायें आज भी उपलब्ध हैं, तथापि एक निश्चित स्थान पर या आपके परिवार के सदस्यों के पास आपकी रचनाओं की खोज केवल मृगतृष्णा मात्र ही कही जाएगी। वास्तव में यह सब है आपके अपने स्वभाव के कारण ही। इस दृष्टि से आपका स्वभाव अतीव विचित्र एवं अपने ही ढंग का था। वह एस—कि जब भी कोई आपके पास लावनी लेने की इच्छा से आता, (चाहे वह व्यक्ति किसी भी अखाड़े या दल से सम्बन्धित क्यों न हो) उसे आप निराश नहीं लौटने देते थे। यहाँ तक कि कितनी ही बार आपने अपने 'लावनी रजिस्टरों' में से भी पृष्ठ निकाल निकाल कर लावनीप्रेमियों को दिए हैं जब कि अन्य लावनीबाज इस दृष्टि में अतीव संकुचित दृष्टिकोण के होते थे, होते हैं।

प्रायः लावनीबाजों में लावनी संग्रह की प्रबल लालसा रहती है परन्तु आप इस दृष्टि से अपवाद थे। आपको किसी भी लावनी-संग्रह की धुन सवार नहीं हुई। आपको सदा अपनी लेखनी पर विश्वास था।

आपने अन्य अनेक स्थानों पर घूम घूम कर लावनीबाजी का अत्यधिक प्रचार किया। आपके जीवन मे लावनी सम्बन्धी अनेक घटनायें घटित हुई।

वैसे तो आपकी सभी देवी-देवताओं पर समान श्रद्धा थी परन्तु शिव के प्रति आपकी विशेष आस्था थी जिसका प्रभाव आपकी रचनाओं मे यत्र-तत्र दर्शनीय है। श्री राम के प्रति भक्ति की आपकी दो प्रसिद्ध लावनियाँ (श्री राम निषाद-सम्वाद) उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

लावनी—श्री राम-निषाद-सम्वाद—१

सुन राम के वचन निषाद कहे मैं एक अरज सरकार करूँ।
पहले पद रज प्रभु धोय पिऊँ, फिर नाव में तुमको सवार करूँ॥
टेक—इन चरणों में जादू की लाग भरी, सिर गैब के नृत्य किया था हरी।
रज छूके शिला उड़ी होके परी, फिर नाव का क्या इतबार करूँ॥
प्रभु कहना है फक्त हमारा यही, और फर्ज है नाथ तुम्हारा यही।
करती है कुटुम्ब का गुजारा यही कोई और न मैं रुजगार करूँ॥
शेर—नाव से ही हो गुजारा इस मेरे परिवार का।
काम मेरा है सदाना वार सेती पार का॥
सुन वचन आरत भरे, बोले हरी होकर दयाल।
करले मनसा आज पूरण, सुन वचन करतार का॥

---

१ प्रतियोगात्मक लावनियाँ, प्रतियोगी के समक्ष उसके उत्तर के रूप में गाई जाने वाली लावनियाँ।

मि०—जिन चरणों को रज ऋषि मुनि ने मली, वही पांव में आज पखार करूँ ॥
पहले पद रज

॥ १ ॥

भर करके कठोते में गंगा जल, सब कुटुम्ब-सहित हो करके विवल ।
लिया चरणामृत धो चरण कमल, अब चलने का सोच विचार करूँ ॥
झटपट दई नाव किनारे लगा, मन में सन्देह था सारा भगा ।
तन-मन श्री राम के प्रेम पगा, कहे वार से पर ले पार करूँ ॥

शेर—झट उठा पखा हिला दीन्हीं चला मल्लाह ने ।
दी लगा जाकर किनारे बरमला मल्लाह ने ॥
राम लक्षमण-जानकी तीनों उतर नीचे गये ।
गिर पड़ा चरणो में ये किन्हां भला मल्लाह ने ॥

मि०—यही बारम्बार पुकार मेरी मैं आज मेरा उद्धार करूँ
पहले पद रज

॥ २ ॥

कहे राम निषाद का हाथ पकर, यह मुद्रिका ले मन खुश होकर ।
नहिं लीन्हीं निषाद कहे हँस कर, सुनो आप ता मैं इजहार करूँ ॥
हम पेशा हो आप हमारे प्रभु इस वास्ते आप से हारे प्रभु ।
कभी आवेंगे पास तुम्हारे प्रभु, इस वक्त मैं यूं इनकार करूँ ॥

शेर—आप को मैंने उतारा पार गंगा वार से ।
कर लिया जीवन सफल श्री गंग के दरबार से ॥
पास आऊँ आपके जब हो विदा संसार से ।
उस घड़ी तुम पार कर देना हमें भव धार से ॥

मि०—दुख आवागमन का मिटावो मेरा, मैं विनय ये बारम्बार करू
पहले पद रज

॥ ३ ॥

सुन प्रेम लपेटे भगत के वचन, भगवत वर देते हैं होके मगन ।
परिवार सहित करो मौज सजन, दई भक्ति ये तुझ से करार करूँ ॥
शम्भू को जो भक्त कहाय रह्यो, वही भूल परम पद पाय रह्यो ।
'कविकाल' ये 'ख्याल' बनाय रह्यो, मजमून नया तैयार करूँ ॥

शेर—हार कर हासिद हजारों ही भिवानी से गये ।
जो चतुभुज से अड़े वो जिन्दगानी से गये ॥
राम मुख से ना रटा और दान कर से ना दिया ।
सख्त वो परलोक रीते अन्न पानी से गये ॥

मि०—हरि-चरण में ध्यान लगा 'बजरंग' कहे, तन मन धन को निसार करूँ
पहले पद रज

॥ ४ ॥

लावनी—श्री राम निपाद सम्वाद—२

करतार से केवट कहता वचन, अव्वल म यह इजहार करूँ ।
खटका है मुझे में धोऊं चरन, बिन धोये नहीं असवार करूँ ॥
टेक—गई सग शिला उड करके गगन, तोरे चरणों का क्या इतबार करूँ ।
घर मेरा पवित्र करो भगवन, समय अपना न मैं बेकार करूँ ॥
चिन्ता थी मुझे कब हो दरसन, जो मैं तन-मन धन को निसार करू ।
छल छोड पधारे हमारे भवन, हाजिर रहू तन उद्धार करु ॥
शेर—जाप करता हूँ हरी का मैं खडा इस घाट पर ।
खुद ब-खुद आये हरी, मतलब सरा इस घाट पर ॥
झूठ जानू था मैं जो, वह आज सच्ची हो गई ।
दे दिये रघुनाथ दरशन, अघ टरा इस घाट पर ॥
मि०—टुक ठहरो जी, जल्द करो ना ललन जरा धोलू चरण न अवार करूँ
खटका है

[१]

ठहराये किनारे प रघुनन्दन, रहो बैठे मै नाव तयार करूँ ।
डटा कठवे मे गग जल लगा भरन, अवा कहती है निज निस्तार करू ॥
ढप-चग मवग लगे हैं बजन, सुख-साज से आज व्योहार करूँ ।
तीनों के चरण धो लिया अचमन, शुभ दिन है क्या सोच विचार करूँ ॥
शेर—थी खडी एक तरफ को धो ला किनारे पर भली ।
साफ दिल मल्लाह बोला, नाथ तुम त्रिभुवन बली ॥
दी चला पला हिला जब नाव धारा बीच में ।
जब दिल की सब मिटी है, हूँ नसीबे का बली ॥
मि०—घरे ध्यान तो निघन पावे है धन, ताकत से तलब तयार करूँ
खटका है मुझे में

॥ २ ॥

नया लगी आन किनारे सजन, जाहिर में मैं यह बेगार करूँ ।
पल-पल में घुगाते हैं अपना परन, अयां हाल है यों विस्तार करूँ ॥
फल रानी वो धारे हुए है वसन, गफलत ये दिल बेदार करूँ ।
बस मुद्रिका देते ये होके मगन, फज मेरा मैं क्व इनकार करूँ ॥

शेर—भार भूमी का उतारन को लिया अवतार है।
खर फावलीयत कद्रदां होना बड़ा दुश्वार है॥
मैंने तुमको आज धारा से लगाया पार है।
किस तरह लू मुद्रिका दोनों का एक ही भार है॥
मि०—यही अर्ज करो मेरी आप श्रवन, गजराज ज्यूं आज पुकार करू खटका है मुझे में ॥३॥
रोशन हुई गंगासिंह की कथन, लिख प्यार अजब असरार करू ।
लिया तेरे ख्याल का देख मथन मजमू तेरा खल भिस्मार करूं॥
वही नाथ के नाथ हैं सबके सदन नहीं और के तन आधार करूं।
सब करते हैं शम्भु की मूल रटन यही ध्यान में बारबार करूं॥
शेर—खोफ मन में मान मूरख तू सदा कवि काल का।
है यही सवत्र व्यापक सब के सब हाल का॥
सुन कथा रघुनाथ की और देख कम निषाद का।
यह कथा सुन है मगन मन वृद्ध का क्या बाल का॥
मि०—हर वक्त है धी वालों का मरन, कहे तुर्रा में कलगी से प्यार करूं खटका है मुझे में ॥४॥

इन उपरोक्त दोनों लावनियों के विषय में अधिक न कह कर हम केवल इतना ही कहेंगे कि प्रथम लावनी में कवि की यह विशेषता है कि प्रत्येक दो-दो पंक्तियों में तीन-तीन सम तुकान्त और एक एक टेक का तुकान्त आया है। जबकि *साधारणतया दोनों पंक्तियों में केवल एक ही सम-तुकान्त या टेक का तुकान्त आता* है। प्रथम लावनी के अतिरिक्त दूसरी लावनी में अतीव विचित्रतापूर्ण कवित्व दृष्टव्य हैं, वह यह कि—सम्पूर्ण लावनी ककेहरा में बंधकर चलती है, अर्थात, प्रत्येक पंक्ति क ख, ग के क्रम से चल कर सम्पूर्ण लावनी समाप्त हुई है। इसी लावनी में दूसरी विशेषता यह है कि इसमें एक एक पंक्ति में एक एक सम तुकान्त है और एक एक टेक का तुकान्त आता है अर्थात, प्रत्येक यति पर सम-तुकान्त होने के कारण यदि टेक को उलटा करके पढ़ा जाए तो एक टेक की दो टेकें बन जाती हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण लावनी के तुकान्तों को उलटा करके पढ़ा जाए तो एक अन्य पूर्ण लावनी दृष्टिगोचर होगी—जैसे टेक को हम इस प्रकार उलट सकते हैं—

अव्वल में यह इजहार करूं, करतार से लेवट करता वचन,
बिन धोये नहीं असवार करू खटका है मुझे में धोऊ चरन ॥टेक॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण लावनी को उलटा जा सकता है।

इसी लावनी मे तीसरी विशेषता एक यह है कि प्रत्येक यति के पश्चात् प्रत्येक पक्ति में हिन्दी के ककेहरे की भाति सम्पूण लावनी मे उर्दू के अलिफ, वे, प आदि बँधे हुए हैं

इस प्रकार पक्ति के आरम्भ मे 'ककेहरा (क,ख ग, आदि) और यति के पश्चात् अलिफ, वे प आदि बँधे हुए होने के कारण यदि लावनी को उलट कर पढा जाए तो यही 'बन्दिश पक्ति के आरम्भ म अलिफ वे, पे, आदि और 'यति के पश्चात् 'ककेहरा (क ख, ग आदि) की बन्दिश हो जाएगी ।

इसस कवि का बुद्धि चातुय एव लावनीबाजी के प्रति विशेष सूझ-बूझ क दशन होते हैं । श्री कालकवि न इस प्रकार की अनेक लावनिया लिखी है ।

अन्त म हम उनके द्वारा रचे गए एक दो 'दाखला की टेकें उदाहरण के रूप म प्रस्तुत करक इस चर्चा को यही विराम देंगे ।

कलगी' वाला के प्रसिद्ध लावनीकार 'श्री राम कुमार न जब हरद्वार चलन की घोषणा करत हुए इस प्रकार कहा कि —

चलो चलें चल कर लूटें हर एक मजा हरद्वार में ह ।
+ + + + + + ।।

तब श्री कालकवि ने 'दाखला' दिया कि—

नहा धोकर अफलातून हुआ पाउडर का मला रुखसार में ह ।
लिया राम का नाम न दान दिया क्या नहा के किया हरद्वार में है ।।

इसी प्रकार जिस समय प रूपकिशोर (आगरा वाल) न एक लावनी इस प्रकार लिखी कि—

टेक—पिया छोड के मोंहि सिधार गये मैं पिया जो के सग सती न भई।
नित सत्य के तौल तुलाई करी, पर पूरण ब्रह्मगती न भई ।।
—(प० रूपकिशोर)

तब श्री कालकवि ने इसका 'दाखला इस प्रकार दिया—

टेक—तुझे छोड गये निर्भाग समझ, प्यारी तेरी सुमत मती न भई ।
तने पाप प्रनाप-शनाप किये, एहि कारण परम गती न भई ।।

श्री 'कालकवि' ने इस प्रकार के अनक दाखले ही नहीं अपितु अन्य अनक बन्दिशो म बधे हुए ख्याल' भी असख्य लिख हैं । किसी भी अच्छे लावनीकार की तुलना म आप अनूठी प्रतिभा से युक्त किसी भी दृष्टि से न्यून नही ठहरत । कही आपकी बिना मात्रा की लावनिया की चर्चा है तो कही अधर लावनिया की और कही किसी अन्य बन्दिश या सनद' की ।

श्री कालकवि के कुछ शिष्यों का संक्षिप्त विवरण—

(१) प० नन्दकिशोर—आप श्री कालकवि के अच्छे शिष्यों में से एक थे। आपको लावनी से अतीव स्नेह था और साधारण दंगलों में आप मीठे स्वर में अच्छा गा लेते थे। रचना की दृष्टि से आपका अभ्यास नहीं था। एक साधारण ब्राह्मण परिवार में भिवानी में ही उत्पन्न हुए थे।

(२) प० मुरलीधर पुजारी—आप श्री कालकवि के लावनी शिष्य थे। आपका जन्म भी भिवानी में ही प्रतिष्ठित पुजारी परिवार में हुआ था। आपको लावनी श्रवण का विशेष चाव था। कभी कभी गा भी लेते थे, परन्तु रचना का अभ्यास नहीं था। आप अन्तिम समय कलकत्ता चले गए थे वहीं आप का देहान्त हो गया।

(३) प० हलिराम—आप भी श्री कालकवि के लावनी प्रेमी शिष्य थे। आपका भी रचना का तो अभ्यास न था पर तु लावनी सग्रह में अच्छी रुचि थी। कभी कभी आप गा भी लेते थे परन्तु गान पर कोई विशेष अधिकार न था। वास्तव में दंगलों में कई बार प्रतियोगात्मक लावनियाँ चलते चलते लावनीबाजों में विवाद चरम सीमा पर पहुँच जाता था और देखते ही देखते दो दल बन जाते थे तथा रक्त में उष्णता आने लगती थी। ऐसी दशा में लावनीबाजों को ऐसे सहायकों या शिष्यों की आवश्यकता होती थी जो शारीरिक दृष्टि से भी अपने अखाड़े की रक्षा कर सकें। प० हलिराम को हम इसी श्रेणी में रख सकते हैं। श्री कालकवि की अनुमानतः चार सौ रचनाओं को (प० हलिराम के देहान्त के पश्चात्) उनकी धर्म-पत्नी ने कुछ दिन तक सुरक्षित रक्खा परन्तु दान दान वे रचनाएं नष्ट हो गईं। उन्हीं रचनाओं की प्रतिलिपियाँ यत्र तत्र कभी कभी देखने में आती हैं।

(४) श्री बजरंगलाल गुप्त—आप श्री कालकवि के प्रमुख गायक शिष्यों में से एक हैं। आपका जन्म एक मध्यम वर्गीय वैश्य परिवार में ला० रामेश्वरदास जी के घर मार्गशीर्ष शुक्ल ११, सम्वत् १९७७ में भिवानी में हुआ। आप एक अच्छे लावनी गायक और चंग वादक हैं। रचना की दृष्टि से आपको लावनी रचना का बहुत अभ्यास तो नहीं है परन्तु यदा कदा साधारण लावनियों की रचना भी कर लेते हैं। लावनी सग्रह का भी आपको विशेष चाव तो नहीं है परन्तु साधारणतया आप अच्छी लावनियों के सग्रह को पसन्द करते हैं। आप के पास अनुमानतः ५००—६०० अच्छी लावनियों का सग्रह है जिनमें से अधिक संख्यक आपके लावनी गुरु श्री कालकवि की रचनाएं हैं। शिक्षा की दृष्टि से अधिक शिक्षित न होने हुए भी आपका हिन्दी का ज्ञान अच्छा है। लावनियों के अतिरिक्त साधारण कवि गोष्ठियों में भी आप समय-समय पर समस्या-पूर्ति आदि करते रहे हैं। उन्हीं दिनों

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन विशेष प्रभाव पूर्ण ढग से चल रहा होने के कारण आपके विचार भी विशेष रूप से राष्ट्रीय भावनाओ से ओत प्रोत हैं। श्री कालकवि का शिष्य होने के लिए आपके विषय में ऐसा प्रचलित है कि—आप एक बार अपने किसी मित्र के यहाँ षष्ठी आयोजन[1] में कुछ गा रहे थे उसी आयोजन में श्री कालकवि भी आमन्त्रित थे। श्री कालकवि आपके मधुर स्वरालाप का श्रवण करके मुग्ध हो गए और उसी समय आप से परिचय प्राप्त कर लिया। आपने भी श्री कालकवि के विषय में बहुत चर्चा सुनी थी परिणामस्वरूप आपने उनका शिष्य बनने का और उन्होंने आपको शिष्यत्व प्रदान करने का तत्काल ही सकल्प कर लिया और आप उनके शिष्य हो गए।

आप लुधियाना में ऊनी वस्त्रों का व्यापार एव आढत का काय करते है। आपका स्वभाव अतीव मृदुल एव विनोद प्रिय है। आप चार भाई है और चारों को ही लावनीबाजी से विशेष स्नेह है परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि चारों ही भाई पृथक पृथक अखाड़ों से सम्बन्धित है।

(४) श्री नीरगराय—आप भी मध्यम् वर्गीय वैश्य परिवार से सम्बन्धित हैं तथा श्री कालकवि के शिष्य और अच्छे लावनी प्रेमी है। आपको कुछ गिने चुने ख्यालों के अतिरिक्त अधिक लावनी सग्रह की रुचि नहीं है। आपको रचना का अभ्यास नहीं है परन्तु यदा कदा साधारण मित्र गोष्ठी में आप अच्छा गा लेते हैं। आजकल आप बम्बई में अपना ही कोई व्यापारिक काय कर रहे है।

इस प्रकार भिवानी में दादरी वालो के अखाड़े के मुखिया के रूप में श्री कन्हैयालाल 'कालकवि' और इस अखाड़े का सवधन आदि करने के लिए श्री कालकवि के शिष्यों की एक लम्बी शृखला उपलब्ध है।

भिवानी के अखाड़े—४

नारनौल वालो का अखाड़ा

'नारनौल के अखाड़े-सम्बन्धी विशेष चर्चा नारनौल का अखाड़ा शीर्षक से हम पृथक से करेंगे परन्तु यहाँ हम भिवानी में नारनौल वालो के अखाड़ा सम्बन्धी चर्चा करना अभीष्ट है। वास्तव में तो आगरा वालों के अखाड़े' तथा

---

१ उत्तर भारत में यह एक प्रथा है कि किसी के यहाँ पुत्र होने पर वह व्यक्ति पुत्र प्राप्ति के छठे दिन अपने यहाँ एक उत्सव का आयोजन करता है, जिसमें वह अपने अनेक परिचित मित्रों व अन्य सम्बन्धियों आदि को आमन्त्रित करता है। यह उत्सव रात्रि के समय होता है।

नत्थासिह के अखाडे के अतिरिक्त भिवानी के समस्त अखाडे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से 'नारनौल सम्बधित हैं परन्तु गुरु शिष्य परम्परा भिन्न न होते हुए भी लावणी कार विशेष के अपने विशिष्ट गुणो के आधार पर हमने अपनी खोज के अनुसार यह विभाजन किया है।

वास्तव मे नारनौल के अखाडे का प्रचार विशेष गुरु गगासिह जी से हुआ (जिनकी चर्चा हम 'नारनौल की चर्चा मे करते हैं) एतदर्थ शिष्य परम्परा की दृष्टि से श्री गगासिह जी का वश-वृक्ष जान लेना अतीव आवश्यक है। इन्ही के अनेक शिष्यो प्रशिष्यो के कारण भिवानी तथा भिवानी के निकटवर्ती क्षेत्र मे लावनी साहित्य का अत्यधिक सृजन एव विकास हुआ।

इनका वश वृक्ष इस प्रकार है।
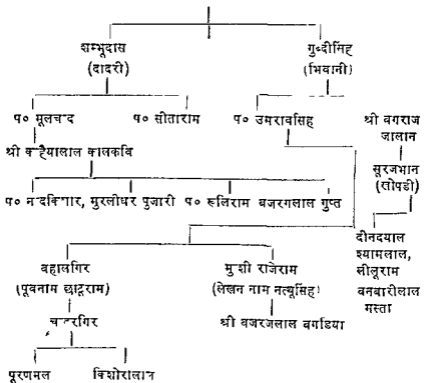
उपरान्त वश परिचयानुसार हम निस्सकोचपूर्वक कह सकते है कि भिवानी मे नारनौल वालो के अखाडे का सूत्रपात श्री गुन्दीसिह से हुआ।

श्री गुब्दीसिंह के प्रमुख शिष्या मे यद्यपि दानो ही अच्छे लावनीकार थे तथापि ख्याति की दृष्टि से प० उमरावसिंह जितने प्रसिद्ध हुए उतने श्री बेगराज नही, एतदर्थ हमने श्री गुब्दीसिंह से आरम्भ करके श्री बेगराज जालान आदि की शिष्य परम्परा को ही 'नारनौल वाला का अखाडा सना दी है। श्री गुब्दीसिंह के शिष्य प० उमरावसिंह तथा उसके शिष्य प्रशिष्या की श्रृखला को हमने 'प० उमरावसिंह का अखाडा, नाम से अभिहित किया है।

श्री गुब्दीसिंह—नारनौल के अखाडे के भिवानी मे प्रमुख लावनीकार श्री गुब्दीसिंह का जन्म भिवानी मे ही सम्वत् १८६० के लगभग हुआ। आपके जीवन के सम्बन्ध मे बहुत कुछ ज्ञात नही है परन्तु इतना निश्चित है कि आप एक अच्छे लावनीकार एव लावनीबाज दोनो थे। आपकी रचनाओ एव गायकी से प्रभावित होकर अनेक लावनी प्रेमी आपके शिष्य हो गए। नारनौल के ख्याति प्राप्त लावनीकार गुरु गगासिंह जी महाराज, आपके ही गुरु थे। आपके शिष्या मे भी श्री उमरावसिंह और श्री बेगराज आदि अच्छे प्रतिभावान लावनीकार हुए। आपकी रचनाओ का विशेष सग्रह तो इस समय उपलब्ध नही है किन्तु आपके द्वारा रचित अनेक लाव निया आपके शिष्या प्रशिष्या के पास आज भी सुरक्षित है।

आपका हिन्दी और उर्दू दोनो पर समान अधिकार था। कुछ लावनीबाजो के अनुसार श्री गुन्दीसिंह नारनौल से आकर भिवानी मे रहने लगे थे और कुछ के अनुसार इनका जन्म भिवानी मे ही हुआ था और ये भिवानी के ही थे। हमारे विचार से ये थे तो भिवानी के ही परन्तु इनके पिता या पितामह आदि नारनौल से आकर भिवानी मे रहने लगे थे।

आपकी 'रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

लावणी—'अमर कथा'

त्रिपुरारि ने सार सुनाई कथा हित करके पावती के लिए।
तहा अड पइयो सुनो सारी कथा कायम शुकदेव जती के लिये॥

टेक—तब सारी कथा को सुनाय चुके, लगे पूछने फेर सती के लिए।
तुझे कसी कथा मैं सुनाई अमर हुई आप तू प्राणपती के लिए॥
तन मे निंद्रा भर आई पिया यश कहू मन मूढमती के लिए।
तकदीर बिना कहो कस अमर हो जाती पती कुमती के लिए॥

मि०—तब तीसरो कौन विधी करके यहाँ आयो है तेज रती के लिए
तहाँ अड परयो सुनी ॥ १ ॥

उपरोक्त लावनी मे वर्णित 'अमर कथा' को अनेक लावनीकारो ने अपने-अपने ढग से अनेक प्रकार से लावनीबद्ध किया है। यहाँ श्री गुन्दीसिंह ने लावनीकारो की

विशेषता का परिचय देते हुए इस लावनी की प्रत्येक पंक्ति में प्रथम अक्षर में स्पष्ट [illegible] रखा है। ऐसे हम (ते) [illegible] सकते है।

श्री गुलाबसिंह के संक्षिप्त परिचय के पश्चात् इनके दो शिष्यों (उमरावसिंह और बेगराज) में से हम प्रथम श्री बेगराज विषयक चर्चा कर रहे हैं।

श्री बेगराज— आपका जन्म भिवानी के एक प्रतिष्ठित वैश्य (जालान) परिवार में सम्वत् १९२३ में हुआ। आप नाम से ही वै॰ साधु-स्वभाव के व्यक्ति थे। आप अधिक शिक्षित तो नहीं थे परन्तु साधारण हिन्दी में लावनी रचना का आपको अच्छा अभ्यास था। लावनी की दृष्टि से आपके गुरु श्री गुलाबसिंह थे। आपने अनेक लावनियों की रचना की। आपकी एक लघु पुस्तिका भी 'ख्याल गुलदस्ता' नाम से प्रकाशित हुई थी जिसमें श्रीकृष्ण की भक्ति सम्बन्धी ही ख्याल (लावनी) थे। आजकल यह पुस्तिका उपलब्ध नहीं है परन्तु इसमें प्रकाशित सभी लावनियाँ आपके शिष्यों तथा अन्य लावनी प्रेमियों के पास आज भी प्राप्त हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने भी वह पुस्तिका अनुमानतः २५ वर्ष पूर्व स्वयं देखी थी और उसकी समस्त लावनियों की प्रतिलिपि की थी जो अब भी सुरक्षित है।

श्री बेगराज ने केवल लावनियाँ ही नहीं अपितु अनेक भजन भी लिखे थे जो भक्ति भावना से ओत प्रोत होने के कारण आज भी अनेक वृद्ध प्रातः सायं गाकर अपना जन्म सफल मानते हैं। वास्तव में आप एक सच्चे भक्त एवं लोक-गायक थे। आपकी रचनाओं में भाषा की दृष्टि से लोक वाणी को ही अधिक स्थान प्राप्त हुआ। भिवानी के लावनीकारों में आपका नाम गौरव से लिया जाता है। आपकी भक्ति भावना तथा रचनाओं से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति आपके शिष्य बने जो विशेष ख्याति प्राप्त लावनीबाज हुए वे थे—श्री सूरजभान जी खोपड़े।

श्री बेगराज जालान जीवनपर्यन्त अविवाहित रहे और सम्वत् १९८४ में भिवानी में ही आपका निधन हो गया। आपकी एक रचना का कुछ अंश उद्धरण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

रंगत लंगड़ी—लावणी—माखन लीला

बड़े कृष्ण हो गये थे तब चोरी का करना जान गए।
अपने घर को छोड़ पर घर का माखन खान गए॥

टेक— लेके सखा सब साथ गए एक रोज कृष्ण ब्रज के अन्दर।
चुपके चुपके, घुसें जिसका देखें सूना मन्दर॥
चालाकी चतुराई के वो सीख गए हैं ऐसे हुनर।
माखन खावें, लुटावें और लिडावें श्याम सुन्दर॥

मेर—छींके पे रक्खा हो कहीं तो उसकी वो युक्ती करें।
पीढ़े पे पटडा वो रखें, पटड पे फिर ऊपल धरें॥
साथी को वो करके खडा ऊपर चढ़े और ना डरें।
छींके से झट तारें लुटावें ऐसा नित करते फिरें॥

झड—एक दिन सबने मिलकर मे मता ये किया॥
घर मे अपने मोहन को आने न्यिा।

मि०—हिले हिले जा बठे घर में घर वाले पहिचान गए
अपने घर का ॥ १ ॥

श्री सूरजभान खोपडी—श्री सूरजभान 'खोपडी अधिकतर खापडी' नाम स ही अधिक विख्यात थ और भिवानी की लावनीबाजा म अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। आप श्री वेगराज जालान के प्रमुख शिष्या म मे ये। आप भी अपने गुरू की भाँति जीवन-पर्य त अविवाहित ही रहे। आपका ज म भिवानी म ही सम्वत १६५० म एक साधारण ब्राह्मण परिवार म ज म लने के कारण आपकी शिक्षा दीक्षा का सुप्रब ध नहा हो सका। यही कारण है कि आपकी रचनाओ म विशेष आकर्षण नहा आ पाया। आप वास्तव म लावनीकार न होकर 'लावनीबाज' थे। केवल गायकी ज य अभ्यास के कारण आपने कुछ लावनिया की रचना की थी। हा, लावनी साहित्य म प्रयुक्त सनद' आदि के विषय मे आपकी अच्छी जानकारी थी।

अपने अक्खडपन एव खरहरपन क लिए आप अत्यधिक प्रसिद्ध थे, चाहे वृद्धावस्था म आप के स्वभाव मे विनम्रता आ गई थी। नगर से एक ओर डोमी नामक सर के तटस्थ एक मन्दिर म आप सदा अकेले रहते थे परन्तु समय-समय पर अनेक लावनीबाज आपके पास प्राय आते जाते रहते थे और इस प्रकार एकान्त स्थित होने पर भी मन्दिर म सदा अच्छी रौनक रहती थी। विशेष रूप से आपके मन्दिर म होन वाला बसन्त पचमी का दगल आजकल भी लागो के स्मृति पटल पर है। बसन्त पचमी' क दिन प्रतिवर्ष मध्याह्नोत्तर स रात्रि तक मन्दिर म अत्यधिक चहल पहल रहती थी। वह दिन वास्तव म 'जगल म मगल' का दिन होता था।

भिवानी क समस्त लावनीबाज एक एक करके स्वय एकत्र हो जाते थे और एक के पश्चात दूसरी आर दूसरी के पश्चात तीसरी लावणियो की झडी सी लग जाती थी। एक आर बसन्ती वस्त्र धारण किए हुए अनेक रगो से युक्त लावनीबाजो का जमघट और दूसरी ओर रग बिरगे गुलाल बिखरते हुए श्रोतागण। एक आर रग बिरगी लावणिया और दूसरी ओर रग बिरगी भग-बूटी की घुटाइ तथा सुल्फ और गाझे की चिलमे कल्पना मात्र से ही मानो आज भी लावनीबाजो को 'बसन्त' का निमन्त्रण दे रही हैं।

आपकी मत्यु के पश्चात वह 'वसन्त पचमी' का आयोजन तो मानो समाप्त ही हो गया। आप से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति आपके शिष्य हो गए। उनके शिष्यो मे श्री दीनदयाल अग्रवाल श्री श्यामलाल अग्रवाल प० लीलूराम शर्मा और श्री बनवारीलाल मस्ता अधिक ख्याति सिद्ध हुए है। श्री खोपडी द्वारा रचित कुछ साधारण छिट-पुट लावनिया उनके उपरोक्त शिष्यो के पास आज भी सुरक्षित है। अनुमानत ६४ वर्ष की अवस्था मे भिवानी मे ही सम्वत २०१४ मे आपका देहावसान होगया। लावनीबाजो की प्रथा के अनुसार आपकी मृत्यु पर आपके शिष्यो ने एक दगल का भी आयोजन किया। आपकी रचना का नमूना इस प्रकार है।

लावनी—अम्बिकाजी की

आदि भवानी मात अम्बिका तेरा ध्यान घट अन्दर हो।
कलकत्ते की काली मया ज्वालामुखी धौलागिरि हो।

टेक—कामरुप की मात कमख्या हिंगलाज पर्वत पर हो।
नन्दा देवी नामी जहा में और ऊचे पर मन्दर हो॥
अन्नपूरणा काशीजी की मेरी सहाय निशिवासर हो।
शक्ति गौरी रुद्राणी और पार्वती तेरा वर हो॥

मि०—मदरास की मदरा देवी हाथ में जिसके खप्पर हो।
कलकत्ते की

श्री दीनदयाल अग्रवाल नहाडिया—आपका जन्म भिवानी मे ही एक मध्यम वर्गीय वैश्य (अग्रवाल) परिवार मे नवम्बर १९१९ मे ला० मुशीराम नहाडिया के घर हुआ। शिक्षा की दृष्टि से अधिक शिक्षित न होने पर भी आप का हिन्दी का ज्ञान प्रशसनीय है। आपके लावनी गुरू थे—श्रीसूरजभान खोपडा। यद्यपि लावनी गायक की दृष्टि से आप मे गायन कला का सर्वथा अभाव है तथापि रचना की दृष्टि से आप एक अच्छे लावनी रचयिता है। लावनीबाजो मे लावनी सग्रह की जो रुचि होती है उसका आप मे सर्वथा अभाव तो नहीं है परन्तु लावनी-सग्रह मे आपकी विशेष रुचि भी नहीं है। सम्भवत इसका कारण आप की सृजन शक्ति तथा आप का अपनी लेखनी पर विश्वास रहा है। यही कारण है कि अपनी रचनाओ का सग्रह भी आपके पास सम्पूर्ण सुरक्षित नहीं है।

आरम्भ से ही अध्ययन का विशेष चाव होने के कारण आपने अनेक अच्छे अच्छे लावनीकारो की रचनाओ का अध्ययन किया है। केवल अध्ययन ही नहीं, अपितु तदनुरूप अपनी भी अनेक लावनियो की रचना की है। आप ने अब तक अनुमानत ३०० से कुछ अधिक लावनियो की रचना की है। ये लावनिया प्राय सभी विषयो पर लिखी गई हैं। विशेष रूप से आप को लडियाँ लिखने का अधिक

चाव रहा है। लडिया के अतिरिक्त कुछ दाग्वले भी आपने लिखे हैं। आपके पास एक एक प्रकार की २५ २५ ३० ३० लावनिया की अनक लडिया है, जा अधिकतर आपकी ही रचनाए हैं। भिवानी के लावनी रचयितापा मे आपका अग्रगण्य स्थान है। दूसरे अखाडा (या अपने अखाड की भी) की किसी भी सुदर लावनी का श्रवण करके प्राय आप तत्काल ही उसी प्रकार की लावनिया की लडी तयार करने का निश्चय कर लेत है और शीघ्र ही उसे काय रूप भी देत हैं।

आपकी अनेक लावनिया किसी भी अच्छे साहित्य की तुलना म सक्षम प्रमाणित हो सकती हैं। आपकी रचनाआ म लोक साहित्य की अपेक्षा उच्च साहित्य की गध अधिक है आपकी भाषा मे प्राजलता एव प्रवाह है। आपनी रचनाए प्राय लम्बी होती हैं एक पोडसी के अनक आकषक रूपो की अनेक उपमाआ से पूर्ण छवि उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

लावनी—पोडषी—रूप चित्रण

केशा का प्रदान स्वच्छदता कर, मन मोहनी एक कामनी चली।
अचल मे छिपाकर चद्रकला अभिसारिका शुभ आननी चली॥

टेक—अवलोक के कौन ? विमुग्धित हो, परिहास सा कर भामनी चली।
वन लता सी पुष्प के पथ पर जब मदिरालस गज गामनी चली॥
यौवन सम्पन्न रूपसी परम, सुदरियो की स्वामनी चली।
विद्युत् सी छटा दमकत मुख पर जनु विषधर की पा मनी चली॥

शेर—हास्य वदना सुदरी सुकुमारिका मनहर चली।
चचला जनु दारिदों का चीर कर बाहर चली॥
राज की कोई हसनी हा केलि करती फिर रही।
मधुर कलरव मन्द गति से, विहसती सातर चली॥

मि०—प्रेयसी रती-सम कनक लता, रमणीयता एकाकनी चली
अचल मे ॥ १ ॥

हमने पथम परिच्छेद म स्पष्ट किया है कि लावनी म मात्राओ की साधारण न्यूनाधिकता गायकी के ढग से अपने आप ठीक गा ली जाती है, उसी प्रकार यहाँ भी एकाध स्थान पर इस अपवाद को छोड कर, उपरोक्त लावनी म उपमाओ की भरमार सी लग गई है जो कवि की अतीव सूझ बूझ की परिचायक है। यहाँ यह एक लावनी का अश दिया गया है।

श्री श्यामलाल अग्रवाल—आपका जन्म भिवानी म ही एक मध्यम् वर्गीय परिवार मे आपाढ कृष्ण षष्ठी, सम्वत् १६८६ मे हुआ। आप श्री बजरगलाल गुप्त क अनुज हैं। लावनी की दृष्टि मे आप श्री सूरजभान 'गोपडी' के शिष्य हैं। आपका

जो चाव गायकी का है वह रचना का नही है। आप का कठ अतीव मधुर होने के कारण भी आपकी ख्याति अधिक है। लावनी सग्रह का आपको विशेष चाव नहीं है। कुछ गुरुतर तथा मनभावनी लावनियां आपको कठस्थ हैं जिन्हें आप समय समय पर दगलो में भी सुना कर वाहवाही लूटते रहे हैं। लड़ियाँ लड़ाने का आपको विशेष चाव है।

आप एक मिलनसार तथा कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति हैं। आजकल आप उडीसा में ट्रक सम्बन्धी व्यापार में सलग्न हैं।

प० लीलूराम शर्मा—आप भी श्री खोपडी के शिष्य हैं। आपका जन्म भिवानी में ही सम्वत १९७६ में एक साधारण ब्राह्मण परिवार में हुआ। लावनी की दृष्टि से आप भिवानी के ख्याति प्राप्त लावनी गायक हैं। आपकी शिक्षा विशेष न हो सकी और न ही आपको लावनी रचना का अभ्यास है। हा, लावनी सग्रह का आपको जो चाव है वह किसी भी लावनीबाज के अनुरूप है। अनेक प्रसिद्ध लावनीकारों की अनुमानत दो हजार लावनियां आपके पास आज भी सुरक्षित है, जिनमें अधिक सख्या लड़ियों की हैं। आपकी सनद सम्बन्धी जानकारी भी अच्छी है। आप स्थानीय कपडे की मिल में एक मकैनिक के रूप में कार्य करते हैं।

श्री बनवारीलाल मस्ता—आप भिवानी के प्रसिद्ध मस्ता ब्राह्मण परिवार से सम्बन्धित एक लावनी गायक और श्री खोपडी के शिष्य हैं। भिवानी के लावनी गायकों में आपका अच्छा मान है। आपका जन्म सवत १९८३ में हुआ। आप शुद्ध दूध का व्यापार करते हैं। आपके पास अधिक लावनियों का सग्रह तो नहीं है परन्तु आपकी स्मरणशक्ति अच्छी है।

भिवानी के अखाड़े—५

श्री उमरावसिंह का अखाडा

श्री गुदीसिंह की शिष्य परम्परा के प्रमुख लावनीकार प० उमरावसिंह का जन्म सम्वत १८८५ में कानौंड (महेन्द्रगढ) में और देहावसान सम्वत १९५५ में भिवानी में हुआ।

आप अपने समय के दक्ष लावनीकारों में एक थे। आपका हिन्दी का ज्ञान प्रशसनीय और उर्दू का ज्ञान साधारण था, यही कारण है कि हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में आपकी रचनाएं उपलब्ध हैं।

आप पडिताई करते थे तथा एक मिलनसार परन्तु स्वाभिमानी पुरुष थे। वैसे तो श्री गगासिंह के प्रशिष्य होने के नाते आप भी नारनौल के अखाडे के अन्तर्गत आते हैं। परन्तु आपके अपने गुणों एव प्रभाव के कारण हमने आपके नाम से

पृथक अखाड़ की मा यना स्वाकार की है। आपने प्राय समस्त विषयो पर लावनिया लिखी और उनका प्रचार किया। आपने लड़ियाँ तथा दाखले आदि भी लिखे। आपके विषय म प्रसिद्ध है कि एक अन्य ख्यातिप्राप्त लावनीकार श्री कवितागिर के भिवानी आगमन पर तथा उनके द्वारा अनक लावनीकारो को प्रतियोगिता के लिए ललकारने पर आपने न केवल श्री कवितागिर की ललकार को स्वीकार किया अपितु उनके परास्त होकर चले जाने पर भी आपने उनका तरो (भिवानी से अनुमानत तीस मील की दूरी पर स्थित एक उपनगर) तक पीछा किया और तब के पश्चात् श्री कवितागिर को भिवानी की ओर मुह करने तक का भी साहस न हुआ। यह थी आपकी लावनीबाजी की लावण्यता तथा कुशलता।

आपकी लावनाबाजी से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति आपके शिष्य बन गये और इस प्रकार लावनीबाजी का प्रचार दिन प्रतिदिन द्विगुणित होना गया। आज भी आपके प्रशिष्यो के पास आपकी अनेक लावनियाँ सुरक्षित हैं। वसे तो आपके अनेक शिष्य हुए परन्तु प्रमुख रूप मे उल्लेखनीय शिष्यो म हम 'श्री बहालगिर और 'मुशी राजराम को ही मानते हैं। पण्डित होने के नाते लोग आपको मिश्रजी भी कहते थे क्योकि आप अपना पूर्ण नाम 'उमरावसिंह मिश्र इस प्रकार लिखते थे। इसस पूर्व कि हम श्री बहालगिर और मुशी राजराम की सक्षिप्त चर्चा करें श्री उमरावसिंह की रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

श्री मिश्र जी इस निम्नलिखित लावनी अश म अपने दूत (कासिद) को अपनी प्रियतमा के पास सन्देश देने के निमित्त भेज रहे हैं परन्तु उन्हें डर है कि यह कासिद भी वहा न रह जाय यही कारण है कि वे अपने कासिद को बार-बार अनेक प्रकार स समझा रहे हैं और कह रहे हैं कि—हे कासिद! तुम हो तो अतीव बुद्धिमान् परन्तु वहाँ जाते ही कहीं हतबुद्धिक बन कर न रह जाना। मेरे यार का मका एक जादूखाना है, वह तुम्हें चाहे जसा बना देगा इसलिए अच्छी प्रकार से समझ लो यदि तुम्हारे हृदय म कहीं दुर्बलता हो तो यहीं बता देना कहीं ऐसा न हो कि वहाँ जाकर पछताना पड़े। आदि—

लावनी—कासिद

ज्याना के कूँचे में जाना सभल के ऐ दाना कासिद।
जाते हो मगर, शीघ्र ही फेरे लौट आना कासिद॥

टेक—कहीं जुल्फ पुरपेच सितमगर में मत फँस जाना कासिद।
बजाए खत के अपने दिल को मत दे आना कासिद॥
इतजार में इतजार मत अपना दिखलाना कासिद।
एवज वस्ल के इश्क का सौदा मत लाना कासिद॥

मुन्शी' के रूप म नगर-पालिका के अन्तगत सेवा काय करत थे। इसीलिए 'मुन्शी जो के नाम से अधिक विख्यात थे। आप उर्दू' पर्शियन' म ही अधिक लिखत थे। आपका हिन्दी का विशेष ज्ञान नही था। आपन अपनी रचनाओ म 'नत्थूसिह' क नाम से छाप लगाई है। परन्तु वास्तव म आपका नाम राजेराम था। हमन इसी परिच्छेद म श्री नत्थासिह के अखाडे' की चर्चा की ह, जो इन 'नत्थूसिह से सवथा भिन्न है। य हैं 'नत्थूसिह और वे थे नत्थासिह। इम अन्तर क अतिरिक्त अखाडे आदि का तथा स्थान आदि का अन्तर भी स्पष्ट है। उन नत्थासिह का नाम ही नत्थासिह था, जो महात्मा बनने पर अनन्तगिरि के नाम स प्रसिद्ध हुए और य वास्तव म तो मुन्शी राजेराम है परन्तु लावनी म 'छाप की दृष्टि से 'नत्थूसिह' हैं।

यद्यपि आपकी अनक रचनाए श्री किशोरीलाल केसर के पास सुरक्षित है परन्तु उन रचनाओ मे हिन्दी की बहुत कम रचनाए हैं। वसे तो आपकी हिन्दी की रचनाए हैं ही बहुत कम फिर भी जो हैं, वे आपक शिष्य श्री बजरगलाल बगडिया के पास थीं जो उनक सुपुत्र श्री सूरजभान बगडिया क सौजन्य स हम प्राप्त हो गई।

आपने सनक साधारण लावनियो क अतिरिक्त अनक विशेष एव मनन म पूण लावनिया तथा 'लडिया और दाक्ला की भी रचना की है। एक सनद पूण लावनी अग हम उदाहरणाथ प्रस्तुत कर रहे हैं। इस लावनी म मुख्य रूप से दो विशेषताए हैं। प्रथम तो यह कि यह लावनी अधर है, समस्त लावनी को पढ जान पर भी कही ओष्ठो का मिलन नही होता, और द्वितीय विशेषता यह है कि प्रत्येक पक्ति म न्यूनातिन्यून चार 'ल अवश्य आए हैं, जिन्ह हम लावनी की भाषा म 'लाम का घुवग कहते हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्यक पक्ति का प्रथम शब्द ल' स ही आरम्भ हुआ है।

लावनी—लगनहरी मे

लगन हरी से लगा अरे दिल, जहाँ की दल दल से यार टल के।
लचक लचक के न चल जियादह गिरेगा नातर खिसल खिसल के॥

टेक—लिया है जिसने वे राह इसका थका है लासक हाँ चाल चलके।
लिहाजा जजाल जाल है रह अलग रह इस कद से निकलके॥
लगा ठिकाना न या किसी का ले चेत करले न ला दहल के॥
लाली अगर चाहे रखना लबले, अलख निरजन क यार असके।
ललो ह जिस जिस ने लीला हक्दार हैंगे हाँ दरजये अटल पे ॥१॥

श्री बजरग लाल बगडिया—यह सर्वमान्य सत्य है कि सन्त कवियो की भाति लावनीबाज भी प्राय निम्न श्रेणीय या मध्यम वर्गीय परिवारो स सम्बन्धित रहे हैं। परन्तु किसी भी क्षेत्र म किसी न किसी दृष्टि से कोई न कोई अपवादस्वरूप भी

श्री बालूराम—आप आगरे के अखाडे के प्रतिनिधि लावनीकार श्री किशन लाल छकडा के अग्रज और प० दाताराम के सुपुत्र हैं। आपका जन्म सम्वत १९५६ मे भिवानी मे ही हुआ। लावनीबाजी की दृष्टि से आप प० अम्बाप्रसाद दादरी निवासी के शिष्य हैं। आपका रचना का तो अभ्यास नही है परन्तु लावनी गायन म आपकी अच्छी रुचि है। आपक पास प० अम्बाप्रसाद की तथा अन्य ख्याति प्राप्त लावनीकारो की कुछ रचनाओ का भी सग्रह है। आप भिवानो के वयोवृद्ध लावनी बाजा म से एक है।

श्री बद्रीसिह तँवर—हरियाणा के वयोवृद्ध लोक गायक श्री बद्रीसिह भिवानी (हरियाणा) क लाक गायका के प्राण हैं। आपकी आशु लाक गायकी क कारण आप 'आशु कवि क नाम स भी विख्यात हैं। जहाँ आपन असख्य लोक गीत, भजन और गान आदि लिखे हैं, वहाँ आपन अनक साहित्यिक कविताओ की भी रचना की है। पद्य की अनक विधाओ के सृजनकर्ता श्री तँवर न न क्वल कुछ मन भाती लावणिया की रचना ही की है अपितु वे लावणी-परम्परा क अनुसार श्री भगवानदास (लावणीकार) के शिष्य भी हैं।

जहाँ आप म सृजन शक्ति की प्रचुरता है वहा आप एक मीठे गायक भी है। राजपूत वश म जन्म श्री बद्रीसिह तँवर की रचनाएँ क्वल भिवानी और हरियाणा म ही नहीं अपितु अन्यत्र भा अतीव चाव से सुनी जाती हैं। इस समय आपको अवस्था लगभग ७० ७५ वष की है। आप एक भक्त लोक गायक हैं।

श्री ताराचन्द अग्रवाल—आपका जन्म द्वितीय भादो कृष्ण ६, स० १९९१ म भिवानी म ही हुआ। आप श्री बजरलाल गुप्त और श्री श्यामलाल अग्रवाल के अनुज हैं। लावनीबाजो की दृष्टि से आप न तो किसी लावनीबाज के शिष्य हैं और न दगली-गायक ही हैं। आपका रचना का भी अभ्यास नही है परन्तु घरेलू वातावरण लावनो के अनुकूल होने के कारण आप को लावनीबाजी से विशेष लगाव है। कुछ मन भावन लावनियो के कुछ अश आप का स्मरण भी हैं जिन्हे आप समय समय पर अपनी मित्र मडली म या अपन अग्रजो के समक्ष भी गुनगुननाते रहते है। दगला मे लडो' और प्रतियोगात्मक दाखले सुनन का आपको विशेष चाव है। आज क्ल आप उडीसा म ट्रक सम्बन्धी काय म व्यस्त हैं।

श्री तुलसीराम शर्मा दिनेश—आचाय प्रवर प० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे आप पुरुषोतम काव्य के रचयिता एवं साहित्यिक कवि थे। हमारी दृष्टि मे भी आप एक उच्च कोटि के कवि, नाटककार और गद्य लेखक थे परन्तु उन दिनो लावनीबाजी का विशेष प्रचार एव प्रसार होने के कारण आप भी लावनीबाजी क प्रभाव से वचित न रह सके।

यद्यपि आपके कोई लावनी गुरू नहीं थे और न ही किसी दगल मे आपने कभी कोई लावनी सुनाई तथापि यह निश्चित सत्य है कि आपने कुछ लावनियाँ लिखी

अवश्य थी। आपका जन्म भिवानी के निकटस्थ कम्ह नामक ग्राम म ज्येष्ठ शुक्ल १० सम्वत १९५३ म एक मन्मम् वर्गीय परिवार म प० लालचन्द अत्री गोत्रीय के यहा हुआ।

शैशवकाल म ही प्रतिभावान होने एव साहित्य मे रुचि होने के कारण आप उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होते गए। कुछ समय तक भिवानी मे अध्यापन काय करने के पश्चात प्रसिद्ध व्यापारी एव साहित्य-स्नेही श्री किसनलाल जालान के आश्रय स आप बम्बई चले गए और वही अध्ययन और लखन निरन्तर चलता रहा।

आपन पुरुषोत्तम काव्य के अतिरिक्त गद्य पद्य क अनेक ग्रन्थ लिखे है। समय-समय पर आपकी अनक रचनाए समसामयिक पत्रो म प्रकाशित होती रहती थी। आपका अधिक समय भिवानी और बम्बई म ही व्यतीत हुआ। पजाव विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित दोहामानसरावर मे भ्रान्ति-वश श्री दिनेश को बम्बई निवासी छापा गया है जब कि तथ्य यह है कि बम्बई म भी आप रहे तो हैं परन्तु आपका जन्म स्थान तो भिवानी (करु) ही रहा है।

श्री दिनेशजी के परम प्रिय शिष्य श्री खेतमीदास तुलस्यान ने 'गुरू गरिमा' नामक एक पद्य पुस्तक की रचना करके श्री दिनेश जी के आदि से अन्त तक के समस्त जीवन-क्रम को भली प्रकार नियोजित किया है।

'यक्ष्मा के कारण कार्तिक पूर्णिमा (गगास्नान) के दिन सम्वत १९९८ मे आप का देहान्त हो गया। आपन अपने लघु जीवन म ही हिन्दी की अत्यधिक सवा की। उद्धव सम्वाद नामक आपकी एक प्रसिद्ध लावनी का चतुर्थांश यहा उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

लावनी—गोपी उद्धव सम्वाद

ऊधो, योग लिया हमने तब से, जब से हरि ने है पयान किया।
तन ताप लिया विरहानल में, हग झरनन का जल पान किया॥
टेक—इन गाव गली घर वारन को, वन निरजन ही अनुमान किया।
सुरता म लगी सुर तानन में कटु तानो प हमने न कान किया॥
अपमान सहा उतना हमने जितना हरि से था गुमान किया।
हरि-ओट हुए जब से, तबसे, हमने जग से पर्दा न किया॥
मि०—हग मूँद लिए जग से हमने, दिन रात कन्हाई का ध्यान किया॥
तन ताप लिया ॥१॥

श्री लक्ष्मीनारायण 'कृपाण'—आपका पूण नाम तो श्री लक्ष्मीनारायण 'कृपाण' है परन्तु विशेष रूप से कवि केहरि कृपाण के नाम मे आप अधिक

विख्यात हैं। आपका जन्म भिवानी के एक मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार में पं० मोहनलाल के घर सम्वत् १९५३ में हुआ। आपने भी श्री दिनेश की भांति साहित्यिक कविताओं का ही अधिक प्रणयन किया है परन्तु लावनी के प्रभाव से वंचित न रह सकने के कारण आपने लावनियों की भी रचना की है। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से आपने शिशुपाल वध 'नेताजी सुभाष' और 'कमलापति नेहरू' आदि काव्य-ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक कविता-पुस्तकें लिखी हैं तथापि लावनी साहित्य की दृष्टि से आपकी कुछ फुटकर रचनाओं के अतिरिक्त कोई पुस्तक प्राप्त नहीं है। आजकल आप सीतापुर (यू० पी०) में रह रहे हैं। यद्यपि वृद्धावस्था के कारण आजकल आप रुग्ण रहते हैं तथापि अपने जन्म-स्थान भिवानी को आप कभी नहीं भूलते। प्राय: प्रतिवर्ष भिवानी पधार कर नई पीढ़ी के 'सुकवि संघ' को आप हिन्दी सेवा की प्रेरणा देते रहते हैं। आप राष्ट्रीय विचारों के एक वयोवृद्ध कवि हैं।

श्री सतसीदास तुलस्यान—आपका जन्म भिवानी में ही एक वैश्य परिवार में श्री महावीरप्रसाद जी तुलस्यान के घर अनन्त चतुर्दशी सम्वत् १९६७ में हुआ।

लावनी की दृष्टि से आप न तो लावनीकार हैं और न लावनीगायक ही परन्तु आप लावनी प्रेमी अवश्य हैं। कविता के क्षेत्र में आप उपरान्त श्री दिनेश जी के शिष्य हैं। श्री जगन्नाथ किसनदास जालान बम्बई के यहां आप मुनीमी करते हैं। व्यापारिक क्षेत्र में रहकर भी साहित्य में इतनी रुचि रखना आपके उत्साह का द्योतक है। गुरु-गाथा नाम से आपकी एक कविता-पुस्तक भी प्रकाशित हुई है।

तीसरा अध्याय | दादरी और इस क्षेत्र के लावनीकार

दादरी भिवानी के निकटस्थ ही एक उपनगर है। यद्यपि जन संख्या की दृष्टि से यह उपनगर किसी भी साधारण उपनगर से अधिक विशाल नहीं कहा जा सकता परन्तु लावनी की दृष्टि से इस लघु स्थान का अत्यधिक महत्व है। हरयाणा के ख्यातिप्राप्त कवि लावनीकार प० शम्भूदास और प० अम्बाप्रसाद के जन्म-स्थान का किसी को गौरव प्राप्त है तो वह यही नगरी है। यहीं पर अखाड़ा-दशनामी के मन्दिर में दो वर्ष पूर्व प० शम्भुदास की मूर्ति स्थापना हुई थी जिसे इन पंक्तियों के लेखक ने भी स्वयं देखा है।

यह नगरी महेन्द्रगढ़ जनपद के अन्तर्गत भिवानी रिवाड़ी रेलवे लाइन पर बसी हुई है। आजकल रेल से भी अनेक स्थानों के साथ यह नगरी सम्पर्क-सूत्र में आबद्ध हो गई है। वास्तव में यहां पर लावनी का आगमन नारनौल तथा महेन्द्रगढ़ आदि स्थानों से हुआ। परन्तु लावनी के आगमन के साथ ही यहां के स्थानीय निवासियों ने लावनी का इस प्रकार स्नेहालिंगन किया कि 'लावनीबाजी' के कारण इस स्थान का नाम भारत के अनेक सुदूरवर्ती स्थानों में भी प्रसिद्ध हो गया। इस स्थान से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट लावनीकारों। लावनीबाजों के नाम इस प्रकार हैं जिनकी यहाँ निम्नलिखित क्रमानुसार संक्षिप्त रूप से चर्चा की जा रही है।

प० शम्भुदास, प० गणेशीलाल, प० मूलचन्द प० सीताराम, प० मनोहरलाल प० अम्बाप्रसाद और श्री रिद्धकरण सोना।

प० शम्भुदास जी—आपका जन्म प० रामरिख जी के घर सम्वत् १६०७ में दादरी में हुआ। शैशव काल में ही आप में साहित्यिक रुचि के प्रादुर्भाव के कारण आप आगे चलकर अपने समय के मूर्धन्य लावनीकारों और भजनीकों में अग्रगण्य हुए।

आरम्भ से ही आपकी रुचि भक्ति भावना में विशेष होने के कारण आप गौओं की सेवा करते, उनका दूध पीते और सायंकाल उन्हीं के साथ घर में लौट आते। आपके विषय में प्रचलित है कि एक बार वन में किसी महात्मा ने आकर आपसे पीने के लिए जल माँगा परन्तु आपने उन्हें नवीन प्रेमपूर्वक दुग्ध-पान कराया, इस पर महात्मा जी बड़े प्रसन्न हुए और आपको एक अच्छा कवि होने का वरदान

दिया। कहते हैं कि तत्पश्चात् आप छोटी मोटी तुकबन्दियां करके गांव वालों को सुनाने लगे और शनैः शनैः दिन प्रतिदिन उन्नति पथारूढ़ होते गए।

श्री बनारसीदास (दादरी) ने हमें बताया कि जब श्री शम्भुदास जी केवल नौ वर्ष के थे तब वे एक बार जंगल में चना नामक एक कृषक के खेत के निकट जाकर इस प्रकार कहने लगे।

> डूंडा बल चन्ना हाली।
> बोले रे पूत उगे ना डाली॥

अर्थात् अरे चना नामक कृषक तेरे बैल का एक सींग नहीं है, वह डूंडा है, तू चाहे कुछ भी बोल तेरे खेत में एक पौधा भी नहीं लगेगा कहते हैं कि उस वर्ष अन्य सब के खेतों में बहुत अच्छी उत्पत्ति हुई परन्तु चन्ना के खेत में कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ।

अपनी शैशवावस्था के पश्चात् आप अधिकतर अखाड़े में जो आजकल हनुमान बगीची तथा अखाड़ा दशनामी के नाम से प्रसिद्ध है रहते थे। इसी हनुमान बगीची में एक मन्दिर है और इसी मन्दिर के निकट बगीची में ही प० शम्भुदास की मूर्ति-स्थापना की गई है जो वास्तव में दर्शनीय ही बनती है।

कहते हैं कि एक बार व्यक्ति ने आकर आप से शिष्यत्व प्रदान करने की याचना की इस पर आपने जब यह पूछा कि तुम में क्या गुण हैं जो मैं तुम्हें अपना शिष्य बनाऊं, तब उस व्यक्ति ने उत्तर में कहा कि आपके मुखारविन्द से जो भी कविता उच्चरित होगी मैं उसे तत्काल लिख सकता हूं। ऐसा श्रवण करके आपने एक ऐसा भजन सुनाया जिसमें भाषा अधिक न होकर संकेत अधिक थे और वह व्यक्ति उस भजन को लिखने में असमर्थ होकर पण्डित जी के चरणों में गिर पड़ा।

लावनी की दृष्टि से आपके लावनी गुरु श्री गंगासिंह जी महाराज थे। कविता का अच्छा अभ्यास होने के कारण आपकी लावनियों की दूर दूर तक चर्चा होती थी। आपने अनेक पुष्कल लावनियां लिखीं, जिनमें से अधिकांश आपकी शिष्य परम्परा के अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियों के पास तथा कुछ अन्य व्यक्तियों के पास भी, सुरक्षित हैं। यद्यपि आपकी लावनी-पुस्तक तो कोई प्रकाशित नहीं मिलती तथापि अन्य छन्दों में लिखित आपकी कुछ कृतियां प्रकाशित भी प्राप्त हैं। रीति शैली पर लिखित आपकी ये तीन पुस्तकें विशेष प्रसिद्ध हैं—'श्री कृष्ण लीला, जोगन लीला और रुक्मणी मंगल'—इनके अतिरिक्त भी एक दो रचनाएं आपकी भजनों के संग्रह के रूप में प्रकाशित हुई थीं परन्तु अब वे प्राप्य नहीं हैं। हां हस्तलिखित रूप में आपके अनेक भजन अवश्य उपलब्ध हैं। इन उपरोक्त रचनाओं में यद्यपि अन्य छन्दों का ही अधिक प्रयोग है तथापि अनेक स्थानों पर लावनियां भी हैं।

'रुक्मणी मगल' के पृष्ठ ७३ पर प० शम्भुदास जी ने स्वय इस प्रकार लिखा है जो अन्तर्साक्ष्य के आधार पर प्रमाण के रूप म कुछ तथ्यो की पुष्टि करता है।

राग मारू

श्री रणवीर सिंह रगभीना जीवो जींद नरेश।
जिन यह सुन्यों प्रेम से मगल काटन कोट कलेशा ॥
गान-तान रस काव्य न जानू यदि 'कवि राज' कहाऊ।
केवल कृपा कृष्ण भरोसे नप को नित रिझाऊँ ॥
नप से नील सुभाव न देखे बुधवन्त महाराजा।
टूटी-फूटी कथन मेरी सुन मान रखें सिर ताजा ॥
शुभ सम्मत ऊनीस सौ उनसठ कारतिक मास परवीना।
सुक्त पक्ष गुरुवार त्रोदशी ग्रन्थ सम्पूरन कीना ॥
जिला जींद गढ़ शहर दादरी गौड विप्र घर जाया।
बीच सदर मगल कृष्ण का शम्भुदास गुन गाया ॥
नित प्रति मूल चरन का चेरा, हरि गुन में रहे राचा।
प्रेम प्रात से जिन यह मगल शहर दादरी बांचा ॥[1]

उपरोक्त प्रसग से इस प्रकार विदित होता है।

(१) उस समय जीद (रियासत) क नरेश श्री रणवीर सिंह जी थ जो साहित्य में रुचि रखते थे और जिन्होंने इस 'मगल' का प्रेमपूर्वक श्रवण किया था।

(२) कवि को उस समय 'कविराज' क पद स विभूषित किया गया था और वे कृष्ण के भक्त थे तथा 'नृप' को प्रतिदिन अपनी कविताए सुनाते थे।

(३) नपति विद्वान थे और कवि का अतीव सम्मान करते थे।

(४) यह ग्रन्थ कवि ने कार्तिक शुक्ल त्रयोदसी गुरुवार, सम्वत् उन्नीस-सौ उनसठ, के दिन रच कर समाप्त किया।

(५) 'दादरी' नगर उन दिनो जींद राज्य के अन्तगत था। कवि का जन्म इसी स्थान (दादरी) पर गौड ब्राह्मण परिवार म हुआ।

(६) मूल नामक उनक चरणा क दास (शिष्य) ने यह ग्रन्थ 'दादरी' म प्रेम-पूर्वक गा कर सुनाया।

लावनी साहित्य म आपने अनेक साधारण, लडीवन्द और सनद युक्त लावनियो की वृद्धि की। आज भी आप की शिष्य-परम्परा के लावनीबाज दगला मे आपकी रचनाए गा गा कर वाह वाही लूटते हैं। एक रचनाश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है।

---

१ 'रुक्मणी मगल' पृष्ठ ७३, दूसरा सस्करण सन १९६२।

लावनी—एक तरफ

लगी नागिन फन पटकन अपना, लटकत जो लखी लट एक तरफ।
पर घूंघट नेक पलटते ही रथ-चन्द्र गयो डट एक तरफ।

टेक—मृग लोचनी मोचनी कष्ट विरह उपजावनि भामिनी रूपवती॥
जाके रूप को देखके गूर भूप, कहैं रूप रह्यो न रती में रती॥
चपलासी चमकत चौक चलत छवि जात हरी कमला की मती।
गति निरखत हँस को भ्रम गयो, निज भूल गयो गजराज गती॥

मि०—आपके पग में पायल और झांझन, बिछुवा में अनवट एक तरफ
पर घूंघट ॥ १॥

हरयाणा प्रदेश का लोक साहित्य नामक शोध ग्रन्थ के लेखक डा० शंकरलाल यादव ने उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ १०३ १०४, १०८ पर उ० हरियानी और समीपवर्ती बोलियों के नमूने शीर्षक के अन्तर्गत उक्त शम्भुदास को हरयाणा का प्रधान विद्वान बताते हुए उनके एक अनेक भाषाओं के भजन का तो उदाहरण प्रस्तुत किया है परन्तु उनके लावनीकार के रूप का चर्चा नहीं की है यद्यपि यह सब विदित है कि प० शम्भुदास जी जहाँ एक भक्त कवि थे वहाँ एक ख्यातिप्राप्त लावनीकार भी थे। उनके द्वारा रचित लावनियाँ हरयाणा प्रदेश में ही नहीं अपितु अन्यत्र भी विशेष आदर एवं चाव के साथ गाई जाती है। आप महाराज जींद के राजकवि थे। अन्त में आश्विन कृष्ण षष्ठी सम्वत् १९६५ में आपका निधन हो गया।

प० गणेशीलाल—आप श्री शम्भुदास के अनुज और अच्छे लावनी गायक थे। आपको लड़ियाँ लड़ाने का बहुत चाव था यही कारण था कि आगरा आदि स्थानों पर जाकर भी आप अनेक बार लावनीबाजी किया करते थे। कहते है एक बार आप आगरे में लावनीबाजी करते करते परास्त होने लगे तो सोच ही रहे थे कि अब भाई शम्भुदास आ जाए तो सफलता प्राप्त हो जाए इतनी ही देर में क्या देखते हैं कि शम्भुदास जी चले आ रहे हैं क्योंकि आपको घर गये एक सप्ताह से अधिक हो चुका था। बस अब क्या था? देखते ही देखते दंगल जम गया और आप को आशानुरूप सफलता प्राप्त हुई। सफलता प्राप्त कर आप दोनों भाई पुनः दादरी लौट आए। इसी प्रकार की अनेक घटनाएँ आप के जीवन में घटीं। रचना का आपको अधिक अभ्यास नहीं था। आप गायक अच्छे थे।

प० मूलचन्द—आपका जन्म दादरी में ही प० नन्दकिशोरजी के यहां सम्वत् १९४७ में हुआ। आप प० शम्भुदास के गायक शिष्यों में से एक थे। विशेष रूप से अपने गुरू द्वारा रचित रुक्मणी मंगल को आप बड़े चाव से गाते थे। आपको रचना का अभ्यास बहुत नहीं था परन्तु अपनी गायकी के कारण ही आपने अपने

अनेक शिष्य बनाए। भिवानी के प्रसिद्ध 'कालकवि'—श्री कन्हैयालाल आपके ही शिष्य थे। दादरी में ही फाल्गुन शुक्ल पंचमी सम्वत १९८४ में आपका निधन हो गया।

पं० सीताराम—आपका जन्म दादरी में एक मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार में पं० अमीचन्द के घर सं० १९४८ में हुआ। आप पं० शम्भुराम जी के शिष्य हैं। आप वृद्ध हो गये हैं परन्तु लावनी प्रेम आप में ज्यों का त्यों विद्यमान है। आप अधिक शिक्षित नहीं हैं। स्कूल में आप केवल आठवीं कक्षा ही उत्तीर्ण कर पाए। साधारणतया हिन्दी का ज्ञान आपका अच्छा है। आप एक पुराने विचारों के व्यक्ति हैं। आपके पास अनुमानतः एक हजार लावनियों का संग्रह सुरक्षित है, जो प्रायः पं० शम्भुराम की ही रचनाओं का संग्रह कहा जा सकता है यद्यपि इनमें कुछ अन्य लावनीकारों की रचनाएँ भी हैं। आप साधारण रचनाएँ भी कर लेते हैं।

पं० मनोहरलाल शर्मा—आप पं० सीताराम के सुपुत्र और पं० मूलचन्द के शिष्य हैं। आपका जन्म दादरी में ही दि० १०-१० १९१० को हुआ आपकी लावनी रुचि प्रशंसनीय है। आप अधिक समय तक अध्यापक रहे हैं। आजकल घर पर ही रहते हैं। आपने एक लघु पुस्तिका 'झाँसी की रानी' रचकर सन् १९५३ में प्रकाशित कराई थी। यह एक साधारण पुस्तिका है। इसमें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता के सम्बन्ध में एक ही लम्बी लावनी रची गई है। आप एक मिलनसार व्यक्ति हैं।

पं० अम्बा प्रसाद—दादरी के प्रमुख लावनीकारों में पं० शम्भुदयाल के पश्चात आपका ही नाम उल्लेख्य है। आपका जन्म पं० रामजीवन लाल शर्मा के यहाँ दादरी में मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी वि० सम्वत १९१७ में हुआ। आप शैशव काल से ही एक उच्च एवं धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। लावनी में भी आपकी आरम्भ से ही रुचि थी। आप में कवित्वगुण तो था परन्तु आप गायक नहीं थे। आपने अपने जीवनकाल में असंख्य लावनियों की रचना की जो अब भी आपके शिष्यों प्रशिष्यों तथा आपके सुपुत्रों के पास सुरक्षित हैं। आपके लावनी-गुरु पं० रवीदत्त थे जो स्वयं एक अच्छे लावनीकार थे।

आपने अपना आरम्भिक गार्हस्थ्य जीवन अध्यापन कार्य से आरम्भ किया था। आप एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे यही कारण था कि किसी साधारण-सी बात पर ही मुख्याध्यापक से मतभेद होना भी आपको असह्य हो उठा और आपने तत्काल त्यागपत्र दे दिया। आपके त्यागपत्र की विशेषता यह थी कि सरकारी नौकरी में होते हुए भी यह त्यागपत्र लावनी में ही लिखा गया था जो मुख्याध्यापक के लिए एक कटाक्ष भी था—यथा—

बखील को दौलत, अल्लाह, मूरख को चतुर इस्तरी[1] न दे।
गंजे को नाखून और, पाजी को बडी अफसरी न दे ॥

यहाँ स्पष्ट रूप से 'पाजी को अफसरी न दे' कह कर मुख्याध्यापक को पाजी कह दिया गया है, जो उस समय की दृष्टि से अतीव साहस की बात थी।

आपने केवल लावनी ही नही, अपितु अनुमानत तीन-सौ भजनो की भी रचना की थी। 'चित्त प्रबोध' भक्ति विनोद 'सुदामा चरित्र' 'जोगन-लीला और 'मत हरि आदि रचनाए आपकी प्रकाशित भी हुई थी। प्राय लावनीबाजो म मादक वस्तुओ का सेवन विशेष रूप से प्रचलित होता है परन्तु आप इस दृष्टि से अपवाद थे। आपके जीवन म लावनी सम्बन्धी अनेक घटनाए घटित हुई। कितनी ही बार आपने अपनी आशु रचनाओ द्वारा दगलो म प्रतिवादियो को भी प्रभावित किया।

प० शम्भुदास और प० अम्बाप्रसाद दोनो ही समकालीन थे दोनो ही नारनौल के अखाडे से सम्बन्धित थे दोनो की रचनाओ मे एक-दूसरे के गुरुओ के नाम उपलब्ध हैं दोनो ही दादरी म भी निकटवर्ती निवास स्थानो म रहते थे परन्तु यह सवविदित है कि ये दोनो ही एक दूसरे के प्रेरक थे एक-दूसरे का सम्मान भी करते थे।

आपने अनेक अवसरो पर अपना लावनी कौशल दिखाया और परिणामस्वरूप अनेक व्यक्ति प्रभावित होकर आपके शिष्य बन गए। श्री खेतसीदास तुलस्यान ने आप के लावनीकार जीवन पर एक कविता लिख कर 'निर्भय नामक हिन्दी साप्ताहिक म सन् १९६७ म प्रकाशित कराइ था जिसके अनुसार आपने भिवानी मे हुए एक लावनी-दंगल म अपनी आशु रचनाओ के द्वारा अपने प्रतिवादियो को परास्त किया था। अन्त म ८४ वर्ष की अवस्था म आपकी जन्म तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी के दिन ही सम्वत २००१ म आपका देहान्त हो गया।

साहित्यिक दृष्टि स महात्मा सूरदास और तुलसीदास को आप अपना प्रेरक मानते थे। आपकी सात बोलियो की एक लावनी के (दो बोलियो के) दो चौक दिये जा रहे हैं—

लावनी—सात बोलियो की

देन उलहना चली नन्द घर, सात सखी एक बार।
अपनी २ जबान में करती हैं अपना इजहार ॥ टेक ॥
कहतु महरिया पूरब की अरी सुनो नन्दरानी।
हमरी तुमरी बिगर जायगी कहा जिये में ठानी ॥

---

१ स्त्री पत्नी।

बिटवा जायो हैं का'हा, हा, ऐसी इतरानी।
तोर लरकवा हमका नहिं भरने देवे पानी॥

मि०—एक एक मुख सो दारी को देत हजारन गार
अपनी अपनी ॥ २ ॥

प्वाडे काके नूं माई सब वृज दी जड पटटी।
की गल्ल इसदी दस्सां लूट लई जिसनूं सब जटटी॥
दा दे दा मुहावणा का'हा हैं हाजा हट्टी।
इकता करदा जोरी उल्तो देंदा सिर चटटी॥

मि०—मल्लो मल्ली होवा वो तो साडे गल दा हार
अपनी अपनी ॥ ३ ॥

श्री रिद्धकरण सोनी—आप दादरी म ही स्वणकार है और श्री अम्बाप्रसाद जी के शिष्य हैं। आपका ज'म माघ शुक्ल पचमी सम्वत् १९६९ म दादरी मे हुआ आपको रचना का तो अभ्यास नही है पर'तु गायकी का आपको अच्छा चाव है। आपने शिकोहाबाद कानपुर, रायपुर और विलासपुर आदि स्थानो पर अच्छे अच्छे दगल देखे हैं। अब भी आपकी दुकान पर रक्खा हुआ 'चग' आपकी लावनी प्रियता का द्योतक है। आपको लावनी-सग्रह का वि'ोष चाव नही है। इन पत्तियो के लेखक ने भी आपसे कुछ लावनियाँ सुनी है।

—०—

दादरी और भिवानी आदि स्थानो पर लावनी प्रचार का विशेष श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो वह श्री गगासिह जी महाराज को ही दिया जा सकता है। आप एक अच्छे लावनी रचियता और गायक थे। लावनीवाजो की दृष्टि म नारनौल' और गुरू गगासिह एक ही नाम हैं। क्योकि नारनौल की ख्याति लावनी वाजी पर भी वहुत कुछ निभर रही है।

अन्त म नारनौल म ही सम्वत् १९२८ म आपका देहान्त हो गया। 'लावनी' स पूर्व आप भी भजन ही अधिक गाते थे।

प० देवीदत्त—प० देवीदत गुरू गगासिह के समकालीन और प० जमनासिह के शिष्य प० अम्बाप्रसाद दादरीवाला के गुरू थे। आप भी एक अच्छे लावनीकार तथा लावनीबाज थे। परतु जो ख्याति गुरू गगासिह की हुई, वह आपकी नही हो सकी। अनेक लावनिया मे आपके नाम की छाप प्राप्य है। आप हिन्दी के अच्छे विद्वान थे। आपकी रचनाए भी फुटकल रूप मे ही आपके शिष्यो प्रशिष्यो के पास हैं।

— ——

पाँचवां अध्याय | अम्बाला और इस क्षेत्र के लावनीकार

'अम्बाला' हरियाणा का एक ख्याति प्राप्त एवं विशाल नगर है। हरयाणा की राजधानी 'चंडीगढ' के निकटस्थ होने के कारण इस स्थान का अपना विशेष महत्व है। लावनी की दृष्टि से यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि हरयाणा प्रदेश में आधुनिक लावनी का प्रादुर्भाव किस स्थान पर हुआ तथापि हमारी खोज के अनुसार अम्बाला हरयाणा का वह प्रथम स्थान है, जहाँ पर आधुनिक लावनी का उद्भव तथा विकास हुआ और शनैः शनैः यहीं से नारनौल महेन्द्रगढ, दादरी और भिवानी आदि स्थानों पर लावनी का प्रचार एवं प्रसार हुआ।

अम्बाला के लावनीबाजो का वंश-वृक्ष इस प्रकार हो सकता है —

श्री मदारी
|
सन्त भर्ल्सिहजी महाराज
|
मुखलाल
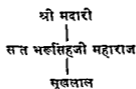
श्री मदारी—आपका जन्म अनुमानतः सम्वत् १७७५ में अम्बाला में ही हुआ। आपके विषय में अभी बहुत विवरण प्राप्त नहीं है परन्तु यह निश्चित है कि अम्बाला के प्रसिद्ध सन्त लावनीकार 'श्री मैर्ल्सिह जी' के लावनी गुरु 'श्री मदारी' आप ही हैं। मर्ल्सिह और उनके शिष्यों की लावनियों में 'मदारी' नाम की छाप भी उपलब्ध है। आप अपने समय के एक अच्छे गायक थे और घूम घूम कर लावनियाँ गाते थे आपकी गायकी से प्रभावित होकर आपके अनेक शिष्य बने, जिनमें सन्त मैर्ल्सिह अत्यधिक प्रसिद्ध हुए जिनकी चर्चा हम अभी आगे कर रहे हैं। आपका देहान्त अम्बाला में ही नब्बे वर्ष की अवस्था में सम्वत १८६५ में हुआ। ऐसी अनेक फुटकल लावनियाँ प्राप्त हैं जिनमे आपके नाम की छाप है। परन्तु निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि वे सब रचनाएँ आपकी ही हैं या आपके शिष्यों की हैं। आपकी रचनाएँ प्रायः भक्ति प्रधान होती थी। आपकी रचनाओं पर उर्दू का प्रभाव अधिक था।

'गुलजार मखुन तुर्रा' के तीसरे भाग के द्वितीय संस्करण के पृष्ठ ३१० और ख्याल (लावनी) क्रमांक २१ के अन्त में आपने अपने गुरु मर्दसिंह के विषय में इस प्रकार स्वीकारोक्ति दी है।

उस्ताद मेरा मर्दसिंह परम पियारा।
उसने दिखला के मुझे जगत से तारा॥
इस मन को यों सुखलाल लाल ने मारा।
उल्फत से अलिफ का दु अंग फिर ललकारा॥—आदि

छठा अध्याय ‖ आगरा और इस क्षेत्र के लावनीकार

उत्तर प्रदेश का ख्याति प्राप्त नगर 'आगरा' जहां ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है, वहाँ साहित्यिक दृष्टि से भी अपना महत्व रखता है और जहां साहित्यिक दृष्टि से इस स्थान का विशेष महत्व है वहां लावनी साहित्य की दृष्टि से भी यह स्थान विशेष माना जाता है। ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से क्रमशः शाहजहां जैसे बादशाह और रीतिकालीन कवि बिहारीलाल जैसे उच्च कोटि के कवियों का पुण्यपावन क्रीडास्थली 'आगरा' को ही 'लावनी साहित्य' के मूर्धन्य कलाकार प० ... और प० रूपकिशोर (प० रूपराम) जैसे लावनीकारों ने अपनी लीला स्थली चुना।

हम आगरा को आधुनिक लावनी साहित्य का उद्गम्-स्थान तो नहीं कह सकते परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि समस्त भारत में 'हिन्दी लावनी साहित्य को जो अत्यधिक समृद्धि 'आगरा' ने प्रदान की है, वह किसी अन्य स्थान ने नहीं।

केवल आगरे में और आगरे के अखाड़े में ऐसे ऐसे लावनीकार हुए है, *जिन्होंने कई कई सहस्र लावनियों की रचना की है। लावनी भी साधारण लावनी* नहीं अपितु लडीबन्द लावनियां, सनदों से भरी हुई लावनियां। यहां तक कि अरबी और 'फारसी' के विद्वान कवियों से भी यहां के लावनीकारों ने अनेक बार प्रतियोगितात्मक लावनियों की लडियां लडाई हैं। 'साहित्यालोक' के 'आगरा साहित्यकार अंक' में आगरे की भाषा तथा दार्शनिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि के विषय में इस प्रकार लिखा है—

'अकबर के समय से तो यह (आगरा) फारसी भाषा एवं साहित्य का एक मात्र स्थान रहा है। उर्दू का जन्म भी आगरे से ही हुआ है। मध्य एशिया और विशेषकर फारस के कवि, साहित्यिक एवं दार्शनिक आगरा आए। उन्होंने फारसी और साहित्य को ही समृद्ध नहीं बनाया, साथ ही जीवन के दर्शन और धार्मिक विचारों पर भी, उसका प्रभाव पड़ा और ब्रज फारसी का सामंजस्य भी आगरा में ही हुआ, जो भारत के सांस्कृतिक उत्थान में एक ऐतिहासिक घटना मानी जाती है। आगरा सदैव से राजनैतिक एवं सामाजिक महत्व का केन्द्र रहा है। किन्तु सांस्कृतिक

एव साहित्यिक दृष्टि से भी आगरे का कम महत्वपूर्ण स्थान नही। आगरा सभी दृष्टिकोणो से सभी क्षेत्रो म सदव स विश्व के विद्वानो की प्रशसा का पात्र रहा है। भक्त शिरामणि गास्वामी तुलसीदास भी इसके सास्कृतिक महत्व से प्रभावित होकर आगरा पधार थ।[1]

साहित्यालोक के इसी अक म आगरा का साहित्यिक दन की चचा करत हुए श्री तोताराम पकज न आगरा क विशिष्ट लावनीकार प० रूपकिशोर और प० पन्नालाल की भी चचा इस प्रकार की है।

हिन्दी साहित्य क विकास म आगरे का जो योग रहा है वह तो चिर स्मरणीय है। लल्लू जी लाल ने आगरा म जन्म लकर कलकत्त क फाट विलियम कालेज म प्रम सागर की रचना की। प्रम सागर हिन्दी भाषा का प्रथम गद्य ग्रन्थ माना जाता है और लल्लू जी लाल हिन्दी खडी बोली गद्य के जन्मदाता। राजा लक्ष्मणसिह न आगरा म जन्म लेकर हिन्दी गद्य शैली के विकास म बडा योग दिया। और भी अनक साहित्यकार हुए जिन्होने अपनी प्रतिभा के बल पर हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा की।

ख्यालगो (लावनीकार) प० रूपकिशोर तथा पन्नालाल को आगरा कसे भूल सकता है ?[2]

आगरा की चचा करते हुए राजस्थान के ख्यालो (लावनी) की परम्परा क विषय मे श्री भानावत ने एक उद्धरण श्री देवीलाल सामर द्वारा लिखित राजस्थान के ख्याल (नटरग वर्ष १ पृष्ठ ७२) से इस प्रकार उद्धृत किया हैं। राजस्थान म ख्यालो की परम्परा लगभग ३०० वष पुरानी रही है। य ख्याल यहाँ की मूल उपज नही हैं, ऐसा कहा जाता है कि य सत्रहवी शताब्दी म आगरा के ख्यालो की एक लोकधर्मी परम्परा प्रारम्भ हुई जिसका दायरा केवल काव्य रचना तथा किसी एतिहासिक तथा पौराणिक व्यक्ति से सम्बन्धित काव्य रचना की प्रतियोगिता तक ही सीमित था।

हमारे शोध क अनुसार आगरा लावनीबाजी का निधि' रहा है। यहा के अनक लावनीबाज अनेक अन्य स्थानो पर भी प्राप्त हैं। आगरे के लावनीबाजो की शाखा प्रशाखाएँ भारत क अन्य अनेक नगरो और कस्बो म भी उपलब्ध होना असम्भव नही है। परन्तु हमने विस्तार भय स उन समस्त लावनीबाजो का अपने शोध का विषय नही बनाया है। अन्य शोध-कर्त्ताओ का माग प्रशस्त करने की दृष्टि स हमने आगरा के तथा इससे सम्बन्धित प्रमुख लावनीकारो को ही चुना है, जिनका वश वृक्ष इस प्रकार है।

---

१ हिन्दी मासिक साहित्यालोक ६।१९६७ डा० रागेय राघव माग आगरा—२ आगरा साहित्यकार अक' अक्टूबर १९६७, पृष्ठ १४।

२ —उपरोक्त— साहित्यालोक —पृष्ठ—१५।

म त श्री तुकनगिर
(१५५०–१६४८)

म त श्री रिशालगिर
(१६२०–१७३०)

हरदयालसिंह
(१७००–१७६०)

ख्याली मिश्र
(१७५०–१८५५)

धर्मसिंह (१७६०–१८८०) | विहारीलाल (१७७०–१८६०) | उत्तमच द (१७६५–१८५६)

धर्मसिंह के पुत्र: लल्लामल (१८३० १६००) | प० रूपराम या रूपकिशोर (१८४० १६०८) | हुकमच द (१८२५ १८६०)

विहारीलाल के पुत्र: लालालाल (१८१० १८७०) | पन्नालाल (१८२० १८६०) | नारायण मुन्शी (१८३० १६००)

प० रूपराम के पुत्र: अन तराम (१८७० १६२०) | प० रामचन्द्र (१८६२ १६३६) | प० छोटेलाल (१८८० १६३०)

पन्नालाल के पुत्र: शकरलाल (१८७० १६२२)

शकरलाल के पुत्र: बा० ओकारप्रसाद (१८८० १६६०) | नेकनाराम (१८६५–अब तक) | बा० द्वारकाप्रसाद (१८८० १६४८) | आशिक मौलवी (१८४८ १६५३)

बा० ओकारप्रसाद के पुत्र: श्री प्रभुदयाल यादव (१६००–वतमान) | राधावल्लभ (१८६२ १६६२)

नेकनाराम के पुत्र: ललताप्रसाद (१६१८– १६६५) | मोहन अक्तराबादी (१६२६ वतमान)

बा० द्वारकाप्रसाद के पुत्र: हरवश (१८६८ १६६३)

आशिक मौलवी के पुत्र: अफजल खाँ (१६१४ वतमान)

श्री प्रभुदयाल यादव के पुत्र: छब्बीलाल (१६२६ से वतमान)

श्री उदयशंकर शास्त्री ने देशबन्धु वर्ष २ अंक ७ में प्रकाशित अपने एक लेख में कुछ इसी प्रकार की मान्यता व्यक्त की है कि आगरा लावनीबाजी का गढ़ रहा है।

यद्यपि हमारी मान्यतानुसार आगरा लावनीबाजी का उद्गम स्थान नहीं है तथापि उक्त दोनों महानुभावों के विचारों से आगरे का महत्व अवश्य ही प्रकट होता है जिससे हम भी सम्मत है।

श्री अगरचन्द नाहटा ने प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा नामक अपनी पुस्तक में 'ख्याल संज्ञक काव्य' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया है परन्तु इस लेख का सीधा सम्बन्ध राजस्थान के ख्यालों से ही प्रतीत होता है, आगरा से नहीं।

आगरा विश्वविद्यालय के एक छात्र—अरविन्द कुलश्रेष्ठ ने आगरा विश्व विद्यालय की एम० ए० (भाषा विज्ञान) की परीक्षा के लिए—आगरे का लोक नाट्य (भगत) और उसकी भाषा—नाम से एक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है जो अभी भी उक्त विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हस्तलिखित रूप में ही विद्यमान है। इस 'शोध प्रबन्ध' के पृष्ठ तीन पर लावनी-ख्याल की चर्चा तो लोक काव्य कह कर की गई है परन्तु लावनी के सम्बन्ध में विश्लेषणात्मक कुछ नहीं लिखा गया।

सन्त तुकनगिर जी महाराज—तुर्रा चिन्हांकित लावनीबाजों के आदि गुरु कहलाने का यदि किसी को सौभाग्य प्राप्त है तो वे है महाराज तुकनगिर जी। यद्यपि इनके विषय में प्रामाणिक रूप से विशेष कुछ ज्ञात नहीं है तथापि इस बात पर सभी का मतैक्य है कि लावनी साहित्य के 'तुर्रा स्कूल' के आदि गुरु श्री तुकनगिर जी थे और वे सम्राट अकबर के समकालीन ही नहीं थे अपितु सम्राट अकबर ने स्वयं ही उन्हें प्रसन्न होकर अपने मुकुट से 'तुर्रा' उतार कर दिया था। कहा जाता है कि यह तुर्रा कलगी आदि की परम्परा उसी समय से आरम्भ हुई। (हमने प्रथम परिच्छेद में तद् विषयक चर्चा की है।)

आप अपने समय के लावनी गायकों में अग्रगण्य तथा कलगी-स्कूल के प्रमुख लावनीकार शाहअली के प्रतियोगी थे।

सम्राट अकबर का समय १५५६ से १६०५ माना जाता है। ऐतिहासिक सत्य के अनुसार अकबर ने सन १५७९ में फतेहपुर सीकरी की प्रसिद्ध मस्जिद में स्वयं प्रार्थना की थी और १५८२ में दीन इलाही मत का संचालन किया था।

हमारे विचार से श्री तुकनगिर महाराज उसी समय सम्राट अकबर के दरबार में गये होंगे और उस समय इनकी अवस्था न्यूनातिन्यून २५ ३० वर्ष की अवश्य रही होगी। इस प्रकार श्री तुकनगिर का समय सन १५५० से १६४५ तक माना जा सकता है। आपके जन्म स्थान आदि के विषय में लावनीबाजों में भिन्न भिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ लावनीबाजों के अनुसार सन्त तुकनगिरजी महाराष्ट्र में किसी स्थान

विशेष के नरेश थे और यौवनावस्था मे ही वैराग्य भावना उत्पन्न हो जाने के कारण राज्यादि त्याग कर संयासी हो गए तथा ब्रह्म के साक्षात्कार हेतु भक्ति भाव म मस्त रहने लगे और लावनियां गाने लगे। कुछ लावनीकारो का कहना है कि इनका जन्म दिल्ली के निकट किसी स्थान पर ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। कुछ लावनीकारो के अनुसार इनका जन्म आगरा म या आगरा के निकट ही किसी साधारण ब्राह्मण परिवार म हुआ था परन्तु य अपनी अल्पावस्था म ही नागा साधुओ के साथ रहने लग थे और नागा-साधु हो गए थे।

एक अन्य लावनीकार (श्री प्रभुदयाल यादव जबलपुर) न इनके सम्बन्ध मे अपनी मान्यता हमे इस प्रकार लावनीबद्ध करके भेजी है।

तुकनगिर उस्ताद से तुर्रा तर्रार हिन्द मे बाना है।
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण मशहूर लावनी गाना है॥

टेक—जन्म भूमि चरखारी जिनकी बुंदेलखण्ड के शासन मे।
ब्राह्मण कुल के जमींदार थे विद्या विवेक के श्रासन में॥
पंडित श्राप थे ख्याला के श्रो, राग मुग्ध थी गायन में।
तुर्रे के गुरु जो माने जाते, श्राकर्षण चंग के वादन में॥
गोसाईं सुख साज में भगवाँ उडे निशान।
चतुर चग के रग में गाते तुर्रा गान॥

मि०—सी० पी० यू० पी० पांचाल बग में दक्खन गुजर गाना है
पूरब, पश्चिम ॥१॥

डा० महेन्द्र भानावत ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान के तुर्रा-कलगी के पृष्ठ ३ पर श्री तुकनगिर को दक्षिण निवासी मानते हुए इस प्रकार लिखा है।

तुर्रा कलगी ख्याला का बीजारोपण तुकनगिर तथा शाहअली नामक दो सन्तो ने संयुक्त रूप से किया। दोनो दक्षिण के निवासी थे। तुकनगिर गुसाईं महात्मा थे। ये भगवा वस्त्र धारण करते और शिवजी के उपासक थे।

उपरोक्त संक्षिप्त विवेचन तथा अन्य कुछ तथ्यो के आधार पर हमारी धारणा बनी है कि उनका जन्म महाराष्ट्र म किसी स्थान पर एक साधारण गोसाईं ब्राह्मण परिवार म हुआ।

अपने समय के एक अच्छे लोकप्रिय गायक होने के कारण सम्राट अकबर तक उनका पहुँच होना कोई असम्भव बात नही थी क्योंकि सम्राट अकबर स्वय भी साहित्यिक एव धार्मिक रुचि का होने के कारण विद्वानो तथा गायको का सम्मान करता था यह ऐतिहासिक तथ्य है।

इन्होंने अपने जीवन काल म अनेक लावनियो की रचना की जो अन्य विषयो के साथ-साथ विशेष रूप से भक्ति परक थी। अब इनकी रचनाएँ पूर्ण रूप से उपलब्ध

नहीं है। तुर्रा-स्कूल' के अनेक वृद्ध गायकों के पास यत्र-तत्र इनकी कुछ रचनाएँ प्राप्त हैं। इनकी एक प्रसिद्ध रचना (जो हम श्री प्रभुदयाल यादव जबलपुर से प्राप्त हुई है) हम यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

रगत श्याम कल्याण

साधू निकल सिधारा, जब के रह गई मढ़या सूनी रे।

टेक—जब साधू परदेश सिधारा भवन भयानक बन गया सारा।
तीरथ यात्रा को पग धारा नहिं आया फिर लौट विचारा॥
चलगी उसको पड़ी यो मंजिल दूनी रे ॥१॥

शील सत्य की जटा रखाया भाव भगत का भसम लगाया।
मुख से राम नाम गुण गाया उतसे काल कमण्डल लाया॥
अन्त गई हट बिगड़ झोपड़ी जूनी रे ॥२॥

हवा हवा में जाय समानी, अगनी में अगनी सुख मानी।
आन मिला पानी में पानी, मिट्टी में मिट्टी सुन ज्ञानी॥
जल गई कचन काया जसे धूनी रे ॥३॥

मन को मार बनाया चेला किया जरन का दूर झमेला।
कहे तुकनगिर सुख दुख झेला अन्त गया फिर आप अकेला।
ये निरगुण कब समझे सख्त जिन्नूनी रे ॥४॥

श्री रिशालगिर जी महाराज—श्री तुकनगिर जी महाराज के पश्चात् आपका ही नाम उल्लेख्य है। यद्यपि आपकी जन्म भूमि आदि के विषय में लावनीबाजों में मतभेद है तथापि इस बात पर सभी का मतैक्य है कि श्री रिशालगिरजी सन्त तुकनगिर जी के प्रमुख शिष्य थे।

कुछ लावनीबाजों के अनुसार आपका जन्म अम्बाला के निकट सन् १७०० में हुआ था। अन्य कुछ लावनीबाजों की धारणानुसार आपका जन्म दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्र में हुआ। हमारी मान्यता यह है कि महाराज रिशालगिर जी का जन्म 'आगरा' के निकटवर्ती क्षेत्र में ही कहीं सन् १६२० के लगभग हुआ था और निधन ११० वर्ष की अवस्था में सन् १७३० में। हमारी इस बात की पुष्टि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के खोज प्रकरण क्रमांक ३५ ८६ से भी होती है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के कार्यकर्ताओं को सन् १९३५ में महाराज रिशालगिर-कृत एक हस्तलिखित पद्य-ग्रन्थ (लावनी ग्रन्थ) 'बारहमासी' नाम से प० द्वारिका प्रसाद पुरोहित, खेड़ा बुजग डा० बलरई (इटावा) के यहाँ प्राप्त हुआ था जिसमें रचना काल सम्वत १७०४ स्पष्ट रूप से बताया गया है। सम्वत १७०४ का अर्थ हुआ सन् १६४७ ई०।

हमारी मान्यता के अनुसार आपका जन्म सन् १६२० म हुआ था और सन् १६४७ मे आप २७ वप के थे। अवश्य ही २७ वप की अवस्था म आपकी किसी रचना का होना सवथा मम्भव है। जहाँ तक इस बात का सम्बन्ध है कि आपकी रचना इटावा के निकट प्राप्त हुई है इसके उत्तर मे स्पष्ट ही है कि लावनीवाज प्राय भ्रमणशील होत थे, होने हैं और 'इटावा' आगरा से बहुत दूरस्थ भी नही है, एतदथ आपकी रचना वहाँ प्राप्त होना कोई आश्चर्य की बात नही है। इसके अतिरिक्त श्री रिशालगिर जी एक सन्त थे जा स्थान स्थान पर भ्रमण करते हुए ही अपनी लावनिया द्वारा जनता को अपनी ओर आकर्षित किया करते थ। आपको केवल गायन-कला म ही निपुणता प्राप्त न थी अपितु चग-वादन म भी आप दक्ष थे। आप अनक प्रकार स मन मोहक चग बजाकर भी जनता को आकर्षित कर लेते थे। आपके विषय म प्रसिद्ध है कि आप ५२ प्रकार स चग बजा सकत थ। आप वास्तव म ही एक सच्चे लाक गायक एव लाक-नायक थे।

आपन अनुमानत चार हजार लावनिया की रचना का जो 'तुर्रा-स्कूल' के लावनीबाजा क पास यत्र-तत्र बिखरे हुए रूप म प्राप्त हैं। आपकी रचनाएँ भारत भर मे गाई जाती हैं। यद्यपि आपकी रचनाएँ तुर्रा-स्कूल' के प्राय सभी अखाडा म पाई जाती हैं तथापि आपकी अधिक सख्यक रचनायें अम्बाला ओर और आगरा क अखाडा म ही उपलब्ध है। आपकी एक रचना का अश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है। इस एक ही रचना म आपन तीन रगतो का समावेश किया है जो लावनीबाजी की दृष्टि से एक आश्चर्यजनक बात है। उदाहरण इस प्रकार है।

(१) रगत-महाराज — मतिमन्द है वो दगकध मूढ अभिमानी, महाराज, सोच छा रहा विकल तन म।

(२) रगत-जकडी — नीद नहीं रात, धन धाम ना सुहात, अकुलात, बात कहे योधन म कुम्भकरण को, जगावन।

(३) रगत-लगडी — चल्यो सलाह करके मन म ॥१॥[1]

श्री हरदयाल सिह—आगरा के ख्याति प्राप्त लावनीबाज प० हरदयाल सिह का नाम आज (दो सौ वप पश्चात्) भी जगत म अतीव सम्मान के साथ लिया जाता है। आप अपन समय क एक अच्छे लावनीबाज तथा लावनीकार थे। आपके गान क ढग और चग वादन की कला का विशेष ख्याति उपलब्ध थी। आगरा का लावनी घराना आज भी आपके नाम को सुनकर अपने आप को गौरवान्वित अनुभव करता है। आपन अनुमानत दो हजार लावनियाँ लिखी जा आज भी आगरा क लावनीबाजा क पास धराहर के रूप म सकलित हैं।

---

१ श्री ताराचन्द जन, पीपर मंडी आगरा द्वारा सुनाई गई श्री रिसालगिर की रचना का एक अश।

महाराज रिशालगिर जी के वसे तो अनेक शिष्य थे परन्तु आपने उनके शिष्यत्व म जो ख्याति अर्जित की वह अन्य किसी ने नही। आपका समय सन् १७०० से सन् १७६० तक माना जा सकता है। आपकी 'गायकी' से प्रभावित होकर अनेक लावनी प्रेमी आपके शिष्य हो गये थे, जिनमे से ख्याली मिश्र जी महाराज अधिक ख्याति सिद्ध हुए एतदर्थ हम आगे ख्यालीमिश्र जी की ही चर्चा कर रहे है।

श्री ख्याली मिश्र—श्री ख्याली मिश्र जी महाराज का जन्म आगरा मे ही हुआ। आपका समय सन् १७५० से १८८५ तक माना जाता है। आपके नाम 'ख्याली मिश्र' से ही प्रतीत होती है कि ख्याला (लावनी) के प्रति आपकी कितनी रुचि थी।

आप अपने समय के अच्छे रोजील गवइये थे। आपको पहलवानी करने का अतीव चाव था। आज भी आगरे मे यमुना के किनारे पर बना धमराज का मन्दिर आपकी पहलवानी और लावनीबाजी की गाथाए पुकार-पुकार कर सुनाने म समथ है। आप अधिकतर इसी मन्दिर मे रहते थे और यही पर लावनी गायन-साधना भी करते थे। वैसे तो आप गायक ही अधिक थे परन्तु रचनाएँ भी आपकी साधारण स्तर से ऊँची ही होती थी। एक साधारण ब्राह्मण परिवार म जन्म लेकर आपने अपनी मान प्रतिष्ठा को अपने पूर्वजो की मान प्रतिष्ठा से कम नही होने दिया। साधारणतया आप उस्ताद के नाम म या बाबा ख्याली मिश्र के नाम से अधिक जाने जाते थे। आपके भी अनेक शिष्य हुए जिनम स प० धर्मासिंह उत्तमचन्द और विहारीलाल अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुए।

आपने १२०० के अनुमान लावनियाँ लिखी जो आपके शिष्यो के पास आज भी सुरक्षित है।

प० धर्मासिंह जी—ख्याली मिश्र के परमप्रिय एव प्रमुख शिष्यो म सव प्रथम आपका ही नाम आता है। आपका समय ई० सन् १७६ से १८८० तक माना *जाता है। आपका जन्म कचेहरी घाट आगरा म एक साधारण ब्राह्मण परिवार म* हुआ। आपकी रचनाए तो विशेष प्राप्त नही हैं परन्तु आप गायक अच्छे थे। आप अपने गुरु जी तथा अन्य अपने ही अखाड के लावनीकारो की लावनिया ही अधिक गाते थे। वैसे साधारणतया स्वय भी रचनाए रच लेते थे।

यद्यपि अनेक उच्च-स्तरीय लावनियो म भी आपके नाम की छाप हम देखने को मिली है जिसे श्रवण करके सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ये रचनाए आपकी ही होगी परन्तु वास्तविकता ऐसी नही है। वास्तविकता यह है कि आगरे के ही एक ख्याति प्राप्त लावनीकार प० रूप राम (प० रूपकिशोर) आपके शिष्य थे जो एक अच्छे लावनी रचियता थे। (जिनकी चर्चा हम इसी सन्दर्भ मे आगे करेंगे)। लावनीबाजी की परम्परा के अनुसार अपने गुरु व अपने अखाडे के अन्य व्यक्तियो के नाम की छाप लगाना आवश्यक है एतदर्थ प० रूपराम ने अपनी रचानाओ

म आपके नाम की छाप भी लगाई है। इस प्रकार वे रचनाए हैं तो प० रूपराम की और छाप उनम आपकी की भी है। वसे आपकी अपनी भा कुछ बिखरी हुई रचनाए आपके शिष्या के पास सुरक्षित हैं। आपकी लावनीबाजी से प्रभावित होकर प० रूपकिशोर और हुकमचन्द जैस व्यक्तियो न भी आपका शिष्यत्व ग्रहण किया।

एक लावनी के अन्तर्साक्ष्य स यह स्पष्ट होता है कि आपका स्थान कचेहरी घाट, आगरा ही था—वह लावनी-पंक्ति इस प्रकार है

'धरम औ रूपराम सरनाम, कचेहरी घाट आगरा ग्राम हमन भी आपका स्थान इसी प्रकार माना है।

प० बिहारीलाल—प० ख्याली मिश्र जी महाराज के द्वितीय प्रमुख शिष्य के रूप म हमन प० बिहारीलाल का स्वीकार किया है। आप भी कचेहरी घाट, आगरा के ही निवासी थे। आपका समय ई० सन् १७७० मे १८६० तक माना जा सकता है। आपका जन्म भी एक मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार मे हुआ। आपने अपनी गायकी के प्रभाव से अनक प्रतिष्ठित व्यक्तियो तक को प्रभावित किया और व आपके शिष्य हो गय। लालालाल और पन्नालाल जसे (आगरा की लावनीबाजी क प्राण), महान कलाकारा ने भी आपका शिष्यत्व ग्रहण किया।

आगर के घराने की लावनिया म आपके नाम की छाप प्राय सवत्र ही उपलब्ध है। यद्यपि आप रचना भी कर लेते थे परन्तु गायकी का ही अधिक चाव होने के कारण आपकी रचनाए अधिक प्राप्त नही है। वसे ऐसी रचनाएँ अवश्य ही अत्यधिक प्राप्त हैं जिनम आपके नाम की छाप उपलब्ध है। परन्तु वास्तव मे ऐसी रचनाए आपकी रचनाए नही है आपके शिष्या प्रशिष्या व गुरु भ्राताओ आदि की हैं जिन्होने परम्परानुसार आपक नाम की छाप लगा दी है। आप अपने समय क अतीव प्रसिद्ध लावनीबाज थे।

प० उत्तमचन्द—आप प० ख्याली मिश्र क शिष्य तथा एक उत्तम गायक थे आप भी आगरा के ही ब्राह्मण परिवार मे सम्बन्धित एक अच्छ लावनीबाज थ। आपका जीवनकाल १७६५ से १८५६ ई० तक माना जा सकता है आपकी शिष्य परम्परा म कोई उल्लेख लावनीकार नही हुआ। आपकी रचनाए भी प्राप्त नहा होनी। यद्यपि आगरा घरान की अनक रचनाओ म आपके नाम की छाप उपलब्ध है तथापि यह नहा कहा जा सकता है कि व रचनाए आपकी की ही हैं।

बाबा ख्यालीमिश्र का अखाडा कोई साधारण अखाडा नही था। इस अखाड म एक स एक अच्छ लावनीकार हुए हैं जिन्होने अपने अखाड स सम्बन्धित प्राय सभी व्यक्तियो के नामो की छाप अपनी रचनाओं म लगाई है एतदथ इस अखाट की लावनियो म आपके नाम की छाप का होना कोई आश्चय की बात नही है।

लल्लामल—आप प० धर्मसिंह के शिष्य थे। आपका जन्म भी कचेहरी घाट आगरा मे ही हुआ। आप कचेहरी मे मुन्शियाना करते थे इसलिए मुन्शी लल्लामल के नाम से या 'मुन्शी जी' के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। आपको गाने बजाने का अच्छा चाव था। मुन्शी तो थे ही एतदर्थ आपको उर्दू फारसी का अच्छा ज्ञान था। हिन्दी की आप की असाधारण जानकारी थी जो आगरा जैसे हिन्दी भाषा भाषी स्थान के निवासी होने के कारण स्वाभाविक ही कही जा सकती है। आपका जीवन काल ई० सन् १८३० से १६०० तक माना जाता है।

निश्चित रूप से यह तो नही कहा जा सकता कि आप ने कितनी लावनिया की रचना की परन्तु यह निश्चित है कि आपने लावनियाँ लिखी अवश्य थी जो आपके अखाड के लोगो के पास अभी भी हैं। बस आपकी भी छाप तो असख्य लावनियो म मिलती है पर तु वे सब रचनाए आपकी नही हैं। वे रचनाए आपके ही अखाडे के अन्य लावनीकारो की हैं। आपकी शिष्य-परम्परा मे भी कोई विशेष प्रभावशाली व्यक्ति नही हुआ।

प० रूपराम या रूपकिशोर—प० रूपकिशोर जी का वास्तविक नाम ता प० रूपराम ही था। परन्तु ये प० रूपकिशोर जी के नाम से भी जाने जाते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की सन् १६३२ की खोज के अनुसार उन्हे आपकी जो हस्त लिखित रचनाए प्राप्त हुई, वे प० रूपराम के नाम से ही उपलब्ध हुई थी। आपका जन्म आगरा म ही सन् १८४० ई० म हुआ। आप एक कर्मकाण्डी एव सन्तोषी ब्राह्मण थे और भगवद् भक्ति म विशेष श्रद्धा रखते थे। यही कारण है कि आपकी रचनाओ मे शृगार आदि अन्य रस होते हुए भी भक्ति रस का प्राधान्य है।

आप पडिताई करते थे और शेष समय म लेखन कार्य केवल लावनी ही नही अपितु आपने कवित्त, सवैया आदि अनेक अन्य छन्द भी सफलतापूर्वक लिखे थे। भजन आदि तो आपने लिखे ही थे। आपका हिन्दी का ज्ञान तो प्रशसनीय था ही उर्दू और फारसी के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। आप प० नन्नालाल जी के समकालीन थे और उनका आपसे विशेष स्नेह था।

आपके विषय म अनेक घटनाए प्रचलित हैं। कहते हैं ला० काशीराम आपके कोई मित्र थे जो कविता म भी रूचि रखते थे और प्रतिदिन आपके यहा मिलने-जुलने आया करते थे। एक बार एक सप्ताह तक वे आपके पास न आए तो आपका चिन्ता हुई, कारण पूछने पर विदित हुआ कि ला० काशीराम ने अपने 'शीला' नामक स्वाग (रचना) मे कही यह पक्ति लिखदी थी कि—

निकल गया आंख का तारा

यह देखते ही आपने वह पृष्ठ फाड कर पूजन आदि कराया और उसके स्थान पर अन्य पंक्ति लिखी और एक ही सप्ताह में शनै शनै उनकी (ला० काशी राम की) आखे ठीक हो गई ।[1]

आपके चार लडके थे—प० छोटेलाल, प० शालगराम, प० जाहरियाराम और प० रामचन्द्र। इनमे से प० छोटेलाल और प० रामचन्द्र की लावनी रचना मे भी रुचि थी। अन्य दोनो की साधारणतया लावनी मे रुचि तो थी परन्तु वे रचना नही करते थे।

प० रूपराम जी का जीवन अतीव नियमित था। आप प्रात चार बजे से आठ बजे तक यमुना जल मे खडे होकर भजन पाठ किया करते थे। केवल अपनी पत्नी के और माताजी के अतिरिक्त किसी अन्य के हाथ का बनाया हुआ भोजन नही करते थे। यद्यपि गायन मे आपको विशेष दक्षता प्राप्त न थी तथापि थोडा-बहुत गा भी लेते थे। आपने कुल मिलाकर अनुमानत चार हजार लावनियो की रचना की, जिनमे से इस समय आपके पौत्र प० मेघराज के पास अनुमानत एक हजार लावनिया सुरक्षित है। शेष में से अनुमानत एक हजार लावनिया प० हरवश खुर्जा के पास और शेष आपके अखाडे के अनेक लावनीबाजो के पास यत्र-तत्र बिखरे हुए रूप मे प्राप्त है। आपकी अनुमानत पाच सौ रचनाए प० किसनलाल छबडा, भिवानी, के पास भी हैं। आपके द्वारा लिखित लावनी मे ही 'सम्पूर्ण रामायण' 'योगवाशिष्ट' सत्यवादी हरिश्चन्द्र' आदि ग्रन्थ ह० लि० रूप मे ही श्री रामचन्द्र सैनी बेलनगज आगरा, के पास सुरक्षित है। आपकी मृत्यु के पश्चात् आपके ही एक शिष्य श्री अनन्तगिर ब्रह्मचारी के सद्प्रयत्नो से आपकी कुछ भक्ति-पूर्ण लावनियो का सग्रह ('ख्याल रत्नावली प्रथम भाग) स० १९७२ वि० मे (दी कोरोनेशन प्रेस शीतला गली, आगरा से) प्रकाशित भी हुआ था। श्री ब्रह्मचारी जी की योजना इस प्रकार के चार भाग प्रकाशित कराने की थी। परन्तु बाद मे उनका (ब्रह्मचारी जी का) देहान्त हो गया और यह योजना रक्खी रह गई।

आपकी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेक लावनी प्रेमी आपके शिष्य हो गए। कहा जाता है कि काशी-नरेश, पिटारी-नरेश ओरछा नरेश और दतिया नरेश आदि चार नरेश भी आपके शिष्य थे।

आपने अनेक चित्र-काव्य भी लिखे। इन चित्र-काव्यो की विशेषता यह है कि एक एक लावनी को अनेक ढंग से गाया जा सकता है। श्री तोताराम पकज—प्रबन्धक, नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा ने तो हमें बताया कि प० रूपकिशोर जी की ऐसी ऐसी लावनिया हैं, जिन्हें एक एक को सौ-सौ और इससे भी अधिक प्रकार से पढा और गाया जा सकता है।

---

१ यह घटना हमें आपके पौत्र श्री मेघराज ने सुनाई थी।

कहा जाता है कि आपने 'काफिया शब्द' कोष की भी रचना की थी जो हिंदी और उर्दू दोनों ही प्रकार के कविता प्रेमियों के लिए एक प्रकार से पथ प्रदर्शक था परन्तु खेद है कि इस समय यह कोष प्राप्य नहीं है।

श्री रामचन्द्र जी सैनी बलनगज आगरा, ने दैनिक 'आज की आवाज' (दिनांक १६ फरवरी, १६६६) में महाकवि प० रूपकिशोर नाम से एक लेख प्रकाशित कराया है जिसमें उन्होंने प० रूपकिशोर जी को 'तुर्रा स्कूल' के ब्रह्मवादी लावनीकारों में विशिष्ट लावनीकार बताने के साथ-साथ एक कुशल कवि, संगीतकार, दर्शन-शास्त्री और लोकनायक माना है।

लावनी साहित्य को अनेक लावनी रत्नों से पूर्ण कर के अंत में ६५ वर्ष की अवस्था में दि० २८ ५ १६०५ तदनुसार ज्येष्ठ कृष्ण दशमी रविवार, सम्वत् १६६२ को मध्याह्न दो बजे आप इस असार संसार से सदा के लिए विदा हो गए।

यद्यपि आपके पौत्र श्री मघराज जी ने अपने पुरखों की जन्म-कुण्डलियाँ और जन्म पत्रियाँ भी सुरक्षित रखी हुई हैं जिन्हें उन्होंने हमें दिखाया भी है, तथापि प० रूपराम की जन्म पत्री के अभाव में उन्होंने हमें प० रूपराम के ज्येष्ठ पुत्र प० छोटेलाल द्वारा रचित एक लावनी का निम्नलिखित अंश नोट कराया है जिसमें प० जी के निधन सम्बन्धी सत्य का प्रकटीकरण होता है। वह अंश इस प्रकार है।

अट्ठाइस हैं तारीख मई का महिना —महाराज
कीजिए दिन शुमार रविवार।
उन्नीस सौ है पाच, ये सम्बत् बासठ का दुख सार ॥

तिथि जेठ बदी दसवीं सब सुनयो यारो,—महाराज
करू मैं सही सही इजहार।
रुपराम दो बजे दिवस के सुरपुर गए सिधार ॥

चलता है किसी का बस नहीं यार अजल से।
करती है सब को जेर अजल छल बल से ॥

—महाराज—कहें छोटे बहाय आसू।
गुल चिराग वह हुआ रोशनी थी जिसकी हर सू ॥

अंत में प० रूपराम का एक रचनांश प्रस्तुत करके उनसे सम्बन्धित इस चर्चा को यहीं विराम दिया जा रहा है।

नेह नगर में जोय जौहरी, खोल के बैठा रूप रतन।
हित का हीरा परखते सुकृत रूप साधू सज्जन ॥
टेक—क्रिया कमर को बांध अंग में अनहद के पहरे आभरन।
पवित्रता की, पिटारी करी मणों से परिपूरण ॥

ज्ञानी गाहक जान जमाया, गुण की गद्दी पर आसन ।
काटा कम से, कर्म का बना मणों का किया वजन ।।

मि०—कसे कसौटी काया पर कल्याण रूप कचन कुदन ।
हित का हीरा, परखते सुकृत रूप साधू सज्जन ।।

श्री हुक्मचन्द—आपका जन्म भी कचहरी घाट आगरा मे हुआ । आप जाति से क्षत्रिय तथा एक अच्छे लावनीबाज थे । आपका जीवनकाल १८२५ स इ० मन १८६० तक माना जाता है । आप भी प० धर्मासिंह के शिष्य और प० रूपराम के गुरु भाई थ । आपके नाम की छाप अनेक लावनियो मे उपलब्ध है । आप एक अच्छे गायक तो थे, पर तु आपकी रचनाओ क विषय म सन्देह है कि आप रचनाये भी करते थे या नही ।

लाला लाल—आगरे के अखाडे के दीप्तिमान नक्षत्र थ्रा लाला लाल श्री विहारीलाल के शिष्य और अपन समय क एक अच्छे लावनीकार और लावनीबाज थे । आप का जीवन-काल सन् १८१० स १८७० तक माना जाता है । आपका उद्गम स्थान भी कचेहरी घाट आगरा ही है । आप अपन समय के एक धनी मानी व्यक्ति थे । कचहरी घाट मे कायस्था वाली गली सारी की सारी आपकी ही थी । अब भी आपके पौत्र आदि उस समस्त सम्पत्ति का लाभ उठा रहे हैं । आपके विषय मे कहा जा सकता है कि एक प्रतिष्ठित परिवार मे जन्म लकर भी लावनीबाजो और लावनीबाजा से अत्यधिक प्रेम करना आपके लावनी प्रेम का द्योतक था । आगरे के अखाडे की प्राय समस्त लावनिया म आपके नाम की छाप क दशन होते है । इसका अर्थ यह नही कि समस्त रचनाए आप की ही है, अपितु इसस अन्य रचयिताओ का आपके प्रति अगाध स्नेह दृष्टिगोचर होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य लावनी कार आपके नाम की छाप अपनी रचनाओ म लगाकर अपने-आप को कृत-कृत्य मानते थ । यह निश्चित रूप स तो नही कहा जा सकता कि आपन कितनी लावनिया की रचना की है क्योकि इस समय आपके पारिवारिक जना के पास आपकी रचनाओ के रूप मे कुछ भी शप नही और उन्हे इस सम्बन्ध म कुछ जानकारी विशेष भी नही है । परन्तु कुछ बिखरी हुई सामग्री (जो आपके अखाडे के अनेक लावनीबाजा के पास है) के आधार पर कहा जा सकता है कि आपन अनुमानत एक सहस्र लावनिया की रचना अवश्य की होगी, जो हिन्दी म ही नही, अपितु उर्दू मे भी रही हैं । आपकी रचना का एक अश प्रस्तुत किया जा रहा है ।

लावनी

कच भौं दृग, नासा कपाल, मुख अधर दसन, ग्रीवा गुनखान ।
कर, कुच, उदर, नाभि, कटि, गत पद रच विरच लख तजे भमान ।।

टेक—धन घमड को दण्ड कठिन मृग दीप सखा उपमा उर श्रान ।
चम्पक फूल इन्दु श्रौर विद्रुम मुक्ता छवि कवि करें प्रमान ॥
मोर श्रौर श्रम्बुज पुनि चकवा मुकुर मनोहरता जिय जान ।
कूप वेल वर व्याघ्र हेर हस्ती हिय प्रिय पुर इन पहिचान ॥

नि०—गुन गरुर श्रग न समात नखशिख तें सुदरता अस्थान ।
कर कुच उदर १

प० पन्नालाल—प० रूपकिशोर के समकालीन एव स्नेही तथा आगरे की लावनीबाजी के उज्ज्वल रत्न प० पन्नालाल का नाम कौन लावनीप्रेमी नही जानता? आपका जन्म ई० सन् १८२० म नूरी दरवाजा आगरा म हुआ । आप बूरा बतास आदि का काय करते थ और अपन समय क अग्रगण्य व्यक्तियो म स एक थे तथा हलवाई एसोसियेशन क प्रधान और सवप्रिय व्यक्ति थ ।

प्राय सरस्वती और लक्ष्मी का मेल कम ही हुआ करता है । परन्तु आप पर दोनो की ही कृपा थी । आपका कविता प्रेम इतना था कि आपने लावनीबाजी के लिए कभी भी सम्पत्ति की चिन्ता न की और बाहर से आने वाले लावनीबाजो तथा स्थानीय लावनीबाजो क निमित्त भी दिल खोलकर अतीव उदारतापूर्वक व्यय किया । मौलवी मुहम्मद हुसन आरिफ (एक ख्यातिप्राप्त लावनीकार) को तो आप न अपने दत्तक पुत्र की भाँति ही पाला पोसा ।

आप ब्राह्मण थे या वश्य इस विषय पर कुछ लावनीबाजो म मतभेद है । श्री किशोरीलाल केसर भिवानी का विचार है कि आप जन्म और कम दोनो से वश्य थे । परन्तु कर्मकाडी और ईश्वर विश्वासी होने क कारण लोग आपको पडित कहते थे । वास्तव म तो आप ला० पन्नालाल ही थे । श्री ताराचन्द जन (एक लावनीबाज) आगरा क विचारानुसार भी आप ला० पन्नालाल ही थे पडित नही । श्री मघराम शर्मा (पौत्र प० रूपकिशोर) का मत है कि आप पडित ही थ । काय की दृष्टि से आप बूरा बतास आदि का व्यापार करत थे, एतदर्थ लोगो को भ्रम हो गया कि आप लाला थे वसे वास्तव म ये आप पडित ही । श्री रामचन्द्र सनी आगरा, ने भी हम एक भेंट मे यही बताया कि श्री पन्नालाल पडित थे ।

इन अनेक मतो के प्रकाशन के साथ साथ हम नि० २७ मई सन् १६२२ का एक परिपत्र ला० शकरलाल की पुण्य स्मृति म होने वाले लावनी दगल का उपलब्ध हुआ है जिसम नीचे लिखा है—'अखाडा—पडित पन्नालाल ।' इसी परिपत्र पर अन्य अनेक ख्याति प्राप्त लावनीकारो के नाम भी अकित हैं। इस 'परिपत्र' क आधार पर ही हमने भी श्री पन्नालाल को प० पन्नालाल ही माना है ।

आपके विषय म लावनीबाजी की अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं । अफगानिस्तान स अनेक व्यापारी उन दिनो भारतवर्ष मे आया करते थे जो अरबी, फारसी क अच्छे

ज्ञाना और शायरी के शौकीन हुआ करते थे। कहा जाता है कि आपकी प्रसिद्धि श्रवण करके अनेक अफगान आपके पास लावनीबाजी सुनने आते थे क्योंकि हिन्दी के साथ-साथ अरबी, फारसी आदि का आपका ज्ञान भी प्रशंसनीय था। कहते हैं कि एक बार तो एक 'अफगान' के साथ आपकी लावनियां एक सप्ताह तक लड़ती रहीं और अंत में उस अफगान को आपकी विद्वत्ता को स्वीकार करना ही पड़ा। श्री मधु राज शर्मा ने हमें एक और घटना इस प्रकार बताई—हिन्दी अरबी और फारसी की विदूषी एक मलिका प० पन्नालाल की प्रसिद्धि सुनकर जबलपुर से अपने पति सहित आगरा आई और दो सप्ताह तक उसकी प० जी के साथ लावनीबाजी चलती रही। अन्त में उक्त महिला ने भी आपकी विद्वत्ता स्वीकार की और वे दोनों पति पत्नी आपके शिष्य हो गये तथा आपको आदरपूर्वक जबलपुर ले गये। वहाँ (जबलपुर) भी आपने अपनी लावनीबाजी की अच्छी धाक जमाई। वहाँ (जबलपुर में) अभी भी लावनीबाजी के एक प्राचीन रजिस्टर में आपके हस्ताक्षर हैं, जो श्री प्रभुदयाल यादव के पास सुरक्षित हैं। हमने भी इस रजिस्टर के समय को ध्यान में रख कर ही आपका निधन ई० सन् १८६० में माना है।

आपकी सभी रचनायें अप्रकाशित हैं। आपने अनुमानतः चार हजार लावनियों की रचना की, जो इस समय बिखरे हुए रूप में भिन्न भिन्न लावनीबाजों के पास हैं। आपकी अनुमानतः पांच-सौ रचनाएँ भी जगन्नाथ प्रसाद वैद्य नूरीदरवाजा आगरा के पास हैं, शेष सभी रचनाएँ किसी एक निश्चित स्थान पर प्राप्त नहीं हैं।

आप अपने समय के एक अत्यधिक ख्याति प्राप्त लावनी-गायक और लावनी रचयिता तथा लावनी-साहित्य के अथक प्रणेता थे। आपकी रचना का एक अंश प्रस्तुत किया जा रहा है—

लावनी—रे मन—पंछी

रे-मन पंछी छोड़ भिरमना, क्यों फिरता जंगल-जंगल।
हरे वृक्ष की डाल बैठकर राम-नाम भज मांग कुशल॥

टेर—काल बधिक करी है तेरा सो बस तेरी घात में है।
बचा जाय तो बच इससे नहिं फिर तू इसके हाथ में है॥
प्रीत त्याग माया की कर क्यों माया के उत्पात में है।
करनी करे तो कर बस पूरी दिन में है कोई रात में है॥

मि०—ब्रह्म-बीज बो दे शरीर में चाख उसी तरवर का फल ॥१॥

श्री नारायण मुन्शी—आपका जीवन-काल सन् १८३० से १६०० तक माना जा सकता है। आप प० पन्नालाल और प० रूपकिशोर के समकालीन थे। आप श्री विहारीलाल के शिष्य और प० पन्नालाल के गुरु भाई थे। आपका जन्म भी नूरी दरवाजा, आगरा म ही हुआ। आप जाति के कायस्थ थे। कचेहरी मे मुन्शियाना करन के कारण आप मुन्शी कहलात थे और मुन्शीजी के नाम स ही अधिक जाने जात थे।

आप हिन्दी और उर्दू दोनो क अच्छे जानकर थे। साधारण रूप से आपकी कुछ रचनाएँ भी विखरे हुए रूप म मिलती है बस आप गायक ही विशेष थ। प० पन्नालाल और प० रूपकिशोर की लावनिया म भी आपके नाम की छाप प्रचुर मात्रा मे दर्शनीय है।

अनन्तराम ब्रह्मचारी—आप एक सन्त थे। कही बाहर स आकर आगरा म रहन लग थे। यमुना क किनार पर बगीची म रहकर आप ईश्वर भजन आदि म मस्त रहते थे। आपका जीवनकाल सन् १८७० स १६२० ई० रहा है।

आप प० रूपकिशोर के शिष्य थे। आपको लावनी रचना का अभ्यास नही था। हाँ गायकी का अच्छा चाव था। आप अधिकतर प० रूपराम की रचनाए ही गाया करते थे। प० रूपराम की कुछ लावनिया का सग्रह 'ख्याल रत्नावली' प्रथम भाग नाम से, आपके प्रयत्नो से ही स० १८७२ म प्रकाशित हुआ था। आप एक साधु प्रकृति के गायक सन्त थे।

प० रामचन्द्र शर्मा—आप प० रूपराम जी क सुपुत्र थे। आपको गायकी का तो चाव था परन्तु रचना का अभ्यास नही था। प० रूपराम की लावनियो का आपके प्रयत्नो से ही कुछ सुरक्षित रखा जा सका। आपके पुत्र आदि इस समय मिटी स्टेशन के पास आगरा म रहते है।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के कार्यकर्ताओ ने अपनी सन् १६३२ मे की जाने वाली आगरे की खोज म प० रूपराम-कृत रचना प्राप्ति के स्थान के रूप मे आपका ही नाम और पता लिखा है।

प० छोटेलाल—आप भी प० रूपराम के सुपुत्र थे। प० रूपराम के चारो पुत्रों म आप सबसे बडे और प्रतिभाशाली थे। आपका जीवन ई० सन् १८८० स १६३० तक रहा है। आपको गायकी का तो चाव था ही, साथ म कुछ रचनाए भी भी कर लेते थे, यद्यपि वे रचनाएँ साधारण ही होती थी। प० रूपराम के निधन के सम्बन्ध मे हमने जिन पक्तियो को प्रमाण के रूप म उद्धत किया है, उन पक्तिया के रचयिता प० छोटेलाल आप ही हैं। प० रूपराम की रचनाओ म आपके नाम

की छाप भी प्राप्त है। प० रूपराम को ही आप पिता के साथ साथ अपना गुरु भी मानते हैं।

ला० शंकरलाल—आप प० पन्नालाल के परमप्रिय शिष्यों में से एक थे। आपने ई० सन् १८७० में नूरी दरवाजा आगरा के एक वैश्य परिवार में जन्म लिया।

लावनीबाजी की दृष्टि में आप उस्ताद नाम से जाने जाते थे। आप एक कुशल गायक और लेखक थे। लावनीबाजी की परम्परा के अनुसार आपके निधन पर एक बहुत वृहत् दंगल किया गया था। इस दंगल में भारत भर के ५० से भी अधिक ख्याति प्राप्त लावनीबाजों ने भाग लिया था। आज तक भी वृद्ध लावनीबाजों में इस विशाल दंगल की चर्चा है। उस समय वितरित एक परिपत्र के अनुसार यह दंगल २६ और २७ मई (दो दिन तक) सन् १९२२ में आगरा में हुआ था। आपने २५०० के लगभग लावनियाँ लिखीं जिनमें से २०० के लगभग प० किसनलाल छकटा, भिवानी और ५०० के लगभग श्री हरवंश ख्यालगो खुर्जा के पास हैं। शेष आपके अखाड़े के अन्य लावनीबाजों के पास बिखरे हुए रूप में हैं। आपकी एक रचना का केवल चतुर्थांश हमें प० अयोध्याप्रसाद की हस्तलिखित लावनियों में प्राप्त हुआ है। आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व का यह पृष्ठ हमारे पास अभी भी है जिस पर इस प्रकार लिखा है —

(ख्याल कृत ला० शंकरलाल नूरी गेट आगरा,)

और यह रचना इस प्रकार है—

चला सैर करने को वो गुल चबा गिलोरी दहन के बीच।
फूल देखकर, दहन को फूल उठे पैरहन के बीच॥

चहक उठी बुलबुलें हुस्न जाना का देख गुलशन के बीच।
पर फैला कर नाचने लगी मगन हो मन के बीच॥

चमक से रुखसारों की भड़क ने लगी आग मन्तरन के बीच।
पेशानी को, देख कर हुई रोशनी समन के बीच॥

शेर—फक हुआ चम्पे का भी मुँह देखकर उसका बदन।
छुप गया सूरजमुखी भी तोड़ कर अपनी लगन॥
जिन हुए चहरे के आगे माहरू पंजाब के।
देख के चाहे जकन चाहत में डूबे राहजन॥

---

१ वैसे तो हमें श्री शंकरलाल की कुछ अन्य लावनियाँ भी प्राप्त हुई हैं परन्तु इस लावनी का केवल चतुर्थांश ही प्राप्त हुआ है।

है वो दगा दुरो से आला दमक देते जीवन के बीच
फूल देख कर ॥ १ ॥

बाबू आकार प्रसाद—बाबू ओंकार प्रसाद का जन्म सन् १८८० मे जबलपुर म हुआ। आगरा जाते जात रहने के कारण आपका सम्ब ध लावनी की दृष्टि स आगरे के अखाड स विशेष रहा। यही कारण था कि आगरा घरान क ख्यातिसिद्ध लावनीबाज ला० शकरलाल से आपने शिष्यत्व ग्रहण किया। कुछ ही काल क पश्चात् आप अजमेर (राजस्थान) चले गये । लावनीबाज की दृष्टि से आप एक अच्छे लावनी रचयिता थे और आपने लगभग १२०० लावनियो की रचना की थी। इन रचनाओ मे स लगभग ८०० रचनाएँ श्री प्रभुदयाल यादव जबलपुर, के पास सुरक्षित है तथा अन्य शेष रचनाएँ आगरे के अखाड के तथा अ य लावनीबाजा क पास बिखरे रूप म उपलब्ध होती हैं। आप एक लेखक तो थे परन्तु आपम 'गायकी' का अभाव था। वस आप एक प्रभावशाली लावनीकार थे यही कारण था कि लावनी जगत क ख्याति प्राप्त लावनीकार श्री प्रभुदयाल यादव और श्री राधावल्लभ आदि ने भी आपको अपना लावनी गुरु स्वीकार किया।

सन् १९२२ म आपक गुरु की पुण्य स्मृति म हुए वृहत् लावनी दगल के 'सूचनापत्र' के अनुसार आप क्लम इस्पेक्टर थे। श्री प्रभुदयाल यादव जबलपुर ने भी इसी बात की पुष्टि करते हुए हम इस प्रकार लिखा है—'मेरे लावनी गुरु' श्री ओंकार प्रसाद की जन्मभूमि जबलपुर है जबलपुर के एक कायस्थ परिवार म उनका जन्म हुआ था और वे सेंट्रल रेलवे म क्लेम इ स्पेक्टर थे। उनका हिन्दी, उर्दू और फारसी पर अच्छा अधिकार था।

उक्त दगल मे भाग लने के लिए आप आगरा गये थे । इस प्रकार आपने अनेक लावनी-आयोजना म सक्रिय भाग लिया था। अन्त म सन् १९६० मे अजमेर म आपका देहावसान हो गया।

आपने अपनी लावनियो का एक सग्रह ख्याल बेमिसाल नाम से प्रकाशित कराया था। आपकी भाषा पर उर्दू-पर्सियन का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

ख्याल—शहादतनामा

सितम के खजर से टुकडे टुकडे हुआ जिगर बन्द मुस्तफा का।
कलम का भी फट गया कलेजा लिखा जो अहवाल करबला का॥

टेक—खतील तेगे लई इलाही ये कौन सा बेखाता हुआ है।
क आसमां का सियाह खाना तमाम मातम सरा हुआ है॥

हर एक फरिश्ता लिबास मातम, पहन के साहब इजा हुआ है।
फुंगा की आवाज हर जगह है ये शोर घर घर मचा हुआ है ॥

शेर—आशोरा जब के दश्त बला मे अया हुआ।
आमादा खून शाहे, —जहा पर जहा हुआ ॥
प्यासो के खूं के जो वो प्यासे लईन थे।
तयार तेगो तीर से हर एक जवा हुआ।

मि०—न समझा अफसोस जालिमो ने, के ये है मलबून किर्यारिया का
कलम का भी ॥१॥

नेक्शाराम—आप ला० शकरलाल के प्रमुख शिष्या म स एक हैं। आपका जन्म सन् १८६५ म फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश) मे हुआ। आप अभी भी फिरोजाबाद म ही रहते हैं। कार्य की दृष्टि से आपका कार्य गाना बजाना ही है। आपको रचना का अभ्यास नही है। शिक्षा दीक्षा की दृष्टि स आप पर सन्त कबीर का यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है कि—'मसि कागद छूयो नही कलम गही नहि हाथ' केवल ८ १० वष की अवस्था से ही आपने गाना आरम्भ कर दिया था। आशिक मौलवी आगरा के भी आप विशेष प्रिय रहे हैं।

मा० द्वारका प्रसाद (घगढ)—ला० शकरलाल क रोबील गायक शिष्यो म आपका नाम अतीव सम्मान पूवक लिया जाता है। आपका जीवन काल ई० सन् १८८० से १९४५ तक माना जाता है। आपका जन्म भी आगरा म ही हुआ।

यद्यपि आप गायक ही थे, रचियता नही, तथापि समय समय पर साधारण रचनाए भी कर लते थे जो गायकी क अच्छ अभ्यास क कारण प्राय अच्छी ही होती थी। आपकी गायकी क प्रभाव क कारण ही प० हरिवश (खुर्जा) जसे (ख्याति प्राप्त लावनीकार) लावनीबाजा ने भी आपका शिष्यत्व स्वीकार किया।

मौलवी मुहम्मद हुसैन आशिक—ला० शकरलाल के लेखक शिष्या में यदि किसी का नाम स्मरणीय है तो वह है—मौलवी मुहम्मद हुसन 'आशिक' का। वैसे तो आप उर्दू-फारसी के ही विद्वान थ परन्तु हिन्दी पर भी आपका अच्छा अधिकार था। भारत भर म सम्भवत कोई ही ऐसा लावनीबाज होगा जिसने 'आशिक साहब' का नाम नही सुना होगा।

आपका जन्म आगरा क वजीरपुरा मुहल्ला मे सन् १८४८ म और देहान्त सन् १९५३ म हुआ। अन्तिम समय म आपका अधाङ्ग हो गया था। परन्तु फिर भी कलम को मुट्ठी म पकड कर लिखत थे। एक-सौ-पाँच वष की परिपक्व आयु प्राप्त करना आपके सुन्दर स्वास्थ्य का द्योतक तो है ही साथ मे इस बात का भी द्योतक है

कि आपने इस लम्बे समय म लावनी साहित्य मे भी अत्यधिक वृद्धि की। आप पर सरस्वती की एसी अनुकम्पा थी कि आप एक समय म चार व्यक्तियो तक को एक साथ नवीन रचना बोल कर लिखा सकते थे।

आपने अनेक अच्छे अच्छे 'दगल' देखे और स्वय भाग लिया था। यहा तक कि दगलो म वहा बठे बठे अपनी आशु-लावनियो द्वारा दाखल लिखकर आपने लावनीबाजी म अत्यधिक नाम कमाया।

शिक्षा दीक्षा की दृष्टि स एक साधारण परिवार म जन्म लेने के कारण अधिक शिक्षा प्राप्त करना आपके लिए सम्भव न होते हुए भी, अपने पुरुषार्थ तथा प० पन्नालाल जसे उदार मना लावनी प्र मियो के विशेष स्नेह के कारण आपने आलिम फाजिल तक अध्ययन किया। प० पन्नालाल ने तो आपको गोद जसा-ही ल लिया था।

आप राजपूत कालज आगरा म प्राध्यापक भी रहे थे। आपकी कोई रचना प्रकाशित रूप मे प्राप्त नहीं है। आपको सम्भवत इस पुरानी उक्ति पर विश्वास था कि जो

जो जल बाढ़े नाव म घर मे बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम॥

आपके पास पार्थिव धन तो नहीं था परन्तु लावनी धन अवश्य था जिसे आपने दोनो हाथो स अधिकाधिक बाटा। आपको जलबी खाने का बहुत चाव था।

धर्म निरपेक्षता की दृष्टि स (चाहे आप मुसलमान थ, परन्तु) आपकी आस्था मानव मात्र म थी। यही कारण था कि जहाँ आपने हसन-हुसैन की शहीदी लिखी वहा वीर हकीकतराय जसी रचनाए भी लावनी-साहित्य को प्रदान की।

'वीर हकीकतराय' नामक लावनी सुनकर तो मौलवियो न आपको काफिर का फतवा द दिया था। परन्तु आप को इन फतवो की कमी भी चिन्ता नहीं हुई। आपने अनुमान तीन हजार लावनियो की रचना की जो यत्र-तत्र भारत भर के लावनीबाजो के पास बिखरे हुए रूप म विद्यमान है। मुख्य रूप से आपकी अनुमानत ३०० रचनाएँ प० किसनलाल छकला (भिवानी) के पास, अनुमानत २०० रचनाएँ नवशा राम (फिरोजाबाद) के पास लगभग ३०० रचनाएँ प० हरिदत्त (खुर्जा) के पास और लगभग ८०० लावनिया आपके ही दौहित्र श्री अफजल खा आगरा के पास शिक्षित हैं। आप एक कुशल लेखक तो थे परन्तु कुशल गायक नहीं थे।

लावनी—जगा ले रे मन

न नख बाजे न शब्द होवे, मढी में सुनसान हो रहा है।
जगाले रे मन अलख पुरुष को, गुफा में जो गुप्त सो रहा हैं ॥

टेक—जटा में है गग जू की धारा, कहो बड़े से के साफ होले।
अशुद्धता को मिटावे मन से, खुमार आल्दो के आप घोले ॥
अखड आसन लगाके बैठे न देह धारे विदेह होले।
करत कृपा नित हरी जनों पर बुरी को त्यागे भली को तोले ॥

मि०—गिरह में तू काँच बाध करके अमोल कचन को खो रहा है
जगाले रे ॥१॥

ललताप्रसाद—आप श्री नकनाराम के प्रिय शिष्यो म स एक थे। आपका जन्म फिराजाबाद म ही सन् १६१५ म हुआ। आपको रचना का अभ्यास नहीं था। आप एक अच्छे गायक थे। ई० सन् १६६/ म फिराजाबाद म ही आपका देहा त हो गया।

मोहन अकबराबादी—आप भी श्री नेकनाराम के शिष्य है। आपका जन्म ई० सन् १६२६ म आगरा में हुआ। आगरे के माती कटरे म आपकी हलवाई की दुकान है। आप भी अच्छा गाते हैं। रचना का भी आपको अच्छा अभ्यास है। आगरे के लावनीबाजा मे आपकी अच्छी ख्याति है। आप एक अतीव मिलनसार व्यक्ति हैं।

प० हरिवश—आगरा घरान की लावनीबाजी मे प० हरिवश का स्थान अतीव श्लाघनीय है। आपका जन्म सन १८६८ म और निधन सन् १६६३ म खुर्जा (उत्तर प्रदेश) म हुआ। प्राय देखने म आता है कि लेखक, गायक नही हान और गायक लेखक नहा होने। परन्तु प० हरिवश इस उक्ति के लिए अपवाद थे। आपन जहाँ सुदर से सुदर लावनिया की रचना की वहाँ अनेक विशाल दगलो मे गा-गाकर भी वाह वाही लूटी।

लावनीबाजा की दृष्टि म आप मा० द्वारका प्रसाद के शिष्य थे। आगर क अखाड को वास्तव म ही आपन चार चाँद लगा दिए।

आप जन्म और कर्म, दोनो म पडित थे तथा पण्डिताई करते थे। आप कथा वाचन आदि भी करत थे। जीवन क अनुमानत अन्तिम दस वर्षों मे आपन आकाशवाणी दिल्ली से भी अनक लावनियाँ स्वय गा-कर प्रसारित की।

आपने पूर्ण लावनिया क साथ-साथ समचे' [1] बहुत लिख हैं। आपन कुल

---

[1] हमन दूसर परिच्छेद मे समच का परिभाषा पर विचार किया है।

मिलाकर लगभग १५०० लावनियों की रचना की जो आगरा घराने के अनेक लावनीबाजों के पास हस्तलिखित रूप में अभी भी सुरक्षित हैं। मुख्य रूप से एक हजार के लगभग तो आपकी रचनाएँ आपके ही परिवार के व्यक्तियों के पास है। शेष में से अनुमानतः २०० रचनाएं श्री प्रभुदयाल यादव, जबलपुर, के पास भी हैं और इन रचनाओं की भी अनेक प्रतिलिपियां अनेक लावनीबाजों के पास है। आपकी सभी रचनाएँ अप्रकाशित रूप में ही हैं।

भाषा पर आपका अतीव अधिकार था। आपकी भाषा संस्कृत निष्ठ हिन्दी है। उदाहरणार्थ हम एक खमचा ही यहां प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें प्रकृति का सजीव वर्णन दर्शनीय है।

उपवन मे फूल फूले अनेकों प्रकार के।
शीतल सुगन्ध मन्द हैं झोके बयार के॥
शाखें भी झूम-झूम के धरणीं को चूमती।
पक्षी चहक रहे समय सुन्दर विचार के॥
गुंजार भृंग कर रहे पंकज प्रसून पर।
दिनकर उदय हुआ है कलायें निखार के॥
गायन ये लावनी का मदुल तान चंग की।
कोकिल सुना रही है यही कूक मार के॥
हरिवंश' हो गए सुखी भगवान भक्त जन।
चितवन से अपने मोहनी मूरति निकार के॥[1]

अफजल खाँ—आपका जन्म आगरे में ही सन् १९१४ में हुआ। आप ख्याति प्राप्त लावनीकार मुहम्मद हसन आशिक के दौहित्र हैं। आजकल हींग की मण्डी आगरे में रहते हैं, वहीं किसी फर्म में मुनीमी करते हैं। आप एक अच्छे लेखक तो हैं परन्तु गायक नहीं है। आपने अब तक अनुमानतः सात-सौ रचनाएँ लावनी साहित्य को प्रदान की हैं। आपकी लावनियां अप्रकाशित रूप में ही आपके पास और आगरा अखाड़े के अन्य अनेक लावनीबाजों के पास हैं। 'आशिक' साहब की लावनियों में भी आपके नाम की छाप मिलती है। आप 'आशिक' साहब को ही अपना गुरु भी मानते हैं।

राधावल्लभ—आपका जन्म आगरे में ही सन् १८९२ में हुआ। आप बाबू ओंकार प्रसाद के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। आप अपने समय के एक प्रसिद्ध टोपी

---

१ ला० शंकरलाल की पुण्य-स्मृति में होने वाले वृहत् ला० द० के समय (२६ २७ ४ १९२२) वितरित परिपत्र से उद्धृत।

बनाने वाले थे। अभी नौ वर्ष पूव सन् १९६२ म आपका देहात हुआ है। आगरा घराने की अनेक लावनिया मे आपके नाम की छाप मिलती है।

आप एक कुशल गायक तो थे परन्तु लेखक नही। वसे, साधारणतया समय समय पर रचना भी कर लेते थ।

श्री प्रभुदयाल यादव 'प्रभु'—लावनी-साहित्य क प्रति श्री प्रभुदयाल यादव 'प्रभु की सेवायें चिरस्मरणीय हैं। आप आगरा अखाड से सम्बधित बाबू ओंकार प्रसाद के शिष्य और अनेक ख्याति प्राप्त लावनीबाजों के गुरू है। आपका जम मध्यप्रदेश के ख्याति प्राप्त नगर जबलपुर' के उड़िया मुहल्ले म श्री गोविद प्रसाद क घर, अगस्त १९०० मे हुआ। इस समय आपकी वय ७१ वष की है और आप श्री बेणी प्रसाद धमचद, जबलपुर क यहाँ सन् १९२६ से अब तक (एक ही स्थान पर) काय रत हैं।

आपके कवित्व का आरम्भ तो दोहा, कवित्त और सवैया आदि स हुआ परन्तु आपके नानाजी और मामाजी आदि को लावनीबाजी का विशेष चाव होने के कारण आप भी लावनीबाजी की ओर आकर्षित हुए और लावनी साहित्याकाश म चद्रमा की भाँति चमक भी।

वतमान लावनीकारो म श्री यादव की भाति वयोवृद्ध लावनीकार तो अनक मिल जाएँगे परन्तु वयोवृद्ध हान के साथ-साथ एक सुयाग्य लेखक भी होना श्री यादव की अपनी विशेषता है। एक साधारण परिवार म जम लेने के कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा का पूण प्रबध नही हो सका परन्तु आपकी रचनाआ को देखकर कोई भी आपके शिक्षित होने म सदेह नही कर सकता। इस पर भी विशेपता यह है कि आपकी मातृभाषा हिदी नही, उत्कल (ओरिया) है।

कानपुर से प्रकाशित होन वाला हिदी के ख्याति प्राप्त मासिक पत्र 'सुकवि' और कलकत्ता क काव्य कलाधर म तथा अय अनेक पत्रा म आपकी हिन्दी रचनायें प्रकाशित होना, आपक कायोचित गुणो का परिचायक है।

आपने १९ वष की अवस्था म ही लावनी-साहित्य म प्रवेश किया और अब तक निरन्तर ५१ वष क अध्ययन और अध्यवसाय से आपन लगभग चार हजार लावनिया लावनी-साहित्य को प्रदान की हैं। अभी इसी वष आपने सम्पूण रामायण की रचना लावनी म की है। आपका कोई लावनी-पुस्तक अभी तक प्रकाशित नही हुई है परन्तु अप्रकाशित रूप म आपकी प्राय समस्त रचनाएँ आपके पास तथा आपके प्रमुख गायक शिष्य श्री हुब्बीलाल यादव के पास सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त आपकी अनेक रचनाओ की प्रतिलिपियाँ अय अनेक लावनी-गायको के पास भारत

के विभिन्न नगरो, यथा—आगरा, कानपुर, लखनऊ, बम्बई खडवा बुरहानपुर, नागपुर और दिल्ली तथा भिवानी म प्राप्त है।

आप एक कुशल लेखक तो हैं परन्तु गायक और चग वादक नही हैं। यद्यपि तुर्रा और कलगी की प्रतिद्वन्द्विता प्रसिद्ध है तथापि (तुर्रा-स्कूल से सम्बद्ध होने पर भी) लखनऊ के कलगी स्कूल के लावनीबाज श्री हाफ़िज के द्वारा ४ ७ १६३२ को आपको उस्तादी की पगडी बाधा जाना लावनी साहित्य में सम्भवत प्रथम घटना थी।

आपकी भाषा म प्रवाह है और आप के भावो के अनुरूप आपका भाषा अधिकार प्रशसनीय है। आपका पारिवारिक जीवन आरम्भ से ही सुखी नही रहा। आपके एक युवक पुत्र के मस्तिष्क विकार और अभी पिछले दिनो आपके भ्राता वियोग ने आपके जीवन को और भी नीरस बना दिया।

आपकी रचना का एक उदाहरण दिया जा रहा है—

लावनी—नवधा भक्ति

नवधा भक्ति गुण ज्ञान सरोवर तारन तरन प्रमान कहूँ।
नित्यानन्द आनन्द आत्मा, 'ओम व्योम मे मान कहू॥

टेक—श्रवण प्रथम कर वभव विष्णु गगन धरन अधिकारी जो।
पवन प्राण प्रतिपाल परायण परम पूज्य पतहारी जो॥
दोयम कर मन मनन महीश्वर परमेश्वर सन्त हितकारी जो।
करुणाकर केशव कृष्ण कला कमलेश कुज बनवारी जो॥

मि०—तीजे तप मे त्रिगुण तपस्या तीन तत्व में ज्ञान कहूँ
नित्यानन्द आनन्द

श्री छुबीलाल यादव—आपका जन्म जबलपुर म ही सन् १६२६ म हुआ। लावनीबाजी की दृष्टि से आप श्री प्रभुदयाल यादव के प्रमुख शिष्यो मे से हैं। आपको रचना का विशेष अभ्यास तो नही है परन्तु साधारणतया समय-समय पर रचनाए भी कर लेते हैं। गायकी की दृष्टि से आप एक अच्छे और सुलझे हुए गायक हैं। आपने लावनीबाजी के अच्छे-अच्छे नृत्त दवला म भाग लेकर अपनी गायन-कला का सुदर परिचय दिया है तथा आगरा-अखाडे की मान मर्यादा को चार चाद लगाए हैं। आपका चग वादन अतीव मन मोहक एव आकर्षक होता है। आपकी एक लघु रचना उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

गजानन-स्तुति

गन गिरजा-सुत एक दत गज-वदन गजानन।
नीश मुकुट कुडल सरवन सोहत मन भावन॥

ललित माल चमक्त ललाट सोहत शुभ चन्दन ।
कर त्रिशूल विकराल आदि गन असुर निकन्दन ॥
प्रभु दयाल वन्दना करत कर जोरि सुमर गन ।
रखो सभा मे लाज ये दुब्बी करता सुमरन ॥
गजानन चार भुजा धारी, सभा म नाचत द दे तारी ।
मगन मन होवें त्रिपुरारी आरती करत देव नारी ॥

जयन्त मूषक वाहन गणपती ।
हरी दुब्बी करता स्तुती ॥ [1]

श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज—आप एक सन्त थे । आपका जन्म आगरे मे ही लगभग सन् १८८० मे हुआ । आप एक पहुँचे हुए महात्मा ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता तथा लावनी प्रेमी थे । आप श्री भुन्लूसिंह के अखाडे म प० श्यामलाल के शिष्य थे । रचना एव गायकी दोना का ही साधारण अभ्यास था । आपकी अधिक ख्याति सन्त होने के नाते थी लावनीबाजी के नाते नही ।

आपका हस्तलिखित ग्रन्था के सग्रह करन का अतीव चाव था । आपने मृत्यु से पूर्व आगरे की नागरी प्रचारिणी सभा को साढे छह सौ हस्त लिखित ग्रन्था की पाडुलिपिया भेंट की थी । अब भी नागरी प्रचारिणी सभा आगरा के पुस्तकालय कक्ष मे आपका एक वृहदाकार चित्र लगा हुआ है ।

लावनीबाजी की दृष्टि स भी आपके अनेक प्रभावशाली शिष्य हुए । लावनी के अतिरिक्त आपको नाटक और सगीत आदि म भी विशेष रुचि थी । 'रामलीला मे अभिनय 'दशरथ और परशुराम का आपका रूप आगरा वासिया को अभी भी भली भाति स्मरण है । आप एक वेद पाठी तथा कर्मकाडी गौड ब्राह्मण थे ।

श्री गोपालदास चौरासिया—आपका जन्म ला० रतनलाल चौरासिया के यहाँ आगरा मे ही सन् १६२४ मे हुआ । आप श्री कृष्णचन्द्र जी के शिष्य हैं । आपमे रचनाशक्ति का तो अभाव है परन्तु आप गायक बहुत अच्छे है । आगरे के प्रमुख गायको म आपका नाम आदर के साथ लिया जाता है । आप अनेक बार आकाशवाणी पर भी गा चुके हैं और गाते रहते हैं ।

शिक्षा की दृष्टि से आप अधिक शिक्षित नही है परन्तु लावनीबाजी की आपकी जानकारी प्रशसनीय है । आपको लावनी सग्रह का अतीव चाव है । आगरे के अखाडे की लगभग दो हजार रचनाओ का सग्रह आपके पास सुरक्षित है । आप लावनीबाजी के अच्छे प्रचारक एव प्रसारक हैं ।

---

१ श्री दुब्बीलाल द्वारा लिखित एक ह० लि० सखी —उन्ही के द्वारा प्रेषित ।

श्री ताराच द जन—आपका ज म आगरे मे कचेहरी घाट की टीले वाली गली म ला० मिठ्ठनलाल के यहाँ कार्तिक कृष्ण पचमी वि० सम्वत् १६६७ म हुआ। साधारणतया आप अच्छा लिख लेते हैं और अच्छा गा लेते हैं। आप उस्ताद क नाम से भी जाने जाते है। आप भी श्री कृष्णच द्र जी क शिष्य हैं।

विवाह आदि म उपयोग मे आने वाले सेहरे और पगडिया बनाने म आप सिद्धहस्त हैं। पेंटिंग का कार्य भी आप अच्छा कर लेते हैं। आप एक मिलन सार तथा सहयोगी वृत्ति क अच्छे लावनीबाज हैं। आपकी रचना की चार पत्तियाँ, (जो हमे आपके ही मुखारवि द से श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है) उदाहरणाथ प्रस्तुत हैं—

सष्टि के झझटों में कोई सार नहीं पाया।
भगवान तेरी माया का पार नहीं पाया॥
सष्टि रचा के त ने क्या कर नहीं दिखाया।
हारा है जीव तुम से तू हार नहीं पाया॥

बाबा हरिदास—आपका ज म सन् १६२४ मे आगरे मे हुआ पर तु आजकल आप जयपुर (राजस्थान) मे रहते हैं। आप प० रूपकिशोर के पुत्र प० रामच द्र आगरे वालो के शिष्य हैं।

आपको साहित्यिक रचनाओ का भी अतीव चाव है। महात्मा तुलसीदास की रामायण गीतावली विनय-पत्रिका आदि तो आपको बहुत अश म क ठस्थ हैं।

लावनीबाजी की दृष्टि से भी आपको गायकी और लेखन दोना म ही कुशलता प्राप्त है। आपने अब तक लगभग २५ चित्र-का य लावनियाँ और एक सौ साधारण लावनिया की रचना की है जो प० मेघराज (नीलकठ महादेव के पास) आगरा के पास सुरक्षित हैं।

श्री गोपालदास सरस'—आपका भी आगरा घरान न ही सम्ब ध रहा है। आपका ज म आगरे म ही सन् १८६५ मे हुआ और निधन १६६५ ई० म। आप टिम्बर'-लक्डी का काय करते थे। आप एक साधारण लेखक और गायक थे। आपकी अनुमानत १५० रचनाएँ श्री गोपाल दास चौरासिया, नमक की मडी, आगरा, के पास उपल ध हैं। आपन लगभग इतनी ही लावनिया की रचना की थी।

आप श्री कृष्ण च द्र क शिष्य थे।

प० मेघराज—आप प० रूपकिशोर जी के पौत्र और प रामच द्र जी के पुत्र हैं तथा पडिताई एव पुरोहिताई करते हैं। साधारणतया आपकी लावनीबाजी में अच्छी रुचि है। प० रूपकिशोर जी और प० छोटलाल (आपके चाचा) की शेष सामग्री आपके पास ही सुरक्षित है। लावनीबाजी आपकी पैतृक सम्पदा होने के

कारण आपने अन्य किसी को अपना गुरु न बनाकर अपने पिता को ही अपना गुरु मान लिया है। आप एक मिलनसार व्यक्ति हैं। आप आजकल आगरे मे नीलकंठ महादेव के मन्दिर के सामने सीटी रेलवे स्टेशन के निकट रहते है। आपके दो अन्य अग्रज भी हैं परन्तु उनकी रुचि लावनीबाजी मे आपकी अपेक्षा साधारण ही हैं।

श्री रामचन्द्र सैनी—आप आगरे के अच्छे जाने मान व्यक्तियो म से एक हैं। आपका जन्म श्री जमना प्रसाद के यहाँ दिनाक १६ मार्च १६०३ म आगरे म हुआ। अब ६६ वर्ष की अवस्था मे भी आप एक सक्रिय लेखक तथा समाज सेवा की भावना से ओत प्रोत हैं।

आप लेखक तो है परन्तु गायक नही है। आपने अब तक ३०० के लगभग लावनियां लिखी हैं। जिनम म २०० के लगभग आपके पास हैं और शेष अन्य गायकों के पास हैं। केवल लावनी ही नही अपितु आपने कवित्त, सवय आदि भी रचे हैं। यहाँ तक कि हिन्दी की गजलें लिखने का भी आपका अच्छा अभ्यास है। आप ने उमर खयाम' की कुछ रुबाइयो का भी हिन्दी रूपान्तर किया है जो अप्रकाशित रूप म आपके पास हैं। आपकी कोई रचना प्रकाशित रूप म उपलब्ध नही है। आप उस्ताद दयालचन्द के शिष्य है।

प० रूपराम की अनेक रचनाएँ आपके पास सुरक्षित हैं। अपने यौवन काल म आप एक उत्साही एव कमठ सामाजिक कार्यकर्ता एव लावनी प्रेमी रहे हैं। अब आप मे उत्साह नहीं है फिर भी समाचार-पत्रो आदि म लावनी सम्बन्धी लेख आदि आप अब भी लिखते रहते हैं। प० रूपकिशोर सम्बन्धी ('आज की आवाज' दैनिक पत्र, १६ २ १६६६) प्रकाशित (अब श्री सेनो गन चुके हैं) लेख के लेखक आप ही है।

उस्ताद दयालचन्द—आप श्री रामचन्द्र सेनी के गुरु और बेलनगज आगरा के उस्तादो की गिनती म थे। आप प० रूपराम के समकालीन थे। प० रूपराम तथा अन्य (आगरे के अखाडे के) लावनीकारो की रचनाओ मे भी आपके नाम की छाप मिलती है।

आप उस्ताद गिरवरसिह जी के शिष्य थे आपकी रचनाएँ साधारण श्रेणी की होती थीं। आपकी १०० १२५ रचनाएँ श्री रामचन्द्र सेनी के पास प्राप्त हैं।

आपका जीवन-काल सन् १८३६ से १६१६ तक माना जा सकता है। आप आगरे मे ही रुई की दलाली करते थे।

इस विवेचन के सम्बन्ध मे

इस तीसरे परिच्छेद म लावनीकारो, लावनीबाजो और लावनीबाजी के सम्बन्ध म विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इस विवेचन को प्रामाणिक बनाने क निमित्त हमने स्वय, दग के भिन्न भिन्न भागा म जाकर सामग्री सचयन किया है और इसकी प्रामाणिकता पर हम पूर्ण सन्तोष है ।

प्रब ध के लिए निश्चित पाच स्थाना और उनके निकटवर्ती क्ष त्रो की चर्चा करने से पूव इस परिच्छेद क प्रथम अध्याय म लावनीकार तथा 'लावनीबाज' आदि की चर्चा की गई है । तत्पश्चात शेष पाच अध्याया म पाच स्थानो के लावनीकारा का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस प्रकार इस समस्त परिच्छेद को छ अध्याया म बाटकर भी प्रथम स्थान (भिवानी) क लावनीकारा को, अखाडा की दृष्टि स पाच भागा म विभक्त किया गया है । इन अखाडो के सम्बन्ध म सक्षिप्त विवरण भी प्रस्तुत कर दिया गया है ।

लावनीबाजा म अखाडो की ख्याति (यक्ति विशेष और स्थान विशेष) दाना ही प्रकार स है । हमने भी अपने विवेचन म इस परम्परा का पालन किया है । इन अखाडो म एसे एस उच्च कोटि क लावनीकार हुए है जिन्ह अच्छ लोक-कवि की पक्ति म खडा किया जा सकता है । उनका इस परिच्छेद म यथा स्थान विवरण दिया गया है ।

दादरी क अखाड म शम्भुदास, नारनौल' क अखाड म गुरु गगासिह, अम्बाला' की लावनी-परम्परा म सन्त भक्तसिह और उनके प्रमुख शिष्य श्री सुख लाल की लावनियाँ किसी भी अच्छ कवि की रचनाआ के समकक्ष रखी जा सकती हैं । आगरा म भी प० पन्नालाल और प० रूपकिशोर आदि अच्छे ख्याति प्राप्त लावनीकार हुए हैं ।

इस परिच्छेद म इन विशेष रूप से चर्चित लावनीकारा पर तो विशेष विवेचन प्रस्तुत किया ही गया है साथ ही अ य ख्याति प्राप्त लावनीकारा, लावनबाजा पर भी प्रकाश डाला गया है ।

आगरे के एव इस क्षत्र के लावनीकारो की चर्चा क अन्तगत हमन स्पष्ट किया है कि चाहे उत्तर प्रदश के अन्य स्थानो पर भी लावनीबाजी का अत्यधिक प्रचार रहा हैं तथापि इस दृष्टि से आगरे की अपनी विशेषता रही है ।

हमारी धारणा है कि इस विवेचन से साहित्य को अनेक महत्वपूण रचनाएँ प्राप्त होगी । लावनी का साहित्यिक महत्व अनेक दष्टियो से अगीकार किया जाना चाहिए जिनका चर्चा इस प्रबन्ध म यत्र-तत्र प्रकरणानुसार की गई है ।

हमारे विचार से लावनी-साहित्य म ऐसी अनेक विचार राशिया हैं जिनका शोधन करके, उन्हें साहित्य का अग बनाया जा सकता है और इस प्रकार वे विचार राशियाँ लोक साहित्य और उच्च साहित्य के मध्य एक कडी का काम दे सकती हैं ।

यद्यपि यथा-स्थान इस प्रकार के अनेक सकेत दे दिये गय हैं तथापि यहा भी अतीव सक्षेप मे कुछ विचार प्रकट किए जा रहे हैं।

गेयता—हिन्दी-साहित्य म गय पदो की न्यूनता नही है। लावनी की लोक-प्रियता मे भी गेयता' एक प्रमुख कारण है। यदि गेयता की दृष्टि से लावनी को साहित्य म मान्यता प्राप्त हो जाए तो निश्चित रूप स साहित्य म लावनी की एक अनुपम दन होगी।

परम्परा—यह सर्वविदित है कि लोक-साहित्य ने परम्पराओ का जितना अक्षुण्ण बनाए रखा है उतना सम्भवत उच्च-साहित्य ने नही। लावनी-साहित्य ने भी लौकिक परम्पराओ को जीवित रखने म अत्यधिक योग दिया है। गुरु शिष्य परम्परा आदि अनेक सामाजिक परम्पराओ का लावनी म अतीव सुरुचिपूर्ण चित्रण प्राप्त है। यद्यपि लावनीकारो न समाज के लिए हानिकारक अनक परम्पराओ पर कुठाराघात भी किय हैं तथापि वह सब स्वच्छ परम्पराओ क निर्माण एव परिपालन हेतु ही किया गया है।

भाषा, छन्द रस, अलकार आदि की दृष्टि स हमने पूर्णरूपेण प्रकाश तो दूसरे परिच्छेद म डाला है परन्तु इस परिच्छेद म भी लावनीकारो की रचनाओ के साथ आवश्यकतानुसार यथा-स्थान इन सब की चर्चा की गई है।

प्रबन्ध के अन्त म दिय गए 'उपसहार म भी स्पष्ट किया गया है कि भाषा की दृष्टि से लावनी भारत भर की प्राय समस्त भाषाओ म प्राप्त है। परन्तु हमारा सम्बन्ध केवल हिन्दी स ही है और हिन्दी भी कुछ निश्चित स्थानों की। इन निश्चित स्थानो की भाषा की दृष्टि से दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है— खडी-बोली मिश्रित हिन्दी और ब्रज भाषा मिश्रित हिन्दी। स्पष्ट ही है कि हरियाणा के लावनीकारों की हिन्दी खडी बोली मिश्रित और आगरा' क लावनीकारो की हिन्दी ब्रज भाषा मिश्रित है। एसा होने पर भी हरयाणा के लावनीकारो म विशेष रूप से प० शम्भुदास और प० अम्बाप्रसाद प्रभृति लावनीकारो की रचनाओ म ब्रज भाषा की सहज मिठास भी प्राप्त है और आगरा के प० रूपकिशोर और प० पन्नालाल तथा मौलवी मुहम्मद हुस्सन 'आशिक' की रचनाओ म ब्रजभाषा की प्रचुरता होन पर भी 'खडी बोली का आकर्षण स्पष्ट है। हमारे विचार मे यह सब दोनो स्थानो के लावनीकारों की निकटता का द्योतक है।

वास्तव म हिन्दी लावनी को हिन्दी के किसी निश्चित रूप मे नही बाधा जा सकता। किसी लावनीकार न हिन्दी की तत्सम शब्दावली को अधिक अपनाया है तो किसी न तद्भव शब्दो का प्रयोग प्रचुर मात्रा म किया है। कुछ लावनीकारों की रचनायें सस्कृतनिष्ठ हिन्दी मे उपलब्ध हैं तो कुछ लावनीकारो न केवल स्थानीय

बोली को ही प्रमुखता दी है। इस प्रकार लावनी मे भाषा के अनेक रूप दृष्टव्य हैं।

छन्द की दृष्टि स भी लावनी मे विभिनता के दर्शन होते हैं। जहाँ लावनीकारो ने लावनी के अन्तगत ही प्राप्त अनेक रगतो मे अपनी रचनाएँ की हैं वहाँ बीच-बीच म दोहा, चौपाई कवित्त आदि अन्य छन्दो का भी प्रयोग निस्सकोच किया है।

रस की दृष्टि से यद्यपि लावनीकारो ने श्रृगार रस के साथ विशेष क्रीडा की है तथापि प्राय समस्त रसो का लावनी साहित्य म अच्छा परिपाक हुआ है। भक्ति की दृष्टि से लावनीकारो न जिस पावन रस की गगा प्रवाहित की है, वह अनूठी है।

अलकारो मे भी लावनीकारो ने अनेक अलकारो को अपनाया है जिनकी चर्चा यथा अवसर कर दी गई है।

इस परिच्छेद का विशेष महत्व इस दृष्टि से भी है कि यहा विशेष ख्याति प्राप्त लावनीकारो का कालक्रमानुसार प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है तथा उनकी रचनाएँ भी उद्धरण स्वरूप दी गई हैं, जो साहित्यिक मूल्याकन की दृष्टि स अपना विशेष महत्व रखती हैं।

———

चौथा परिच्छेद

★

हिन्दी लावनी-साहित्य पर हिन्दी सन्त-साहित्य का प्रभाव

★

प्रथम खण्ड
पहला अध्याय

सन्त शब्द-विवेचन

'स त शब्द का प्रयोग भारतीय साहित्य मे अत्य त प्राचीनकाल से किसी न किसी रूप में होता रहा है। ऋगवेद छा दाग्य उपनिषद् ततिरीय उपनिषद् रामायण महाभारत श्री मद्भागवत्, श्रीमद्भागवद्गीता, कालिदास का साहित्य, भतृहरि शतक तथा आधुनिक आय भाषा की रचनाओं म इस शब्द का प्रयोग भिन्न भिन्न रूपों और अर्थों म उपलब्ध है। इस ऐतिहासिक क्रम से विचार करने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि भारतीय साहित्य म प्रयुक्त स त शब्द के अथ म तथा आधुनिक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत 'सन्त शब्द के अथ म कितना अ तर है। प० रामचन्द्र शुक्ल आदि कतिपय विद्वानों ने 'सन्त शब्द का अथ निगु णियें भक्त कवियो तक सीमित रखा है। प्राचीन साहित्य म ऋगवद छा दोग्योपनिषद तथा तैतिरीय उपनिषद् में सत् शब्द का प्रयाग एक वचन म एक एव अद्वितीय परम तत्व क लिए किया गया है।[1] वदिक सस्कृत साहित्य से लौकिक सस्कृत-साहित्य म आने पर 'सत्' शब्द के अथ म परिवतन हो जाता है। महाभारत लौकिक सस्कृत का काव्य है। उसकी सामाजिक दृष्टि और धार्मिक मूल्याकन की दृष्टि सभी विद्वानो द्वारा स्वीकार की गई है।[2] मानव जीवन म तथा मनुष्य म भी स तत्व का दशन महाभारत ने किया। भागवतकार ने भक्ति भावना और मनुष्य की आत्मिक शक्ति पर अधिक विश्वास करते हुए स त को पवित्रात्मा और तीर्थों को भी पवित्र करने वाला कहा

---

१ ऋग्वेद १० ११४ ५— सुपण कल्पयति।
छा दोग्योपनिषद्—द्वि० ख० १—सदेव सोम्येदमग्र, आसीदक मेवा द्वितीयम
ततिरीय उपनिषद्—२ ६ १— अस नेव विदुरिति।

२ महाभारत स सामा यतया उद्धत— आधार लक्षणो धम स तश्चाचार लक्षण'

है ।[1] मध्ययुगीन साधनात्मक साहित्य के मूलाधार श्रीमद्भगवद्गीता म सत् शब्द को 'सद्भाव और साधुभाव दोनो अर्थों म माना गया है ।[2] कवि कालिदास ने स तो के सदसद् विवेक की ओर सकेत किया है ।[3] शतककार भतृहरि न परहितरतत्व को 'सत' का लक्षण माना है ।[4]

य सभी प्रमाण वन्कि और लौकिक सस्कृत साहित्य से ग्रहण किये गये हैं । इनसे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय साहित्य के प्राचीनकाल (लगभग १०वी शताब्दी तक) म 'सत् शब्द के दो अथ उपलब्ध होत है । प्रथम तो परम तत्त्व के लिए तथा दूसरे उस विशिष्ट व्यक्ति के लिए जिसमे अनेक अनुकरणीय और ग्राह्य गुण हो । ये गुण भिन्न भिन्न परम्पराओ के अनुसार भिन्न है ।

'सन्त' शब्द के महात्मा सज्जन या विशिष्ट आध्यात्मिक व्यक्ति के अथ म प्रयोग का विस्तार प्राय सम्पूर्ण मध्य युगीन साहित्य मे विस्तृत क्षेत्र मे दृष्टिगोचर होता है । भक्ति आन्दोलन के उदय के साथ इस शब्द का सम्बन्ध मानव, महापुरुषो, साधको से हो गया और तत्पश्चात् इसकी महत्ता मे अनवरत वृद्धि होती गई । ज्ञान देव के समकालीन प्रसिद्ध स त नामदव ने 'स त शब्द को भक्त के लिए व्यवहृत किया था । उनके हिन्दी के पदो म प्रयुक्त स त शब्द को साधु भक्त आदि का पर्याय माना जा सकता है ।[5]

जहां तक आधुनिक भारतीय आय भाषा म हिन्दी स त शब्द क प्रयोग का प्रश्न है नामदेव सवप्रथम सत कवि है । इनके बाद के सभी सन्तो ने इनकी परम्परा का अनुसरण करते हुए इस शब्द का प्रयोग साधु भक्त आदि के लिए ही किया है । नामदेव के परवर्ती रामानन्द बेनी, कबीर नानक दादू सुन्दरदास (छोटे) दरिया साहब (बिहार वाले) शिवनारायण, भीखा पलटू आदि सन्तो ने 'सन्त शब्द का प्रयोग दो प्रकार स किया है । प्रथम तो सम्बोधन के रूप म, दूसरे स त की साधनागत जीवनगत विशेषताओ को उपलक्षित करने के प्रसग मे । बेनी, कबीर आदि स त-कवियो ने जहा अपनी साधना सम्बन्धी बातें कही है जहा अपने भक्ति सम्बन्धी विचार व्यक्त किये है, वहां उन्होने प्रमाण के लिए या इसकी पुष्टि के

---

१ भागवत—१ १९ ८ प्रायेण पुनति सन्त' ।

२ श्री० भ० भ० गी०—१७ २६—'सद्भाव साधुभावे च—सन्दित्येतत्प्रयुज्यते ।

३ कालिदास के नाम से प्रसिद्ध श्लोक—पुराणमित्येव न साधु सव न चापि काव्य नवमित्यवद्यम् । सत परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ पर प्रत्ययनेय बुद्धि । (सत अनुभव साक्षिक ज्ञान द्वारा सदसद् की परख करते हैं ।)

४ भतृहरि का श्लोक—सन्त स्वय परहिते विहिताभियोगा । (सन्त लोग पर हित मे लगे रहते हैं ।)

५ पजाबातील नामदव, ८६,७ १४५,५० तथा इनकी मराठी टीका ।

निमित सन्ता को सम्बोधित किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि इन सन्ता की दृष्टि मे 'सन्त आध्यात्मिक पक्ष से एक पूर्ण और आदर्श व्यक्ति है।'[1]

इस शब्द के दूसरे प्रकार के प्रयोग से उसके पारिभाषिक अर्थ का निश्चय करने म विशेष सहायता मिलती है। 'रामानन्द ने उसे सन्त माना है जो विभिन्न सासारिक विपत्तियो के बीच रहते हुए भी उनसे सघर्ष कर विजयी होता है।'[2] कबीर की दृष्टि म सन्त' माया जैसा है। माया उसकी दासी है। केवल सन्त ही ऐसा है जो माया को जीत सका है, अन्य सभी माया के दास है। वह पञ्चेन्द्रियो को वश मे रखता है। विषयो से पूर्ण तथा अलिप्त रहता है। सन्त अपनी साधना के पूर्ण होने पर विषया से अलिप्त रह कर हरि भजन म लीन रहते हुए मृत्यु होने पर भगवान के साथ एकाकारिता को प्राप्त कर लेता है।[3] सन्त मत के अनुसार (कबीर की दृष्टि म) सन्त नाम जप' की ओर ससार को प्रेरित करता है हरि भजन मे लगाता है। राम मुक्ति प्रदान करते हैं। कबीरदास राम और सत को एक मानते है। 'सत इस जगत मे राम नाम का व्यापार करता है। वह नरक और स्वर्ग का विचार नही करता। माया के प्रबल पापद कचन और कामिनी से वह तनिक भी प्रभावित नही होता। वह उनसे मुक्त और अलिप्त रहता है। वह राग, द्वेष, असतोष अधर्य आदि से सर्वथा परे तथा पक्षपात विनिर्मुक्त रहता है।'[4]

कबीर ने साधु और सन्त शब्दा को प्राय पर्याय के रूप म ही ग्रहण किया है। साधु निराकार परम तत्व का दर्पण होता है। सिद्ध और साधु का अन्तर बतलाते हुए कबीर ने समझाया है कि साधु आम की तरह दूसरा के लिए सरस फल है और सिद्ध' बबूल की तरह अपनी स्वार्थ साधना म लीन रह कर दूसरो के लिए शूल भी फलता है। 'सन्त ससार के दुखी जना म सुख शीतलता और शान्ति विकीर्ण करता है।'[5] सन्त को विवेकी, सारग्राही तथा निष्काम भक्त कहा गया है। उसे मुक्ति और मुक्ति नही चाहिए केवल भक्ति चाहिए। माया, कनक, कामिनी और मादक द्रव्या से वह सर्वदा मुक्त रहता है। सासारिक लोगा की तरह वह मनमुरीद नही

---

१ स० का० प० परशुराम चतुर्वेदी १३६१। क० ग्र०—७२७ १४,२४, १८२ ३१५ ८३ १६ ६८,२३,११०,७१ आदि।
'रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ'—६७।

२ रा० हि० र०—१६५८।

३ क० ग्र०—३३ १०, ८१२ २६०,१४४।

४ —वही—२७३ ३० २७७४४, २६७,११०, २४६,२, २५७,१११ १८७,४६। बीजक हसदास शास्त्री—१०४,१३८।

५ प० अयोध्यासिंह उपाध्याय—१२२ ३३४, १२३,३४०, १२४,३४६, ३५८ आदि।

होता, गुरु मुरीद होता है।[1] इस प्रकार कबीर की दृष्टि मे 'सन्त' वह साधक या सज्जन है जो राम नाम या राम भक्ति म स्वय लीन रहते हुए दूसरों को भी उसी की ओर प्रेरित करता है। वह ससार मे रहते हुए माया कचन, कामिनी विपयादि से सवथा दूर रहता है, अर्थात् वह जीवन मुक्त होता है। भक्ति ही उसकी सर्वोच्च आकाक्षा है। मृत्यु होने पर (भौतिक जीवन का नाशादीक्षा) वह परम तत्व से मिल कर एकमेक हो जाता है। गुरु के प्रति या उसके वचनो क प्रति उसके हृदय म अपार श्रद्धा होती है।

परवर्ती स तो ने 'सन्त शब्द' का प्रयोग अधिक स्पष्टता के साथ किया है। सुन्दरदास (छोटे) ने ब्रह्म, गुरु और सन्त को तत्वत एक माना है। श्रुतियो की वाणी को भी सन्तो की साक्षी देकर पुष्ट किया है। उन्होंने ब्रह्म का विचार करते समय उस निगुण और सगुण दो प्रकार का स्वीकार किया है। निगुण ब्रह्म का स्वरूप है और सगुण का अथ है ब्रह्म का सन्त रूप म अवतार। इसी प्रकार उन दोनो के लिए ग्राह्य पद्धति म भी भेद माना है। सुन्दरदास की दृष्टि मे निगुण की भक्ति मन से और सन्त (सगुण ब्रह्म) की भक्ति तन और मन दोनो से करनी चाहिए। सन्त सब जगह ब्रह्म का प्रत्यभिज्ञान करता है। सन्त ही इस ससार में मुक्ति प्रदान करता है। स त मुक्ति प्रदाता है। सन्त और हरि म कोई अन्तर नहीं। दोनो एक दूसरे म अन्तर्निविष्ट हैं।[2] सुन्दरदास के विचारो का निष्कर्ष यह है कि वास्तव म जो काय भगवान के अवतार सगुण विश्वासो के अनुसार किया करते हैं वही काय सन्त लोग इस ससार म करते हैं। एक प्रकार से यह श्रीमद्भगवद् गीता म विवेचित अवतारवाद की निगुण व्याख्या है। इस प्रकार सुन्दरदास की दृष्टि मे सन्त सासारिक जनो को हरि की ओर उन्मुख करता है तथा मुक्ति भी प्रदान करता है। वही मुक्ति का द्वार खोलता है। सत सगति और सन्त भक्ति से जीवन मुक्ति प्राप्त करता है।[3]

वह राम नाम के गुण और महिमा के गायन म सदव लीन रहता है। योग और भोग स परे सब को जीत कर सन्त अपना मत स्थापित करता है। वही नाम का प्रत्यभिज्ञान करता है। वह कममद नही, प्रेममद स मन्द मतवाला रहता है।[4]

---

१ —वही—१०१७८ ८१ १०२,६२ १२७३८७ १५०६६०। क० ग्र०—५०१।

२ सुन्दरसागर—२ ३, ११,११ १२, २६४,१७, २६४४८।

३ —वही—२६४१० २६४,१७

४ स० का०—दरिया ४६६ १।—वही—शिवनारायण, ४८५ १,।—वही—४८६ ४-४।

सन्त की ब्रह्म दृष्टि उद्घाटित रहती है। वह नामोपासना करता है। वह प्रेम पथ का पथिक है। उसका मन सदैव निर्गुण पद में निविष्ट रहता है। वह जोग की युक्ति, सुरति निरति तथा नाद बिन्दु के साम्य से स्थिर आसन भी प्राप्त करता है। वही सकल घट मे एकात्मकता का दर्शन करता है।[१] पलटू ने सन्त शब्द की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता से की है। उसकी दृष्टि मे सन्त के लिए भक्ति और प्रेम ही सब कुछ है। उसे न चार पदार्थ चाहिएँ न मुक्ति। ऋद्धि सिद्धि स्वर्ग नरक, तीर्थ, व्रत, उपवास, पुण्य तेज प्रताप आदि किसी की उसे इच्छा नही है। वह ज्ञान का खड्ग धारण कर ससार की विपत्तियो का नाश कर सासारिक दीन दुखी जनो को सुख और शान्ति प्रदान करता है। सम्पूर्ण जीवो का तारण-कार्य वही करता है। राम और सन्त मे कोई भेद नही।[२]

हिन्दी के मध्ययुगीन सगुण भक्ति साहित्य में भी सन्त शब्द का प्रयोग प्राय इन्ही अर्थों में मिलता है। तुलसीदास ने सन्त शब्द का प्रयोग साधु सज्जन के अर्थ में किया है। राम भक्ति करने वाले, राम भक्ति की गंगा मे स्नान करने वाले ही सन्त हैं। इस आधार पर सन्त और भक्त पर्याय हैं।[३] उनकी दृष्टि मे गुरु नर के रूप में हरि हैं। उन्होंने सन्त और सन्त-समाज का जो निरूपण किया है, उससे सन्त और गुरु में भेद नही होता। शब्दान्तर से कहा जा सकता है कि सन्त, गुरु और हरि तत्वत एक हैं। तुलसी ने सन्त के पर हितरतत्व और पर दुख कातरता की ओर भी सकेत किया है।[४]

सन्त और राम सम्बन्धी विचारो की परीक्षा करने मे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन लौकिक और वदिक साहित्य में 'सत्' शब्द ही एक वचन और बहु वचन में प्रयुक्त मिलता है। दो अर्थों में से प्रथम अर्थ में सत्' शब्द परम तत्व का निर्देशक है तथा दूसरे अर्थ में 'सत्' शब्द अच्छा या साधु अर्थ का व्यक्त करता है। मध्ययुगीन सन्त साहित्य में सन्त वह साधक है जो पक्षपात रहित, हरिप्रेमी ब्रह्म स्वरूप, ब्रह्म का सगुण रूप, परमार्थ सेवी गुरु भक्त तथा अन्तस्साधना का समर्थक होता है।

मध्यकालीन भक्ति साहित्य के दो प्रमुख ग्रन्थ हैं—गुरुग्रन्थसाहिब और भक्तमाल। प्रथम तो भक्तो की रचनाओ का सग्रह ग्रन्थ है और दूसरा ग्रन्थ भक्तो का चरित्र कोष है। यह निश्चित है कि लगभग १७वी शताब्दी तक इन ग्रन्थो का

---

१ —वही— भीखा ४६४ २, ४६६ ८।

२ —वही— पलटू ५२६ १३, ५३२ १२।

३ रा० च० मा०, १–२, ५।

४ —वही— सो० १ सो० ४, दो० १–३।

५ —वही— सो० ७ १२५।

निर्माण, समाकलन, सम्पादन आदि हो गया था। गुरु ग्रन्थ साहिब में सिक्ख गुरुओं की रचनाओं के अतिरिक्त अन्य भक्तों की रचनाएँ भी संगृहीत हैं।[1] जितनी सामग्री अभी तक प्राप्त है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिक्ख गुरुओं के अतिरिक्त जितने भक्तों की रचनाएं इस ग्रन्थ में संगृहीत हैं वे, सभी निर्गुणी सन्त है। सूर और मीरा जैसे भक्तों की भी जो रचनाएँ संगृहीत है, वे अन्य भक्तों की रचनाओं की प्रकृति के अनुकूल हैं। 'भक्तमाल' नाम के दूसरे ग्रन्थ में भक्त शब्द सगुण मार्गी और निर्गुण मार्गी दोनों के लिए प्रयुक्त है। भक्तमाल का 'भक्त शब्द' सन्त शब्द का पर्याय माना जा सकता है। नाभादास के भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने टीका के आरम्भ मे भक्ति का जो विवेचन किया है उस पर ध्यान रखना आवश्यक है। भक्त, हरि, गुरु और हरिदास के प्रति सच्चा होता है तथा एक टेक वाला होता है। श्रद्धा कथा श्रवण, मनन, दया प्रण हरि नाम साधु सेवा आदि भक्ति के तत्व होते है।[2] इस प्रकार के लक्षणों से निर्गुण मार्गी और सगुण मार्गी दोनों सन्त लक्षित किये जा सकते है। भक्तमाल का यह 'भक्त गुरुग्रन्थसाहिब के भगतों' से भिन्न है। गुरु ग्रन्थ साहिब का भक्त निर्गुणी सन्त साधक है जबकि भक्तमाल का भक्त केवल सन्त है। पहले के विवेचन को ध्यान में रखने से ज्ञात होता है कि 'सन्त' शब्द भक्त का पर्याय है जैसा कि नाभादास मानते हैं।

आधुनिक विचारकों और इतिहासकारों में प० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी की विभिन्न विचारधाराओं और प्रवृत्तियों का विभाजन और विवेचन करते हुए भक्ति की चार शाखाओं में से कबीरादि की परम्परा को निर्गुणी ज्ञान मार्गी भक्तों की परम्परा माना। तुलसी आदि को सन्त शब्द से सम्बोधित नहीं किया। इससे प्रतीत होता है कि उनकी दृष्टि में सन्त शब्द निर्गुणी भक्त का पर्याय है।[3] उन्होंने निर्गुणोपासकों और सगुणोपासकों का भेद ब्रह्म के अव्यक्त और नाम रूपात्मक व्यक्त रूप में माना है।—[4] निर्गुण मार्गियों में से कबीरादि ने स्वामी रामानन्द के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किए। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिए।[5] यह सामंजस्य सगुण

---

१ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी—भाई सोहनसिंह, पृ० ४६—
सिरी राम भगत बेणी जीउ की।
पृ० १७४— राग गउडी भगता की वाणी।

२ भ० मा० (सटीक) कवित—३ छप्पय १ की टीका।

३ हि० सा० इ०—प० रामचन्द्र शुक्ल, भक्तिकाल का सामान्य परिचय।

४ हि० सा० इ०—प० रामचन्द्र शुक्ल, भक्तिकाल का सामान्य परिचय, पृष्ठ ६६-७०।

५ —वही—पृ० ७०।

मार्गिया मे नही मिलता। इस प्रकार शुक्ल जी का 'सन्त' योग प्रेम प्रभृति अहिंसा समन्वित भक्ति का साधन करने वाला ज्ञानमार्गी भक्त है। मध्य युगीन सन्तों की रचनाओं म प्रयुक्त 'सन्त' शब्द का जो विवेचन किया गया है, उससे उपलब्ध अथ से यह थी शुक्ल का अथ सवथा भिन्न है। शुक्ल जी की दृष्टि मे यह 'सन्त' शब्द का पारिभाषिक प्रयोग हो सकता है।

डा० पीताम्बर दत्त बडथवाल न 'सन्त' शब्द पर विस्तार से विचार कर यह निश्चित किया है कि पालि म प्रयुक्त 'सन्त' तथा श्रीमद्भगवद्गीता म प्रयुक्त 'सन्त' शब्द क्रमश शान्तिवादी तथा 'साधु' एव 'सज्जन' अर्थों म अत्यधिक व्यापक हैं।[1] इसके दूसरे पर्याय निगण मत पर विचार कर उन्होंने उसे सूफी मत और निरजन मत से सवथा भिन्न माना है। निरजनी मत अनेक देवताओ म विश्वास करता है तथा श्रद्धा प्रकट करता है। सूफियों को भी निगुण मत से सवदा अलग माना क्योंकि ये लाग नबियों, रसूलो आदि के प्रति पूर्ण श्रद्धा व्यक्त करते हैं एव प्रत्येक इस्लामी तत्त्व को सादर ग्रहण करते हैं।[2] भक्ति काल की अन्य तीन शाखाओ से निगुण मत का भेद यह है कि यह मत परम्परा निरपेक्ष है तथा अन्य मत परम्परा सापेक्ष। जिस सस्कृति और समाज म व्यक्ति पलता है उसम अतीत से आने वाली विचार परम्परा और आचार परम्परा का एक अक्षराथ होता है। उसे लेकर समथन करने वाला व्यक्ति परम्परावादी कहलाता है। स्वानुभूति से अतीत और वतमान दोनो का परीक्षण करके चलने वाला व्यक्ति परम्परा निरपक्ष माना जाता है। वह भले ही शास्त्र चातुय की दृष्टि से किसी पुरान प्रचलित शास्त्र विचार पर अपनी अनुभूति की मुहर भी लगाए अथवा व्याख्या से अपना समथन दे दे। वस्तुत यह मत सगुणवादियो की तरह मूर्तियो और अवतारो के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित नही करता।[3] साधक, साधु सज्जन, भक्त आदि शब्दो के पर्याय के रूप म सन्त शब्द को स्वीकार करने वालो मे डा० बडथवाल भी हैं, किन्तु उस शब्द का अपने विवेचन के लिए उपयुक्त न समझ कर उन्होंने निगुण शब्द का प्रयोग उसके एक निश्चित अथ म किया है।

डा० बडथवाल द्वारा निरूपित परिभाषा की पुष्टि प्राचीन और आधुनिक दोनो साहित्यो से होती है। १७वी शताब्दी के भक्त चरित्र कोष 'भक्तमाल' म नाभादास ने कबीर के विषय मे कहा है—'कबीर कानि राखी नही वर्णाश्रम षट दरसनी'[4] —यहाँ कानि का अथ महत्त्वपूण है। कबीर ने छह दशन (साख्य, योग, पूव मीमासा

१ दि निगुण स्कूल आफ हिन्दी पोएट्री—डा० बडथ्वाल, प्रीफेस, पृ० ११।
२ —वही— प्रीफेस, पृ० १–२।
३ हि० का० नि० स०—डा० बडथ्वाल, अनु० प्रस्तावना—पृ०–ग–ड।
४ दि निगुण स्कूल आफ हिन्दी पोएट्री, डा० बडथ्वाल, प्रीफेस, पृ० २।

उत्तर मीमांसा, न्याय, वशेषिक) की मर्यादा नही रखी। वर्णाश्रम व्यवस्था की मर्यादाओं का पालन नहीं किया।[1]

आधुनिक विवेचकों म प० चन्द्रबलि पाडेय न 'बेशरा' के आधार पर इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया है। उनका कहना है—'सूफी शब्द के भीतर उन सभी हिंदी कवियो को समेट लेना चाहिए जो वस्तुत जन्म से मुसलमान और कर्म से सूफी हो।— सीधा सी बात तो यह थी कि जसे हिन्दू भक्त कवियो को निर्गुण और सगुण म बाट दिया गया था, वसे ही सूफी कवियो को भी 'बेशरा' और बाशरा' के भेद से विभाजित कर दिया गया था। 'बेशरा' का ही दूसरा नाम 'जिंद' अथवा 'आजाद' बताया गया था—हमारी धारणा म 'ज्यन्त का जिन्दीक' है। जिन लोगो ने सूफी साहित्य का अध्ययन किया है, उन्होंने स्वत देख लिया है कि इसी 'जिन्दीक' की छाप से कितने सूफी शूली पर चढ़े हैं और कितने तलवार के घाट उतारे गए हैं। जिन्दीक' इस्लाम के आततायी हैं उनका वध विहित है। प्रकट है कि कबीर पर भी यही जिंदीक की छाप लगी है और उन्ह भी काजी इसी से प्राणदण्ड दे रहा है।[2] कबीर जन्म से मुसलमान थ यह अब तक की प्राप्त सामग्री व वन पर प्राय सभी विद्वानो ने स्वीकार कर लिया है किन्तु कबीर कमणा बेशरा सूफी थे, यह अति विवादास्पद प्रश्न है। इस मत से अभी इतना ही ग्राह्य है कि कबीर बेशरा', जिंद, आजाद, या स्वतन्त्र चेता थे। उन्होंने किसी प्रकार की इस्लामी परम्परा को स्वीकार नहीं किया। मुसलमान होने के कारण और उस कुल म जन्म लेने के कारण जिसम 'गोवध विहित माना जाता था, हिन्दू परम्परा को भी स्वीकार नही किया था।[3] इस प्रकार कबीर को सन्त साधना और दर्शन का केन्द्रबिन्दु मान लेने पर नाभादास का मत अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

डा० बडथ्वाल के 'निर्गुणियाँ' शब्द के स्थान पर अब सन्त' शब्द का ही प्रचलन अधिक है। सन्त, सन्तमत सन्त परम्परा, सन्त साहित्य जसे शब्दो ने अब क्रमश 'निर्गुणियाँ, निर्गुणतम 'निर्गुण पन्थ', या निर्गुण सम्प्रदाय' एव निर्गुण धारा या साहित्य के स्थान ले लिए हैं। अत अब सन्त शब्द निर्गुणी के अर्थ को व्यक्त करने म पूर्ण समर्थ हो गया है।[4] पहले ही बताया जा चुका है कि सन्त शब्द का

---

१ श्री म० भा० (सटीक)—नाभादास भक्ति सुधास्वाद तिलक सहित पृष्ठ ४८५, छ० स० ६०। टीकाकार ने पाद टिप्पणी म 'षटदर्शनी' के कई अर्थ उद्धृत किए हैं। छ० स० ५६ की पाद टिप्पणी पृ० ४७०—१ उपनिषद्, २ न्याय ३ कर्मकाण्ड ४ तत्त्व विवेचन ५ योग ६ स्मृतियाँ। छह शास्त्र—वेदान्त तक मीमांसा सांख्य पातंजल तथा धर्मशासनमित्येत् प्राहु शास्त्राणि षड्बुधा।'

२ वि० वि० प० चन्द्रबलि पाडेय जिंद कबीर की संक्षिप्त चर्चा, पृ० १, ८।

३ वि० वि० प० चन्द्रबलि पाडेय 'जिन्द कबीर की संक्षिप्त चर्चा पृ० ३४।

४ हि० का० नि० स०, अनु०, भूमिका, प० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २१।

प्रयोग जिस रूप मे आजकल होता है वह बहुत प्राचीन नही है। ऋग्वेदादि म तथा परवर्ती लौकिक सस्कृत साहित्य म 'सन्त' शब्द ही विभिन्न रूपो म 'अस्तित्व वाला (या सद्भाव) और 'साधु' अर्थों मे व्यवहृत मिलता है। आज का 'सन्त शब्द इस 'सत्' शब्द का तद्भव रूप है। 'साधु' के अर्थ मे प्रयुक्त होकर सत्' शब्द मध्य-युगीन हिन्दी के भक्ति साहित्य मे 'भक्त' का पर्याय हो गया था। इससे वर्तमानकाल म वह परम्परा निरपेक्ष 'भक्त' या 'निर्गुणी' अर्थ को व्यक्त करने म पूर्ण समर्थ हो गया है।

नाभादास ने कबीर की साधना के वैलक्षण्य की ओर भी महत्त्वपूर्ण सकेत किया है। 'सन्त शब्द के इस व्यापक अर्थ की सीमा म नाथो को भी ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु १७वी ई० श० म भी नाभादास न कबीर को तत्कालीन अन्य साधना पद्धतियो स अलग कर दिया था। उनका कथन है—

भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम करि गायो।
जोग जग्य व्रत दान, भजन विन तुच्छ दिखायो॥[1]

ध्यान देने योग्य है कि इन अधर्मो मे 'योग की भी गणना कर ली गई है। प्रकारान्तर स इसी बात की पुष्टि आधुनिक विद्वानो न भी की है। शुक्ल जी न कई बार इसे पुष्ट कर कहा है कि 'नाथ पंथियो की अन्तस्साधना हृदय पक्ष शून्य थी, उसम प्रेम तत्त्व का अभाव था तथा इसम कोई सन्देह नही कि कबीर ने समय पर जनता के उस बडे भाग को सभाला जो नाथ पंथियो के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस से शून्य और शुष्क पडता जा रहा था।[2]

सन्त' का प्रयोग प्राय बुद्धिमान, पवित्रात्मा, सज्जन, परोपकारी व सदाचारी व्यक्ति के लिए किया गया मिलता है और कभी-कभी साधारण बोलचाल म इस भक्त, साधु व महात्मा जैसे शब्दो का भी पर्याय समझ लिया जाता है। परन्तु कुछ लोग इसे शान्त शब्द का रूपान्तर ठहराते हैं और कहते हैं कि उस विचार से इसका अभिप्राय 'श सुख ब्रह्मानन्दात्मक विद्यते अस्य' के 'ब्रह्मानन्द सम्पन्न व्यक्ति' होना चाहिए। बौद्धो के पालि भाषा म लिखित प्रसिद्ध धर्म ग्रन्थ— धम्मपद' म भी यह शब्द कई स्थलो पर शान्त' के अर्थ म ही प्रयुक्त हुआ दीख पडता है।[3]

यद्यपि 'सन्त शब्द सम्बन्धी उपरोक्त विस्तृत विवेचन से प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों की तत्सम्बन्धी मान्यताएँ एव धारणाएँ भली भाँति स्पष्ट हो गई हैं तथापि इस प्रबन्ध के विषय के स्पष्टीकरण की दृष्टि स सन्त' शब्द सम्बन्धी हमारे 'मत का ज्ञापन करना भी हम आवश्यक समझते हैं। 'सन्त शब्द विषयक हमारा स्पष्ट 'मत इस प्रकार है —

---

१ भ० मा० (सटीक)—नाभादास, भक्ति सुधास्वाद तिलक सहित, पृ० ४८५, छ० स० ६०, पृ० ४८६।

२ हि० सा० इ० प० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६४।

३ उ० भा० स० प० पृ० ३, परशुराम चतुर्वेदी।

'सत्' या 'शात' शब्द से विकसित यह 'सत' शब्द एव ऐसे व्यक्ति का द्योतक है जो स्वभाव स शात है जिसका आचरण शुद्ध एव पवित्र है। जो सज्जन, परोपकारी, महान आत्मा, साधु स तोषी क्षमाशील, कष्ट-सहिष्णु भक्त सद्‌विचारी मितभाषी मधु भाषी और विवेकशील है तथा धार्मिक दृष्टि से जो आदर्श पुरुष के रूप म हमारे समक्ष आता है उसे सन्त' कहा जा सकता है। चाहे कोई व्यक्ति निगुण को माने या सगुण पर विश्वास कर, चाह वह द्वैतवादी है या अद्वैतवादी। चाहे वह राम या रहीम किसी की भी भक्ति, करता है। चाह उसकी मान्यतानुसार यह विश्व नश्वर है या अनश्वर। चाह वह आत्मा को ही परमात्मा या परमात्मा को ही आत्मा माने, परन्तु प्राणी मात्र के लिए जिसके हृदय म स्थान है, स्नेह है, श्रद्धा है, सद्भाव है वही हमारी दृष्टि मे स त है महात्मा है साधु है। सक्षेप मे महात्मा तुलसीदास के शब्दो म स त व हैं, जिनक वियोग स कष्ट होता है और 'अस त व हैं जिनके मिलन से दारुण दु ख होता है।'[१] यही कारण है कि हमने इस 'शोध प्रबन्ध म यद्यपि निगुण भक्त कविया पर विशेष दृष्टि रक्खी है तथापि निगुण सगुण ज्ञानमार्गी, प्रेम मार्गी, राम मार्गी और कृष्ण मार्गी सभी की प्रकरण वश चर्चा की है।

साहित्य शब्द विवेचन

यद्यपि हमने 'साहित्य शब्द विवचन प्रथम परिच्छेद म भी सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया है तथापि प्रसगवश साहित्य शब्द पर सक्षिप्त विवचन यहाँ भी अप्रासगिक न होगा।

सस्कृत भाषा म काव्य और साहित्य शब्द बहुधा समान अर्थो म प्रयुक्त हुए है। साहित्य दपण म काव्य के दृश्य और श्रव्य दो भेदा के पश्चात् श्रव्य के गद्य एव पद्य दो भेद बताकर गद्य को भी काव्य की सीमा मे रक्खा गया है। वह गद्य रसात्मक वाक्य अवश्य है किन्तु विस्तृत विवेचन विश्वनाथ तथा अन्य आचार्यो के द्वारा पद्य काव्य का ही किया गया है क्योकि काव्य के लक्षण पद्य काव्य म ही विशेष रूप से विद्यमान रहते हैं। काव्य के विविध स्वरूपा का व्यापक विवेचन करने वाले नाट्यशास्त्र, काव्यालकार काव्यादर्श, ध्वन्यालोक, काव्य मीमासा, काव्य प्रकाश, प्रभृति ग्रन्था को अलकार ग्रन्था के नाम स निर्दिष्ट किया जाता है और इन सभी के विषय को अलकार शास्त्र की सज्ञा दी जाती है परन्तु किंचित ध्यानपूर्वक देखन से यह विदित हो जाता है कि अलकार शास्त्र से अलकार के विशेष विवेचन का ही अभिप्राय निकलता है। इसी प्रकार किसी भी विषय विशेष के वणन को हम तत्सम्बन्धी ही ग्रन्थ कहते हैं परन्तु साहित्य शब्द अतीव व्यापक है, यह किसी

---

१ मिलत एक दारुण दुख देही।
बिछुरत एक प्राण हर लेही॥ रा० च० मा०

विशिष्ट विषय मे आबद्ध नहीं है । सब सुरुचिपूर्ण पठनीय सामग्री को ही 'साहित्य' नाम स अभिहित किया जाता है ।

डा० भगवानदास न अपन लेख 'रस मीमासा' म इस प्रकार लिखा है

"हितेन सह सहितम्, तस्य भाव साहित्यम् । तथा
सह एव सहितम् तस्य भाव साहित्यम् ॥

'द्विवदी अभिनन्दन ग्रन्थ के पृष्ठ ३ पर 'साहित्य' शब्द की व्याख्या इस प्रकार हुई है

'एसा वाक्य समूह, ऐसा ग्रन्थ जिसको मनुष्य दूसरा के सहित, गोष्ठी म अथवा अकेला ही सुने, पढ़े तो उसे रस आवे, स्वाद मिले, आनन्द हो, तृप्ति तथा आप्यायन भी हो । बिना विशेषण के 'साहित्य' शब्द जब कहा जाता है तब उसका अथ काव्य-साहित्य ही समझा जाता है ।'[1]

साहित्य कहीं-कहीं काव्य शास्त्र के अथ म भी प्रयुक्त हुआ है । जसे—'साहित्य—(सहित+य—भावे आदि) । स० की ससग, मिलना, शब्द शास्त्र, काव्य शास्त्र, सम्बन्ध विशेष, एक क्रियान्वयित्व ।'[2]

राजशेखर के समय (९०० वष पूव ईसा) इस शब्द का प्रयोग काव्य शास्त्र के अथ में होने लगा था ।'[3]

'बहुधा साहित्य और काव्य य दोना शब्द एकाथवाची ही देखने म आते हैं ।'[4]

व्याकरणाचाय भत हरि ने भी अपने निम्नलिखित श्लोक म सम्भवत साहित्य शब्द का काव्य क अथ मे ही लिया है

साहित्य सगीत कला विहीना साक्षात्पशु पुच्छ विषाण हीना
तृणन्न खादन्नपि जीव मानस्तद् भागधेय परम पशूनाम् ॥

क्योंकि जन-साधारण के लिए साहित्य-शास्त्र के ज्ञान की सम्पन्नता असम्भव है जब कि काव्य का आस्वाद सभी के लिए सम्भव है । अत साहित्य का अथ यहा काव्य ही हो सकता है । इसी प्रकार 'साहित्य दपण' काव्य प्रकाश आदि ग्रन्था के

---

१ द्विवदी अभिनन्दन ग्रन्थ —पृष्ठ ३ ।
२ (क) प्रकृतिवाद (बगला शब्द कोष—साहित्य शब्द के अथ)
  (ख) हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—पृ० ४—पाद टिप्पणी—डा० भगीरथ मिश्र—
३ अलकार पीयूष उत्तराद्ध, पृष्ठ—६ ।
४ काव्य प्रभाकर—११ मयूख—पृष्ठ—६५५ ।

नामा से भी इस बात की पुष्टि होती है। यस तो 'साहित्य श-" की व्याख्या के लिए बहुत कुछ लिखा जा सकता है अनेक विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा भी है, परन्तु हमारा उद्देश्य केवल संक्षिप्त परिचय मात्र देना है ताकि हम यह कहने म सुविधा हो सके कि साहित्य ना-द यद्यपि गद्य पद्य दोनों के लिए ही प्रयुक्त होता है तथापि विशेष रूप स इस श ' का प्रयोग काव्य क अर्थ म ही आता है। यहाँ यह कहने से हमारा मन्तव्य केवल इतना ही है कि हमने 'सन्त साहित्य गब्द' का भाव सन्तों की गद्य पद्य आदि सभी रचनाओं से लेते हुए भी सन्तों की काव्य सम्बन्धी रचनाएं ही विशेष रूप से लिया है, क्योंकि हम लावनी-साहित्य और सन्त-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना चाहते हैं और लावनी-साहित्य लिखा ही पद्य मे गया है, एतदर्थ सन्त-साहित्य का भी 'काव्य-सम्बन्धी अर्थ ही हमे अधिक अभीष्ट है।

इस सन्त' एव 'साहित्य'—विवेचन के साथ-साथ भक्ति-विषयक भी स्वल्प विचार कर लेना हमारे प्रसगानुकूल ही होगा एतन्थ भक्ति के विकास एव निर्गुण सगुण आदि पर विहगम दृष्टिपात कर लेना उचित जान कर हम यहाँ भक्ति का विकास —विषयक सामग्री प्रस्तुत कर रहे हैं।

दूसरा अध्याय

भक्ति का विकास

अंग्रेज विद्वानो ने आधुनिक काल म अंग्रेजी भाषा म 'भक्ति' के ऊपर पर्याप्त परिमाण मे लिखा है। विभिन्न भारतीय विद्वानो ने भी भक्ति का विवेचन करते समय अधिकांशत उन्ही का अनुसरण किया है। भक्ति माग पर लिखत समय डा० ग्रियसन ने जो अपने विचार व्यक्त किए उसी का बाद मे अनेक प्रकार से खण्डन मण्डन, सशोधन परिवधन होता रहा। उनके अनुसार भक्ति माग नाम हिन्दू मत के उन सम्प्रदायो के लिए प्रयुक्त होता है जो मुक्ति के साधन के रूप मे केवल भक्ति को ही स्वीकार करते हैं। इस भक्ति को उन्होने डिवोशनल फेथ कहा है।[1] यह माग ज्ञान और प्रेम माग से विपरीत है। आधुनिक वष्णव हिन्दू धम के मूलाधार के रूप म, उन्होने इस माग को ग्रहण किया है। भक्ति के मूल 'भज्' धातु से निष्पन्न शब्द 'भगवत और 'भागवत्' हैं। परमोपास्य के लिए भगवत् और परमोपास्य के लिए भक्ति करने वाले व्यक्ति के लिए भागवत् शब्द का प्रयोग किया गया है। अंग्रेजी म इसे क्रमश 'एडोरेबुल और वर्शापर आफ दा एडारेबुल' कहा गया है। शाडिल्य को उद्धत कर बताया गया है कि परमोपास्य के गुणो के ज्ञान से, एक विशेष प्रकार की शक्ति के रूप म 'अनुरक्ति' का उदय होता है। इस 'भक्ति' शब्द की परिभाषा करना सरल नही है। प्राय इसे 'फेथ' (डिवोशनल फेथ भक्तिपूण प्रतीति) शब्द से व्यक्त किया जाता है। अकेला 'फेथ' शब्द तथा अकेला ही 'डिवोशन' शब्द भक्ति के पूरे अर्थ को व्यक्त करने म असमथ हैं। डा० ग्रियसन के इस पद को हम अपने शब्दो म इस प्रकार कह सकते हैं—

'भक्ति प्रतीति के उत्पन्न हो जाने पर उदित होती है। डिवोशन' (उपासना) यद्यपि भक्ति का एक आवश्यक तत्त्व है तथापि यहाँ साम्प्रदायिको द्वारा निर्दिष्ट किया जाने वाला भाव गृहीत है। डा० ग्रियसन के डिवोशन शब्द का उपासना' तथा फेथ' शब्द का 'प्रतीति' पर्याय स्वीकार किया जाय तो 'भक्ति वह भाव है जिसकी निष्पत्ति 'उपासना' और पूण प्रतीति की निष्पत्ति हो जाने पर होती है।

भक्ति' की उत्पत्ति के विषय म डा० ग्रियसन ने बताया है कि 'प्रतीति' के आलम्बन के रूप म एक सगुण उपास्य (पसनल डिटी) की आवश्यकता होती है।

---

१ डिवोशनल फेथ शब्द से भाव, श्रद्धा, उपासना और प्रतीति इन सबकी ओर एक साथ सकेत प्रतीत होता है।

प्रारम्भिक उपनिषदों में बहुदेववादी ब्राह्मणवाद का प्रकाशन हुआ है। इससे इस भाव की कोई तुलना नहीं की जा सकती है। बाद में ई० पू० चतुर्थ शताब्दी में बौद्ध ग्रन्थों में 'ईश्वरोन्मुख प्रेम' के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। पाणिनी और श्रीमद्भगवद्गीता (ई० पू० की प्रथम दो शताब्दी) में इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग मिलता है। भक्ति-प्रपूरित प्रतीति से केवल 'सगुण या उपास्य' का ही बोध नहीं होता, अपितु एक ईश्वर का भी ज्ञान होता है। यह वस्तुतः भक्ति के धार्मिक अर्थ का ही एकेश्वरवादी दृष्टिकोण है। इस धार्मिक अर्थ में प्रयुक्त भक्ति शब्द ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के पूर्व या रही है।[1]

डा० भण्डारकर ने 'भक्ति' पर विचार करते हुए बताया है कि वैष्णवमत पहले बौद्ध मत और जैन मत की भाँति ही एक धार्मिक सुधार के रूप में प्रकट हुआ था। इस धर्म के मूलाधार ईश्वरवादी सिद्धान्त थे। इस प्राचीन धर्म का नाम एकान्तिक धर्म है जिसमें एकान्त मन से केवल एक परम तत्त्व की प्राप्ति प्रेम की 'भक्ति' (डिवोशन) माना गया है। इस धर्म की पृष्ठभूमि में श्रीमद्भगवद्गीता थी जिसमें वासुदेवकृष्ण ने उपदेश दिया है। आगे चलकर शीघ्र ही उसने एक साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया। इसे पाञ्चरात्र या भागवत् धर्म कहा गया। सर्वप्रथम यह सात्वत नाम की क्षत्रिय जाति के द्वारा स्वीकार किया गया था। ईसा की लगभग चतुर्थ ईस्वी शताब्दी में इस धर्म को एक वर्ग विशेष के रूप में देखा गया था। उस समय इसका सम्बन्ध नारायण नामक एक ऋषि से जोड़ दिया गया। ये नारायण नर के स्रोत हैं। इस धर्म को विष्णु से भी सम्बन्धित कर दिया गया। इनका स्वरूप रहस्यमय था। जिस भगवद्गीता की बात ऊपर कही गयी है उसमें उपनिषदों के भी उपदेश हैं। साथ ही उसमें दो दर्शन—साङ्ख्य और योग—के सिद्धान्त भी उपदिष्ट हैं। ये साङ्ख्य और योग उस समय तक दो स्वतन्त्र मतवादों के रूप को प्राप्त नहीं कर सके थे। ईस्वी के आरम्भ के बाद ही, आभीरों द्वारा एक नया गोपाल कृष्ण तत्त्व उस धार्मिक मतवाद में सन्निविष्ट किया गया। इन आभीरों का एक विदेशी जाति से सम्बन्ध था। ये गोपालकृष्ण एक देवता के रूप में स्वीकार किये गए। इस प्रकार निर्मित वैष्णव मत आठवीं ईस्वी शताब्दी तक चलता रहा। उसी समय शङ्कराचार्य एवं उनके अनुयायियों ने आध्यात्मिक अद्वैतवाद और मायावाद का परिवर्तन एवं प्रसार किया। इन तत्त्वों को भक्ति अथवा प्रेम तत्त्व का विरोधी एवं बाधक माना गया। ये वैष्णव मत के लिए सर्वथा प्रतिकूल थे।[2]

---

१ एन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एथिक्स वा० २, पृ० ५३९ ५४०, जार्ज ए० ग्रियर्सन द्वारा लिखित भक्ति मार्ग लेख

२ कलेक्टेड वर्क्स आफ आर० जी० भण्डारकर वा० ४। 'वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम्स, पृष्ठ १४२ १४३।

आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने ग्रियर्सन और भण्डारकर द्वारा उपस्थित किये गए विकास के अनेक तथ्यों को स्वीकार करते हुए भी, उनकी कुछ स्थापनाओं का खण्डन किया है। भक्ति सम्बन्धी व्याख्या मे शुक्ल जी ने मानव जीवन के धर्म पक्ष का मुख्य रूप मे विवेचन किया है। उनके अनुसार भक्ति मार्ग धर्म का हृदय है। 'भक्त' श्रेष्ठ धार्मिक है। उसकी विशेषता यह है कि वह धर्म के रसात्मक स्वरूप के साक्षात्कार की उन्नत भावना के उपरान्त पहुँचा है। असभ्य दशा मे भय और लोभ की प्रेरणा से देवताओं की पूजा नामक के रूप मे की जाती थी। सभ्यता के आगमन के पश्चात उस देवता के द्वारा किये गए उपकारों के कारण उसके प्रति कृतज्ञता का भी भाव रहने लगा। ऐसे देवताओं की उपासना मे धर्म के रूप का आभास मिलता है। उपास्य के इस उपकारी स्वरूप के भीतर अखिल विश्व के पालक और रक्षक भगवान के व्यापक स्वरूप की भावना का विकास हो गया। असभ्य जातियो मे देवता—कुल देवता, वन देवता आदि तक ही सीमित रहे। जिन जातियो मे कुल देवता मे ही पूर्ण ईश्वर का आरोप करके, पीछे एकेश्वरवाद चला, उनमे उसका स्वरूप कुछ संकुचित रहा।[1]

नारद ने अपने भक्ति सूत्र मे भक्तिस्वरूप भक्ति प्राप्ति निरोध, काय, लक्षण भक्ति श्रेष्ठता, भक्ति साधन, त्याज्य, प्रेमस्वरूप, भेद प्रमाण, लोक वेद विधि निषेध भक्तवाद, शास्त्र आदि का विचार किया है। नारद द्वारा निरूपित भक्ति का अर्थ ईश्वर मे परम प्रेम है। परम प्रेम ही इस भक्ति का रूप है। वह भक्ति अमृत स्वरूपा है जिसको लाभ कर पुरुष सिद्ध अमृत तृप्त हो जाता है। इसे प्राप्त कर वह न किसी की वस्तु की इच्छा करता है न किसी से दुखी होता है न किसी से द्वेष करता है, न किसी मे रमता है न किसी वस्तु (के भोग) मे उसे उत्साह ही होता है। इस भक्ति (के स्वरूप के) ज्ञान से वह (मस्त) मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है, वह अपने मे ही रमण करने लगता है।[2]

निर्गुण और सगुण भक्ति

मध्य युग मे साधना दो रूपो मे विकसित हुई थी—निर्गुण और सगुण। निर्गुणोपासना-पद्धति शुद्ध वैष्णव नही रह पाई। उस पर अपने युग की समस्त साधनाओं और विचारधाराओं का पूरा-पूरा प्रभाव पडा। तन्त्रमत नाथ पथ और निरंजन पथ ने उसका स्वरूप ही बदल दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह वैष्णव होते हुए भी उससे भिन्न प्रतीत होने लगी। इसके विपरीत सगुणोपासना

---

१ सूरदास—प० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ३ ।।

२ ना० भ० सू०' स्वामी त्यागीशानन्द का संस्करण सूत्र २ ६।

सभी प्रभावो मे विनिमुक्त रहने के कारण शुद्ध वष्णव ही बनी रही। सन्ता के दो वग अलग अलग इन उपासनाओं को लेकर चले। इन दोनो ही वर्गों के सन्तो मे काव्यत्व का सम्यक स्फुरण हुआ। दोनो ही हिन्दी साहित्य की विभूति बने। एक वग सगुण धारा के नाम से प्रसिद्ध हुआ और दूसरा निगुण धारा के नाम से।

'सगुण और निगुण धाराओ का मौलिक भेद रूपोपासना से सम्बन्धित है।'[1] निगुणिया सन्त हृत्यस्थ द्वताद्वत विलक्षण अलख निरजन निगुण ब्रह्म के उपासक थे। उनका वह निगुण ब्रह्म रूप ओर आकार से विहीन पुष्प की सुगन्ध से भी सूक्ष्मतर और अनिवचनीय है।[2] परन्तु वह वेदान्तियों के ब्रह्म के समान शुष्क तत्त्व मात्र नही है और न बौद्धो का शून्य ही है। वह सूक्ष्मतर और अनिवचनीय होते हुए भी करुणामय गरीबनिवाज भक्त वत्सल है। भक्तो के भगवान की इन विशेषताओं के होने पर भी वह उनसे भिन्न है। भक्तो के भगवान बाहरजामी है, पर इनके राम 'अन्तरजामी' हैं। अन्तरजामी होते हुए भी व भक्तो को दशन देते है।[3] उनका वह रूप अनिवचनीय होता है। भक्त उसका वणन नही कर सकता और यदि वह इसका प्रयास भी करे तो उसे कोई समझ नही सकता। यदि थोडा बहुत समझने भी लगे तो उसे उस पर विश्वास नही होता।[4] इस प्रकार हम देखते है कि सन्तो का निगुण उपास्य रूपवान और अरूप होते हुए भी दोनो से विलक्षण है। इसके विपरीत सगुणवादियो का उपास्य मानवो के बीच उन्ही के रूप मे रहता है। मानव जीवन की सम्पूर्ण शक्ति सारा सौन्दय और समस्त शील का पूण प्रादुर्भाव उन्ही मे मिलता है। यही कारण है कि एक उपास्य केवल अनुभूति और साधनागम्य मात्र होने के कारण रहस्यपूण है[5] और दूसरे का प्रत्यक्ष होने के कारण प्रेम और श्रद्धा का पात्र है।

भगवान का प्रथम रूप केवल बुद्धिवादी साधको को ही आकृष्ट कर सकता है जब कि उनका दूसरा रूप सम्पूण सृष्टि को तन्मय और रस मग्न करने की क्षमता रखता है। उपास्य रूप सम्बन्धी इस अन्तर ने निगुण और सगुण काव्य धाराओ को बिल्कुल पृथक कर रखा है।

---

१ म० का० ध० सा०, पृ० २३०, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

२ क० ग्र—पृष्ठ ६०।

जाके मुह माथा नही नाही रूप अरूप।
पुहुप बासते पातरा, ऐसा रूप अनूप॥

३ —वही—पृष्ठ १५ कबीर दखा एक सग महिमा कही न जाई।'

४ क० ग्र०, पृष्ठ १७। 'दीठा है तो कस कहू कहया न कोई पतियाई।'

५ निगुण सन्तो के प्रतिनिधि—कबीर रहस्यवाद के लिए डा० गोविन्द त्रिगुणायत—द्वारा लिखित कबीर और जायसी का रहस्यवाद दशनीय है।

निर्गुण और सगुण भक्ति मे अन्तर

निगुण और सगुणवादी कवियो मे स्वभावत अतर भी दृष्टिगोचर होता है। निगुणवादी कवि अधिकाशत शान्त-दर्शी, सत्यान्वेषी, अक्खड, फक्कड और घुमक्कड होते थे। इनके व्यक्तित्व की य विशेषताएँ, उनकी रचनाओ में स्पष्ट प्रतिविम्बित हैं। इसके विपरीत सगुणवादी कवि अधिकतर सामन्जस्यवादी, रूढिवादी, प्रिय-सत्यवादी और प्रेमी जीव होते थे। उनके व्यक्तित्व की इन विशेषताओ न उनकी रचनाओ को निगुणियाँ कवियो की रचनाओ की अपेक्षा अधिक कोमल राग रजित और मधुर बना दिया है। इस दृष्टि से निर्गुण काव्य धारा और सगुण काव्य धारा भिन्न कही जा सकती हैं। निगुण एव सगुण काव्यो मे हम रस सम्बन्धी अतर भी दृष्टिगत होता है। निगुण काव्यधारा भक्ति, शान्त और वीर[1] की वह त्रिवेणी है जिसमे अवगाहन कर मानवजाति अपने युग-युग के कालुष्यों का प्रक्षालन कर सकती है। इसके अतिरिक्त सगुण-काव्यधारा म हम शृगार और भक्ति के मधुमय सुहाग से उद्भूत भाव रूपी शिशु की रसमयी लीलाओ का वैभव मिलता है। उस वभव की अनुभूति मात्र से ही मानव का चित्त मानस दृप और आह्लाद से खिल उठता है। एक धारा पतित पावनी है और दूसरी आनन्द विधायनी। यही दोनो म अतर है। इसके अतिरिक्त दोनो म बुद्धिकान्तिा और विचारात्मकता है परन्तु सगुण काव्यधारा परम भाव प्रवण, श्रद्धा मूलक और अनुमति प्रधान है। दोनो धाराओ म साधना और सिद्धि सम्बन्धी भी अतर है। एक म उन सभी साधनों और प्रयत्नो का उल्लेख किया गया गया है जिससे आनन्द ब्रह्म की उपलब्धि हो सकती है। दूसरे म स्वय आनन्दस्वरूप ब्रह्म का ही वणन किया गया है। सगुण कवियो का लक्ष्य भगवान के सगुण, साकार एव आनन्दमय रूप की मधुमयी झाँकी का उद्घाटन करना था। इसके विपरीत निगुण कवियो का उद्देश्य अपने अपन सहृदयस्थ 'मुनि मडल वासी पुरुष' की रहस्यानुभूति करना था। सगुण एव निगुण धारा के इन भेदो ने ही एक दूसरे को परस्पर पृथक किया हुआ है।

प० रामचन्द्र शुक्ल ने निगुण सगुण की चर्चा करते हुए नारायण को सगुण ब्रह्म बतलाया है। नारायण को नर का रूप धारण करने वाला सगुण ब्रह्म कहते हैं। लोक के रक्षण और मडल विधान के लिए इसकी ही उपासना को वे भारतीय परम्परा की उपासना या भक्ति माग कहते हैं, यद्यपि इसम ब्रह्म का अव्यक्त रूप भी स्वीकार किया जाता है। तात्पय यह है कि उपासना के लिए अवतार को आलम्बन के लिए ग्रहण करना ही पडता है बिना उसके मुक्ति हो ही नहीं सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि शुक्ल जी के मत से जब तक ब्रह्म निराकार न हो तब तक उसकी

---

१ भारतीय साहित्य की सास्कृतिक रेखाएँ—(१९५५) प० परशुराम चतुर्वेदी—पृ० ६५ १०८

उपासना असम्भव है । यदि हो तो भी तो वह न तो पूण ब्रह्म की उपासना है और न भारतीय है । सम्भवत उनकी दृष्टि म सगुण ब्रह्म का उपासनात्मक अथ अवतार है, किन्तु सगुण का यह अथ ऊपर के किन्ही भी प्राचीन शास्त्रो के विवेचन मे नही मिलता । अहिबुध्न्य सहिता म यह कहा गया है कि केवल ब्रह्म से अन्दर स उत्पन्न सर्वातिरिक्त एव अलौकिक साक्षात् अवतारो की ही उपासना मुक्ति प्राप्ति के लिए करनी चाहिए, परन्तु वहाँ कोई ऐसा सकेत नही है कि अनावतरित सगुण ब्रह्म की भक्ति नही हो सकती, अथवा वह भारतीय नही है । अनेक अवतारा म से किसी को साक्षात् अवतार किसी को अंशावतार और किसी को शेषावतार आदि कहा गया है । भिन्न भिन्न ग्रन्थो म, भिन्न रूपा म इनकी उपासना के विधि निषेध मिलते हैं ।[1]

श्री टी० एम० पी० महादेवन ने श्री शुक्ल के विचारा पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि—

"भक्ति के विभिन्न आचार्यों ने भी निगु ण सगुण शब्द का विवेचन किया है । सक्षेप मे सकेत कर, हम यह बताना चाहते हैं कि शुक्ल जी के अथ परम्परानुकूल और शास्त्रानुकूल हैं कि नही ? शकर जसे अद्वतवादिया के मत से जिनका भक्ति के परवर्ती आचार्यो ने कठोर खडन किया था, ब्रह्म का निवचन नही किया जा सकता, नेति-नेति से ही वह निवचित हो सकता है, परन्तु इसका यह अथ नही है कि ब्रह्म शून्य है । प्रत्येक निषेध वाचक शब्द निषेध व्यापार के द्वारा ही उसके सद्भाव की पुष्टि करता है । यह सत्य है कि ब्रह्म निगु ण और निर्विशेष है परन्तु इससे यह अभिप्राय नही है कि वह नो स्वरूप है । उपनिषद् ब्रह्म के स्वरूप क विषय म बत लाते हुए, उसे सत् चित्त और आनन्द कहते हैं । उसको तत्वमसित पद से भी सम्बो धित करत है । निगु ण ब्रह्म के उपदेश के साथ उपनिषदा मे सगुण ब्रह्म का भी आदेश दिया है । इसके अनुसार ब्रह्म विश्वाधार है, उसी स सभी जीव सत्तावान होते हैं, उसी म निवास करते हैं और अन्तत उसी म प्रलयीभूत होते है । इस प्रकार से सम्बद्ध होकर ब्रह्म को ईश्वर भी कहा जाता है । चेतन प्राणिया और अचेतन पदार्थों का ससार ब्रह्म का गुण है । ब्रह्म इस समार का निमित्त और उपादान कारण दोनो है ।[2] इस स्वल्प निगु ण सगुण विवेचन से हमारा उद्देश्य केवल निगु ण सगुण सम्बन्धी कुछ साहित्यिक एव आध्यात्मिक परिचय देना है विस्तारपूवक लिखना नही, क्योकि इस सम्बन्ध म भी पहले से ही अत्यधिक विवचन भिन्न भिन्न विद्वाना द्वारा किया जा चुका है । चाहे आप निगु ण पर विश्वास करें या सगुण को मानें, हमारे विचार से दोना ही साधक की अपनी श्रद्धा एव भावानुसार उसे सन्तोष, सुख, प्रसन्नता और

---

१ ए हिस्ट्री आफ इडियन फिलासफी वा० ३, पृ० ३८ ३६ ।

२ आउट लाइन्स आफ हिन्दूइज्म—टी० एम० पी० महादेवन—पृष्ठ— १४७ १४८ ।

शांति आदि प्रदान करते हैं। हमने अपने इस शोध प्रबन्ध के लिए निर्गुणिया सन्त कबीर को विशेष रूप से अपने समक्ष रखा है।

यद्यपि सन्त साहित्य मे, कबीर साहित्य को ही प्रमुख मानकर लावनी-साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के लिए चुना गया है तथापि साधारण रूप से अन्त मे सगुणोपासना का प्रभाव भी संक्षेप मे दर्शाया गया है। आगामी पृष्ठो मे कुछ इसी प्रकार की सामग्री प्रस्तुत की जा रही है।

इससे पूर्व कि सन्त कबीर की रचनाओ पर विवेचन किया जाए अन्य निर्गुणियाँ सन्तो पर विहगम् दृष्टिपात् कर लेना अप्रासंगिक न जान कर, तत् सम्बन्धी 'एक विवेचन' दिया जा रहा है।

निर्गुण धारा के सन्त (एक—विवेचन)

हिन्दी की भक्तिकालीन निर्गुण धारा की ज्ञान मार्गी शाखा का व्यवस्थित विवेचन सर्व प्रथम प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे किया था। उन्होने वस्तु की साहित्यिकता को मुख्य लक्षण मानकर ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियो पर विचार किया। इस शाखा की परम्परा मे उन्होने कबीर रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, दादूदयाल सुन्दरदास, मलूकदास तथा गुरु गोविन्दसिंह की गणना की है। केवल प्रसंग के रूप मे उन्होने जगजीवनदास, तुलसी साहब, भीखा साहब और पलटू का नाम लिया है। इन कवियो मे परम्परा की दृष्टि से, उन्होंने कबीर, नानक और दादू को प्रमुख माना है। डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल ने निर्गुण पथ का विवेचन करते हुए सन्तो की परम्परा मे उन्ही निर्गुणियाँ सन्तो को स्थान दिया है जिन्होने या तो प्रारम्भिक सन्त मत के सिद्धान्तो की भूमिका उपस्थित की या सिद्धान्त स्थिर किये अथवा आगे जिन लोगो ने सन्त मतान्तर्गत किसी सम्प्रदाय या पथ विशेष का प्रवर्तन किया। उनकी दृष्टि इस विवेचन मे साधनात्मक, रहस्यवादी, दार्शनिक और साम्प्रदायिक रही। कबीर को निर्गुण मत का एक निश्चित रूप देने वाला स्वीकार कर, उसके पूर्व के जयदेव, नामदेव त्रिलोचन, रामानन्द तथा इनके अतिरिक्त पीपा, सधना, धन्ना, सेन, रैदास आदि का परिचय देने के बाद, कबीर नानक, दादू प्राणनाथ, बाबा लाल, मलूकदास दीन दरवेश, यारी और उनके अनुयायी जगजीवनदास द्वितीय पलटू धरणीदास दरियाद्वय, बुल्लेशाह चरणदास, शिवदयाल और तुलसी साहब का विवेचन किया। इनमे से प्रारम्भिक कवियो को उन्होंने प्रस्तावक या भूमिका उपस्थित करने वालो के रूप मे तथा शेष को सन्त मत का प्रवर्तन करने वाले अग्रदूतो के रूप मे विचार्य समझा। इनमे बारह सन्त कवि ऐसे हैं जो अपने साधनात्मक वैशिष्ट्य और साम्प्रदायिक महत्ता के बल पर ही स्थान पा सके हैं। इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सन्तो की परम्परा मे वे भक्त उपासक गृहीत होते हैं जो कबीर द्वारा उपदिष्ट निर्गुण पथ की विचारधाराओ को स्वीकार करते हुए निर्गुण पथ के

अन्तगत किसी विशेष मत या सम्प्रदाय के प्रवतक हुए । ये सभी निगुणी और भक्त थे।[1]

प० परशुराम चतुर्वेदी ने सन्त परम्परा म इन भक्त कवियो को ग्रहण करने के कारण बताते हुए कबीर को ही केन्द्र बिन्दु मानकर सन्त परम्परा का विचार किया। उनकी दृष्टि म इस परम्परा के अन्तगत प्राय व ही उपासक सम्मिलित किये जाते ह जिन्होने (१) सन्त कबीर साहब अथवा उनके किसी अनुयायी को अपना पथ प्रदशक माना हैं। (२) उनमे ऐसे सन्तो की भी गणना करली जाती है जिन्होने उनके द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तो को किसी रूप म अपनाया है। (३) इसके सिवाय उसम कभी कभी वैसे महात्माओ को भी स्थान दिया जाता है जो सूफी, वेदान्ती सगुणोपासक भक्त जनी या नाथपथी समझ जाते हुए भी अपने विचार स्वातन्त्र्य एवम निरपेक्ष व्यवहार के कारण सन्त मत म माने जाते रहे हैं।[2] चतुर्वेदी जी ने इन श्रणियो क उदाहरण नही दिये हैं। केवल इतने विवरण से दूसरी और तीसरी श्रणी म कोई तात्त्विक अन्तर प्रतीत नही होता। सन्त साहित्य का निर्माण करने वाले सन्तो के छोटे बडे सम्प्रदाय लगभग २५ थ जिनम से सर्वाधिक प्रतिभा सम्पन्न और व्यवस्थित सम्प्रदाय थे—कबीर पथ, नानक पथ दादू पथ और बावरी पथ। इन सम्प्रदायो क कुछ सन्त ऐसे ह जिन्होने दीक्षा तो अन्य सन्त मतेतर गुरुओ से ली थी परन्तु उनकी रचनाओ म कबीरादि का प्रभाव स्पष्ट रूप स दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण क लिए नामदेव और दीन दरवश ने यद्यपि दीक्षा तो नाथ पथ म ली थी किन्तु उनके उपदेश निगुण पथ के अनुकूल हैं। चतुर्वेदी जी ने दीन दरवश को सूफी भी माना है।[3] हरिदास निरञ्जनी जो निरजनी सम्प्रदाय के प्रवतक थे भी पहले नाथ पथ म दीक्षित थे तथा उन्होने अन्य सम्प्रदायो का भी आश्रय लिया था।

हमने भी अपने इस शोध प्रबन्ध म कबीर को ही केन्द्र बिन्दु मानकर निगुण धारा के ज्ञान मार्गी शाखा के प्रतिनिधि के रूप म विशेष रूप से कबीर की रचनाओ का ही लावनी साहित्य पर प्रभाव दिखाने की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करने का दृष्टिकोण अपने समक्ष रक्खा है।

निर्गुण काव्य धारा के प्रमुख सन्त कवि

कबीर (सम्वत् १४५५ १५७५)—हिन्दी की निगुण काव्य धारा के प्रवतक एव प्रतिनिधि कवि सन्त कबीर का जीवन वृत्त अति विवाद ग्रस्त है। कुछ पाश्चात्य

---

१ दि निगुण स्कूल आफ हिन्दी पोएट्री—पृ० २४।
२ स० का०—प० परशुराम चतुर्वेदी प्रस्तावना—पृ० ८
३ हिं० सा० इ०—पृ० ६७ ६८। उ० भा० स० प०—पृ० ६२२।
४ उ० भा० स० प०—पृ० ४६४।

विद्वानो ने तो कबीर के अस्तित्व पर ही सन्देह किया है परन्तु इस प्रकार की धारणा को हम भ्रांतिमूलक ही कह सकते हैं। हमारे विचार से सन्त कबीर हम लोगो के मध्य उसी प्रकार अवतरित हुए थे जैसे अन्य अनेक महापुरुष और महात्मा हुए हैं। होते है। भारत के महामानवो म उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।[1]

कबीर की जन्मतिथि का निर्देश 'कबीर चरितबोध' म किया गया है। इसके अतिरिक्त गुलाम सरवर ने अपनी 'खजीन अतुल असफिया'[2] म भी कबीर की जन्म तिथि का निर्देश किया है। प्रथम ग्रन्थ के अनुसार उनका (कबीर का) जन्म सम्वत् १४५५ म हुआ था और दूसरे ग्रन्थ म उनका जन्म सम्वत् १५६४ लिखा गया है। अन्तर्साक्ष्य म कही भी उनकी जन्मतिथि का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। एक कथन से यह अवश्य स्पष्ट होता है कि वे[3] जयदेव और नामदेव[4] के परवर्ती थे। जयदेव और नामदेव का समय क्रमश बारहवी और तेरहवी शताब्दी के अन्तिम चरण म माना जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि कबीर चौदहवी शताब्दी के प्रथम चरण म या तेरहवी शताब्दी के अन्तिम चरण म हुए थे। सन्त कबीर सिकन्दर लोदी और रामानन्द के समकालीन थे। कबीर ने स्वय भी इन दोनो की अनेक स्थानो पर इसी ढग से चर्चा की है जैसे वे इनके समकालीन रहे हो। रामानन्द का समय १३८५ से १५०५ के मध्य माना जाता है।[5] सिकन्दर लोदी का समय सम्वत् १५४६ से १५७४ के लगभग स्वीकार किया गया है।[6] यदि हम कबीर चरित बोध' की तिथि स्वीकार कर लें और कबीर की आयु १२० वर्ष मान लें तो सरलतापूर्वक वे दोनो के समकालीन सिद्ध हो जाते हैं। परन्तु आर्कियालोजीकल सर्वे म दी हुई कबीर का रोजा बनवाये जाने की तिथि की समस्या रह जाती है। आर्कियालोजीकल सर्वे आफ इंडिया म लिखा है कि बिजली खा ने सम्वत् १५०७ म कबीर का रोजा बनवाया था। यदि इस दृष्टि से स० १५०७ या इससे पूर्व कबीर की मृत्यु मान ली जाए तो उनकी आयु केवल ५२ वर्ष का अनुमान ही रह जाती है और ऐसी दशा में वे सिकन्दर के समकालीन भी नही कहे जा सकते परन्तु अन्तर्साक्ष्य के आधार पर इन दोनो का

---

१ क० च० बो० पृ० ६।

२ खजीन अतुल असफिया पृष्ठ १२६।

३ ब्रह्मनिज्म एण्ड हिन्दूइज्म—मौनियर विलियम पृष्ठ १४६।

४ 'वष्णविज्म शविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम्स'—डा० भंडारकर पृ० ९२।

५ 'कबीर की विचारधारा डा० गोविन्द त्रिगुणायत पृष्ठ ३० ३१।

६ 'हि० सा० आ० इ०—डा० राम कुमार वर्मा पृ० ३३५।

७ आर्कियालोजीकल सर्वे आफ इन्डिया (यू सीरीज), नार्थ वेस्टन प्राविंसेस, भाग २, पृ० २२४।

समकालीन होना प्रमणित हो चुका है ।[1] हमारे विचार से कबीर के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए भी कबीर के जीवन काल में ही बिजली खाँ द्वारा उनका स्मारक बनवाया जाना सम्भव है । डा० बडथ्वाल के अनुसार उनका (कबीर) जन्म सम्वत् १४०७ से १४४७ तक किसी समय होना चाहिए । डा० हंटर के अनुसार कबीर की जन्मतिथि सम्वत् १४३७ और वेस्टकाट के अनुसार सम्वत् १४४७ है किन्तु डा० त्रिगुणायत डा० सरनाम सिंह प्रभृति विद्वान इनकी जन्म तिथि सम्वत् १४५५ मानते हैं आजकल यही तिथि अधिक मान्य एवं प्रचलित समझी जाती है । वैसे कबीर पंथी तो संत कबीर की आयु तीन सौ वर्ष तक की मानते हैं परन्तु यह बात कबीर पंथी लोगों का कबीर के प्रति श्रद्धा का द्योतन ही करती है इसमें सत्यता के दर्शन नहीं होते । कबीर के जन्म के विषय में सर्वाधिक प्रसिद्ध यह पद उद्धृत किया जाता है—

चौदह सौ पचपन साल गये ।
चन्द्रवार एक ठाठ ठये ॥
जेठ सुदी बरसाइत को, पूरनमासी प्रकट भये ॥

उपर्युक्त पद्यानुसार कबीर का जन्म सम्वत् १४५५ ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष पूर्णमासी सोमवार को हुआ । परन्तु ज्योतिष गणनानुसार सम्वत् १४५५ में ज्येष्ठ पूर्णिमा को सोमवार नहीं आता, हाँ सं० १४५६ में ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार को अवश्य पड़ती है । अतः 'चौदह सौ पचपन साल गये' का अर्थ सं० १४५५ के बीत जाने से लगाया गया है । पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इसी आधार पर कबीर की जन्म तिथि ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार सं० १४५६ निश्चित की थी ।[2]

हमारे विचार से कबीर का जन्म सम्वत् १४५५ में ही हुआ था और उन्होंने सौ वर्ष से अधिक आयु प्राप्त की थी । अनन्तदास ने भी अपनी परिचई में कबीर की आयु १२० वर्ष ही बतलाई है ।[3] वैसे, कबीर जैसे संयमी महात्मा के लिए

---

१ क० ग्र० पृ० २०३—

अति अथाह जल गहिर गम्भीर ।
बांधि जंजीर ठाढे हैं कबीर ॥
जल की तरंग उठ कहि है कबीर ।
हरि सुमरत तट बैठे हैं कबीर ॥

(इस पद में सिकन्दर लोदी द्वारा कबीर पर किये गए अत्याचारों का स्पष्ट संकेत है ।)

२ क० ग्र० प्रो० पुष्पपाल सिंह पृ० १२ ।

३ 'हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि'—डा० गोविन्द त्रिगुणायत पृ० २७ ।

इतनी आयु प्राप्त कर लेना कोई असम्भव बात भी प्रतीत नहीं होती। इस दृष्टि से उनकी निधन तिथि सं० १५७५ ठहरती है। 'कबीर कसौटी' और 'कबीर एण्ड दी कबीर पंथ' के लेखक ने भी कबीर की निधन तिथि सं० १५७५ ही मानी है। कबीर के जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी लोगों के भिन्न भिन्न विचार हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार कबीर बनारस (काशी) में उत्पन्न हुए थे परन्तु कुछ के अनुसार उनकी जन्म भूमि 'मगहर' थी और वे बाद में काशी आए थे। डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने कहा है कि मेरी यह दृढ़ धारणा है कि उनकी (कबीर की) जन्म भूमि 'मगहर थी।'[1] संत कबीर ने स्वयं भी एक स्थान पर लिखा है कि सारा जीवन तो काशी में व्यतीत किया परन्तु मरते समय 'मगहर' चले गए थे।[2] एक दूसरे स्थान पर उन्होंने यह भी लिखा है कि मुझे जीवन में सर्वप्रथम मगहर के दर्शन हुए थे, बाद में मैं काशी में जा कर बस गया।[3] वास्तव में यह मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह अपनी जन्म भूमि में ही मरना चाहता है। सम्भवतः इसीलिए कबीर भी अन्त समय में 'मगहर' चले गए हों और वहीं परलोकगामी हो गए हों। चाहे जो भी हो, कबीर के विषय में इतना तो निश्चित सत्य है कि कबीर अपने समय के एक विलक्षण प्रतिभाशाली, साहसी एवं क्रान्तदर्शी महापुरुष थे।

कबीर की रचनाएँ

कबीर की रचनाओं का सर्वप्रथम संग्रह प्रकाशन गुरु ग्रंथ साहिब में हुआ था किन्तु अतिरिक्त रचनाओं का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा से डा० श्यामसुन्दर दास ने विभिन्न हस्तलिखित पोथियों के आधार पर किया। पहले दावा किया गया था कि कबीर की इन रचनाओं का सम्पादन जिस हस्तलेख के आधार पर किया गया है, वह सं० १५६१ का है। परन्तु डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी और पं० परशुराम चतुर्वेदी आदि ने अनेक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि यह हस्तलेख पर्याप्त परवर्ती है। डा० द्विवेदी ने उसका लेखन-काल अठारहवीं शताब्दी माना है।[4]

---

१ "हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि"—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—पृष्ठ—२७।

२ 'सं० क०'—राग गउडी—१८

> सगल जनम शिवपुरी गवाइया।
> मरती वार मगहर उठि धाइया॥

३ 'सं० क०—राग रामश्री—३

> पहले दरसन मगहर पाया,
> पुनि काशी बसे आई।

४ (क) उ० भा० सं० प०—पृ० १७८ १७९।
(ख) 'कबीर' श्री द्विवेदी—पृ०—१९ २०।

इसी प्रकार डा० रामकुमार वर्मा ने 'सन्त कबीर' नामक संग्रह का सम्पादन किया है जिसका प्रकाशनकाल सम्वत् २००० है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने भ्रमण कर विभिन्न साम्प्रदायिक और असाम्प्रदायिक स्रोतों से कबीर की वाणियों का संग्रह कर उसे चार भागों में प्रकाशित किया था, जिसके चुने हुए सौ पदों का अनुवाद 'वन हण्डेड पोएम्स आफ कबीर' नाम से रवीन्द्रनाथ ठाकुर और मिस अण्डरहिल ने किया था। श्री सेन महोदय ने वाणियों का बंगला में भी अनुवाद किया है।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'कबीर' नामक ग्रन्थ के परिशिष्ट में आचार्य सेन के संग्रह से (अन्य संग्रहों से भी) रचनाएं संगृहीत कर उन पर अतीव महत्त्वपूर्ण व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ भी दी हैं। बल्वडियर प्रेस, वेंकटेश्वर प्रेस, नवलकिशोर प्रेस आदि से कबीर की अनेक रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं जिनका मुख्य आधार साम्प्रदायिक क्षेत्रों में तथा जन सामान्य में प्रचलित कबीर की वाणियाँ हैं। इनके अतिरिक्त विचारदास इस्लाम अहमद शाह प्रेमचन्द विश्वनाथ सिंह आदि ने साम्प्रदायिक दृष्टि से सर्वाधिक मान्य और पूज्य रचना 'बीजक' का सम्पादन, व्याख्या अनुवाद भाष्य आदि किया है जिसके ऊपर विद्वानों ने विस्तार से विचार किया है।[1] इस प्रकार कबीर की रचनाओं के तीन संग्रह इस समय अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक रूप में उपलब्ध हैं—गुरु ग्रन्थ साहब बीजक और कबीर ग्रन्थावली। इनमें से गुरु ग्रन्थ साहब में संगृहीत रचनाओं में तथा कबीर ग्रन्थावली की रचनाओं में अधिक समानता है। बीजक की रचनाएं इन दोनों में से किसी से भी अधिकांशतः मेल नहीं खाती। इन तीनों में भी सबसे अधिक प्रामाणिक संग्रह 'गुरु ग्रन्थ साहिब' ही है। कबीर साहब की रचनाओं के संग्रहों के विस्तृत परिचय के लिए यहां उचित अवसर एवं अवकाश नहीं है और ऐसा करना हमारा उद्देश्य भी नहीं है क्योंकि तत्सम्बन्ध में पहले ही पर्याप्त शोधकार्य हो चुका है। अब हम अपने मुख्य विषय 'लावनी साहित्य पर प्रभाव'—सम्बन्धी चर्चा करने के लिए आगे के पृष्ठों में कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि 'हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सन्त साहित्य' का प्रभाव बहुमुखी है।

---

१ कबीर एण्ड हिज फालोअर्स—पृ०—५९ ६०।
कबीर साहित्य की परख—प० परशुराम चतुर्वेदी—पृ०—७७ ८०।

तीसरा अध्याय

हिन्दी लावनी साहित्य पर हिन्दी सत-साहित्य का प्रभाव

हमने प्रथम परिच्छेद म सत कबीर आदि की रचनाओ के कुछ उद्धरणो से स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि सन्त कवियो न स्वय भी 'लावनी' को अपनाया था। एतन्य स्वाभाविक ही था कि परवर्ता लावनी साहित्य पर सत साहित्य का प्रभाव पडता।

डा० महेन्द्र भानावत ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान के तुर्रा कलगी' म तत्सम्बन्धी विचार इस प्रकार व्यक्त किय हैं

'तुर्रा—'कलगी' के मूल भावो का आधार सिद्धो और नाथो की दार्शनिकता रहा है। परवर्ती सतो की परम्परा से इस क्षेत्र की चन्दिसा मे निर्धारित प्रतीको और रूपको वाली पन्नावनी का समावश हुआ है। स्पर्धा म विजय पाने के उद्देश्य स दाना ही पक्ष पुराणो, उपनिषदो, कुरान की आयतो और अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थो से प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। वेदान्त, योग न्याय और आध्यात्मिकता के साथ रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखाओं की सूत्र वद्धता एव निगुण निराकार के उल्लेख भी यथा स्थान प्रस्तुत किय जाते हैं। कलगी-तुर्रा म जहाँ तक दार्शनिक मतभेदो का प्रश्न है, शिव शक्ति सम्बन्धी विवेचना का आधार परवर्ती नाथ सिद्धो की विकृत शाखाओ म निहित प्रतीत होता है।'[1]

उक्त 'उल्लेख से स्पष्ट है कि लावनी साहित्य पर नाथो और सिद्धो एव सन्तो का ही नही, अपितु रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखा के सगुण भक्त कवियो का भी प्रभाव पडा है। हमारा मत भी इसी प्रकार का है। हम अपने मत की पुष्टि हेतु कुछ शीर्षको के अन्तगत यहाँ विवेचन प्रस्तुत कर रहे है।

१ सतो और लावनीबाजो मे परिस्थिति साम्य

'परिस्थिति साम्य स यहाँ हमारा उद्देश्य उनकी व्यक्तिगत एव सामाजिक परिस्थितियो स है।

---

१ महाराष्ट्र की सुप्रसिद्ध नाटय विधा तमाशा, डा० श्याम परमार,
(क) सम्मेलन पत्रिका भाग ५३, सख्या १-२ पृष्ठ ३४।
(ख) राजस्थान के तुर्रा कलगी —डा० महेन्द्र भानावत, पृष्ठ—१७। भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर।

(१) सत कवियो के विषय म सर्वविदित है कि प्राय सभी सत कवि निम्न जातियो से सम्बद्ध थ। इसी प्रकार लावनीबाजा म भी कुछ को छोड कर अन्य निम्न एव निधन परिवारो से ही सम्बन्धित रहे है।

(२) शिक्षा की दृष्टि से जहाँ कबीर आदि ने कागद मसि को स्पश तक नही किया वहाँ लावनीबाजा म भी एस अनेक लावनीबाज हुए है, जिन्होने कभी किसी पाठशाला के दशन तक नही किय। यदि उन्होने कभी कोई शिक्षा ली है ता वह जीवनरूपी विद्यालय से ही ली है। इस दृष्टि से जहाँ सन्तो न अपन जीवन क अनुभव अपनी कविताओ म गाय वहाँ लावनीबाजा ने भी जीवन की अनुभूति को ही अपना आधार माना।

(३) जहाँ सन्तो म हिन्दू मुस्लिम का भेदभाव त्याग कर सभी ने एक 'मानव' क रूप म भगवान क गुण गाये, वहाँ लावनीबाजो म भी हिन्दू और मुसलमान सभी को अपने अखाडा म समान अधिकार रहा है।

(४) जहाँ मौलवी मुहम्मद हुसन 'आशिक' ने मुसलमान होकर वीर हकीकतराय जैसी लावनियो की रचना की वहाँ प० पन्नालाल और बा० ओकार प्रसाद जसे लावनीकारो ने हिन्दू होत हुए भी हसन और हुसन की शहीदियाँ लिखकर हिन्दू मुस्लिम एकता का सूत्रपात किया। श्री रिशालगिर महाराज द्वारा गाई जाने वाली (मुसलमानो की सभा म) शहीदी ने तत्कालीन समस्त मुस्लिम समाज को रुला दिया था और मुसलमानो ने उन्हें (उनक द्वारा शहीदी सुनकर) बहुत सम्मानपूवक पुरस्कार देकर विदा किया।

५ सन्त कवि लोकानुभूति के आधार पर अपनी रचनाए लोक के समक्ष स्वय गाकर सुनाते थ तो लावनीबाज भी लोकानुभूति के आधार पर ही अपनी लावनियाँ जन मानस के समक्ष रखते रहे ह।

६ सन्तो ने जो भी कुछ गाया और सुनाया, उसमे समाज सुधार की भावना भल ही अन्तर्निहित रही हो परन्तु साथ की साथ उनकी अपनी एक मस्ती थी उनका अपना एक स्वाभिमान था, जिसकी सुरक्षा क लिए वे किसी सम्राट तक की भी परवाह नही किया करत थ—यही बात लावनीबाजो मे रही है, उनकी मस्ती और स्वाभिमान को कही भी कोई ठस लग जाए क्या मजाल ?

७ गुरु शिष्य परम्परा की दृष्टि से भी सन्तो और लावनीबाजो म साम्य है।

८ रचना सकलन की दृष्टि स सन्तो के शिष्यो न अपने गुरुओ की रचनाएँ सुरक्षित रखी और लावनीबाजो म भी यह सुरक्षा भावना और सकलन-वृत्ति अत्यधिक मात्रा म द्रष्टव्य है।

९ सन्तो ने कविता का उपयोग जनजागरण के लिए किया तो लावनीबाजो ने भी इस दृष्टि मे बहुत काय किया विशेष रूप से भक्ति के क्षेत्र म शृगार के क्षेत्र म और उत्तर काल म राष्ट्रीय आन्दोलना म।

१० जहाँ सन्त लोगों ने अपना कार्य घूम घूम कर किया वहाँ लावनीबाजों की भ्रमणशीलता भी प्रसिद्ध है।

११ सन्त लोग दूसरे पण्डितों आदि से प्रश्न किया करते थे उन्हें नीचा दिखाने की चेष्टा किया करते थे—पाण्डे छून कहाँ से आई ? आदि—उसी प्रकार लावनीबाजों ने भी एक-दूसरे से अनेक प्रकार के प्रश्न किये हैं—बता गुनी कितनी लम्बी चौड़ी है शिव शंकर की जटा ? आदि।

इस प्रकार सन्तों और लावनीबाजों में 'परिस्थिति-साम्य' दर्शनीय है।

२ सन्त-साहित्य और लावनी साहित्य में गुरु महिमा

सन्त कबीर ने गुरु और गोविन्द की तुलना में गुरु को ही उच्च स्थान प्रदान किया है—गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाय। बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियौ बताय॥'

सन्त कबीर से पूर्व गुरु गोरखनाथ ने भी 'गुरु महिमा' इस प्रकार स्वीकार की है—

> गुरु कीजे गहिला, निगुरा न रहिला।
> गुरु बिन ग्यान न पायला रे भाइला॥
> दूध धोय कोयला, उजला न होयला।
> कागा कंठे पुहुप माल हंसला न भैला॥

अर्थात् हे ग्रहिल, गुरु धारण करो, निगुरे न रहो। हे भाई बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त नहीं होता। दूध से धोने पर भी कोयला सफेद नहीं होता। कौवे के गले में फूलों की माला पहनाने से वह हंस नहीं हो जाता।'

वास्तव में केवल सन्त ही नहीं अपितु समस्त भारत में उस समय इस प्रकार के विचारों का प्राधान्य था। डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने 'रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ' पृष्ठ ८, १५ का प्रकरण निर्देश करते हुए अपने ग्रन्थ (नाथ और सन्त साहित्य) में गुरु 'महिमा' की इस प्रकार चर्चा की है

प्राचीन वैष्णव ग्रन्थों में से 'नारद पंचरात्र' में गुरु महिमा का सबसे अधिक गायन किया गया है। वहाँ तो साधन की दृष्टि से भगवान की अपेक्षा गुरु को अधिक महत्व दिया गया है। ज्ञानादिगुण करने के कारण ही उसे गुरु कहा गया है। यह ज्ञान भी भक्ति प्रदाता है। नाथों ने योग-मार्ग की कठिनता और दुर्बलता को ध्यान में रखकर गुरु को साधक के लिए आवश्यक माना। नाथों के यहाँ अवधूत

---

१ 'मानसी' मसूर विश्वविद्यालय की मानस हिन्दी परिषद् द्वारा प्रकाशित नाथ पत्रिका पृ० १५ सन् १९६६—ले०—डा० हिरण्मय।

ही गुरु पद का अधिकारी हो सकता है। गुरु और नाम में अभेद माना गया है। 'नारद पंचरात्र' में भी गुरु और भगवान में अभेद भाव व्यक्त किया गया है। परवर्ती ग्रन्थ नाभादास के भक्तमाल में भी भगवान और गुरु को एक माना गया है। संतों में भी साधना की प्रथम आवश्यकता गुरु है। बिना गुरु के साधना-क्षेत्र में प्रवेश नहीं मिलता। रामानन्द ने बाह्याचार प्रधान उपासना की निस्सारता का उद्घाटन करने वाला गुरु को ही माना है। ब्रह्म इस घट में ही है इसका ज्ञान गुरु ही कराता है। उसी के उपदेश से कोटि कर्मों के बंधन छिन्न भिन्न हो जाते हैं। कायागढ़ पर आरोहण करने के लिए सतगुरु ही सर्वोत्तम साथी है। गुरु ही अपने ज्ञान से शिष्य को यम पाश से मुक्त करता है।[1] इस प्रकार रामानन्द गुरु को अन्तस्साधना का निर्देशक ज्ञान प्रदाता यम बंधन निकृन्तक कायसिद्धि प्रदाता मानते हैं। कबीर साहित्य में गुरु विचार अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। कबीर के अनुसार संसार में साधक का सद्गुरु के समान अन्य कोई सगा नहीं है। वह देवगृह का द्वार है। वह मनुष्य का देवत्व प्रदान करता है। उसी की कृपा से आनन्द का दर्शन होता है। सांसारिक दृष्टि (अंत दृष्टि) का परिवर्तन कर वह अनन्त (परमात्मा दृष्टि) का उद्घाटित करता है।

संतों ने गुरु के महत्त्व को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है और इस गुरु शिष्य परम्परा का स्थाई रूप प्रदान करके गुरु को वास्तविक श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया है। संतों की इस गुरु शिष्य परम्परा के हम आधुनिक काल में भी यत्र-तत्र दर्शन होते है। लावनीकारों ने इस परम्परा को जो जीवन प्रदान किया है, वह वास्तव में ही श्लाघनीय कहा जा सकता है। संक्षेप रूप में हमने प्रथम परिच्छेद में दंगल में गाने का अधिकार शीर्षक से इस सम्बन्ध में संक्षिप्त रूप में स्पष्ट किया है कि लावनियों के दंगलों में निगुरे के लिए कोई स्थान नहीं है। दंगल में गाने का अधिकार केवल उसी को है जो किसी लावनीकार गुरु का शिष्य है। इससे हम लावनीकारों में गुरु शिष्य परम्परा का स्पष्ट ज्ञान होता है और प्रतीति होती है कि यह सब सन्तों की देन है, जिसे लावनीकारों ने आज तक अक्षुण्ण बनाये रखा है।

आगरे के ख्याति प्राप्त लावनीकार श्री लालालाल ने 'गुरु को विष्णु शिव और ब्रह्मा के समकक्ष रखते हुए कहा है कि मैं तो गुरु की ही चरण रज' मस्तक पर धारण करके और हृदय में उनकी (गुरु की) सेवा का व्रत धारण करके उन्हीं के गुणों को जिह्वा से गाऊँगा क्योंकि केवल गुरु ही घट के पट खोलने में समर्थ हैं। उन्हीं (गुरु) की कृपा से मैं अपने चित्त की चंचलता को दूर कर, दसों इन्द्रियों के बल को भी मार सकता हूँ और छल छिद्र का त्याग कर जोग के मार्ग का विस्तार कर सकता हूँ इसलिए मैं गुरुजी के चरणों में अपना शीश झुकाता हूँ। अपने गुरु

---

१ ना० और सं० सा०। पृ०—४४८।

का प्रताप हृदय मे धारण करके मैं निर्भय विचरण करूँगा और 'जमपुर' के दुख रूपी जालो की माला को टाल दूँगा तथा मन म व्याधि रूपी अकुर की विषमता को तनिक भी नही रहने दूँगा और अपने सत्त को सम्भालते हुए अचल रहूँगा, डिगूगा नहीं।

मैं प्रचड पातक को भी ढा-कर (गिराकर) ढीला कर दूगा और त्रिष्णा रूपी धागे को तोड कर सासारिक बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर लूगा। मैं रात दिन नाम का उच्चारण करके अपने गुरु की सेवा मे अपना चित्त स्थिर कर लूगा और भयकर दुखो को दूर करके, इस ससार म यश प्राप्त करके ही स्वर्ग लोक को जाऊँगा। मैं अपने गुरु को प्रतिदिन अपने भवन म बुलाकर प्रेम-युक्त भक्ति मे उनके पाँव धोऊँगा क्योंकि 'गुरु' ही शुद्ध विवेक, विद्या और अन्य गुणो के समुद्र हैं, वे ही 'भव-बन्धन' को काट कर भक्ति का वरदान दे सकते हैं। उन गुरुजी की महिमा का कोई पार नही पा सकता, जिन के 'जस' से यह सारा ससार 'उजागर' है मैं उन्ही की कृपा से 'जोग-बल' के द्वारा अपने अगो को निखार लूगा।''[1]

---

१ हस्तलिखित प्रति के आधार पर—लावनीकार—लालालाल—

विष्णु नाभी मे और लिलाट मे शिव को—
महाराज—हिये ब्रह्मा को धारू जी।
गुरु को मन म बसा न पल भर ध्यान बिसारू जी॥

॥टेक॥ कर शीष सदा गुरु-पद सरोज रज धारू—
—महाराज-सब गल-पाप विचारू जी।
गुरु-सेवा उर धार, मगन हो गुरु गुन पुकारू जी
घट पट खोल्हे धर ध्यान धरम धर गुरु का,॥
—महाराज—निरन्तर नेह निहारू जी।
चित चचलता त्याग दमा इन्द्रिन बल मारू जी॥
छल छिद्र छोड मुख मोड मन्द ममता से—महाराज—
जोग-मारग विस्तारू जी॥
झुका शीश गुरु चरण मध्य भौ बिघन विदारू जी।

॥मेरा॥ निरभय विचरू उरधर प्रताप निज गुरु का।
टालू कराल दुख माल जाल जमपुर का॥
मन ढील न छोडू बिखम-व्याध अकुर का।
—महाराज—डिगू नहि सत्त सम्हारू जी॥१॥
ढीला करदू ढाके प्रचड पातक को—महाराज—
नाम निशि दिन उच्चारू जी।
तोडू त्रिष्णा धागा जगत-बधन निर वारू जी॥
थिर करू, चित्त कपना गुरु की सेवा म—महाराज—

एक अन्य लावनीकार 'श्री कालकवि' ने निर्विकार भगवान की स्तुति में लिखते हुए गुरू विषयक इस प्रकार कहा है कि—वह 'राम अखड, आतम स्वरूप अलख, अगोचर, अजर और अमर है, उसका प्रत्येक कार्य निराला है। वही बाजीगर बनता है तो वही जमूरा भी कहलाता है। वही 'दाता' और भोक्ता है तो वही सब कर्मों का भुगतान करने वाला भी है। वह इच्छानुसार शरीर भी धारण कर लेता है। यही बात वेद में भी गाई है कि धर्म की 'जय और पाप का क्षय होता है। परन्तु इस प्रकार का उजाला हृदय में बिना गुरु के नहीं होता। केवल 'गुरु' के द्वारा ही ज्ञान रूपी सूर्य का उजाला हृदय में सम्भव है।'[1] सन्त कबीर ने करोडो सूर्या और चन्द्रमाओ के प्रकाश से अधिक प्रकाश गुरु ज्ञान में इस प्रकार माना है —

कोटिन चन्दा उगवें सूरज कोटि हजार।
सतगुर मिलिया बाहर दीसत घोर अंधार ॥[2]

चौंसठ दीपक जलाने से और चौदह चन्द्रमाओं के प्रकाशित होने पर भी सन्त कबीर के अनुसार सतगुर के बिना घर में चांदना नहीं है —

दरक दारद दुख टार जी।
धन्नवाद जस पाय अन्त सुर लोक सिधाई जी ॥
नित भवन लाय बठाय गुरु अपने का—महाराज—
प्रेम युत पाव पखारूँ जी।
॥मेरा॥ शुद्ध विवेक विद्या के हैं गुरु गुन सागर।
भव-बन्धन काटत दें भगती घर आगर ॥
महिम अपार जस जिनके जगत उजागर।
—महाराज—जोग बल जग निस्तारूँ जी—
गुरु को मन में बसा न पल भर ध्यान बिसारूँ जी ॥

१ एक ह०लि० प्रति के आधार पर—लावनीकार—मास्टर कन्हैयालाल 'कालकवि'
अखड आतम राम-काम उसका हर एक निराला है।
अलख अगोचर अजर अमर बिन, कौन सा पुतली वाला है ॥
॥टेक॥ वही बने बाजीगर देखो वही जमूरा कहलावे।
वही बने दाता भोक्ता और वही कर्म सब भुगतावे ॥
इच्छा के अनुसार धार करके शरीर जग में आवे।
धर्म की जय और पाप का क्षय यह भेद वेद कथ कर गावे ॥
॥मि०॥ गुरु बिना नहीं ज्ञान मान का होता हिये उजाला है।
अलख अगोचर अजर अमर बिन कौन सा पुतली वाला है ॥

२ क० व० (श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय) काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सं० २००३ में प्रकाशित—पृ० १२१ २० क्रमश दोहा क्रमांक —३१६, ३१८, ३११, ३०९।

चौंसठ दीवा जोय के चौदह चन्दा माहि ।
तेहि घर किसका चादना, जेहि घर सत-गुरु नाहि ॥[1]

सन्त कबीर के अनुसार—गुरु के बिना ज्ञान सम्भव नही है और ज्ञान के बिना मुक्ति नही मिल सकती क्योंकि 'सत्त' शब्द ही प्रमाण है —

पण्डित पढि गुन पचि मुए, गुरु बिन मिलै न ज्ञान ।
ज्ञान बिना नहीं मुक्ति है सत्त शब्द परमान ॥[2]

इसी बात को सन्त भर्लसिंह लावनीकार ने अपने ढग से इस प्रकार कहा है कि—बिना गुरु और ज्ञान रूपी दीपक के हृदय म सदा अधेरा ही बना रहता है। चाहे कोई कितना ही खोज-खोज कर मर जाए बिना ज्ञान के मुक्ति रूपी मणि दिखाई नहीं दे सकती —

'बिन दीपक गुरु ज्ञान अधेरी, सदा रहे घट बीच बनी ।
खोज खोज मर जांय ज्ञान बिन दृष्टि न आवे मुक्त मनी ॥'

सन्त कबीर ने गुरु को गोविन्द से बडा बताते हुए कहा है कि —

गुरु हैं बडे गोविन्द तें, मन में देखु विचारि ।
हरि सुमरे सो वार है गुरु सुमिरे सो पार ॥१

इसी प्रकार प० शम्भुदयाल जी ने भी अपनी एक लावनी म गुरु को गोविन्द से बडा बताया है। यथा —

गुरु हैं गोविन्द से बडे गौर से देखा—महाराज—
गुरु सवत्र निहारूँ जी ।
अनुचित उचित सकल सिर पर धर वचन न टारूँ जी ।
कर्मों में लिप्त ह्व फसा जीव माया में ।
दूं कैसे हरि को दोष जगत आया में ॥
नहि किया किसी का कहना, भरमाया में ।
फिर गुरु से आन गुरुलक्ष्य यही पाया में ।
॥मि०॥ —महाराज—लक्ष्य को सत्य विचारूँ जी—
अनुचित उचित सकल सिर पर धर वचन न टारूँ जी ॥
॥ १ ॥

---

१ २ —वही—

३ गुरु भर्लसिंह द्वारा लिखित लावनी की एक टेक ।

४ प० स० (श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय) काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा स० २००३ म प्रकाशित—पृष्ठ—२२१ २० नमदा, दोहा क्रमाक ३१६, ३१८, ३११, ३०९ ।

रा त कबीर कहते हैं कि—वस्तु तो कहीं है और तुम उसे ढूंढ रहे हो कहीं अयत्र ही, ऐसी दशा म उस वस्तु की प्राप्ति कैसे हो ? यह वस्तु तो तभी प्राप्त होगी, जब आप कोई 'भे दी' (गुरु) (भेद जानने वाला) साथ लेंगे।

> वस्तु कहीं ढूंढे कहीं, केहि विधि आवै हाथ ।
> कह कबीर तब पाइये भेदी लीजे साथ ॥

इसी बात की अपने ढंग से व्याख्या करते हुए श्री केशव प्रसाद (लावनीकार) ने एक लावनी म स्पष्ट किया है कि—गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता और ज्ञान के बिना हृदय म भगवान के प्रति प्रतीति नहीं होती। कमल का फूल कभी गन्दगी मे उत्पन्न नहीं होता और बालू मिट्टी की दीवार नहीं बनाई जाती। काम आदि शत्रु, जो तुम्हारे पीछे लग हुए हैं तब तक नहीं जीते जा सकते जब तक कि इन्हे परास्त करने की विधि गुरु से अर्थात् भेदी (भेद जानने वाले से) से नहीं पूछ लेते। हे साहब ! आप स्वार्थ के वशी भूत होकर नीति और अनीति को नहीं सोच रहे हो। ब्रह्म को तो ढूंढते फिरते हो और अपने बुरे कर्मों से डरते ही नहीं हो। विषय वासना म तो तुम अपना चित्त लगाये हुए हो परन्तु तुम्हे समता रूपी शीत म रुचि नहीं है।[1]

इसी प्रकार गुरु महिमा सम्बन्धी सत प्रभाव लावनी-साहित्य म प्रचुर मात्रा म द्रष्टव्य है।

३ सन्त साहित्य और लावनी साहित्य मे इन्द्रिय निग्रह

इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये बिना कोई भी साधक मन और बुद्धि को केन्द्रित नहीं कर सकता। योगिराज श्री कृष्ण ने कहा है—'जिस प्रकार कछुआ अपने सब अवयव सिकोड लेता है उसी प्रकार जब कोई पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को खींच लेता है, तभी उसकी बुद्धि स्थिर होती है।'[2]

---

१ लग, बिन गुरु कहाँ ज्ञान, ज्ञान बिन होती हृदय प्रतीत नहीं।
कमल न घूरे पर फूले, बालू की उठती भीत नहीं॥
।टेक। लग शत्रु कामादिक पीछे लिये ये जब तक जीत नहीं।
हा परास्त करे पूछी बस गुरु से अपने रीत नहीं॥
भय स्वार्थ वश आप सोचते, साहेब नीत अनीत नहीं।
फिरो ढूंढते ब्रह्म रमो दुष्कर्मों से भयभीत नहीं॥
।मि०। दत विषय वासना म चित अरु समता रूपी शीत नहीं।
कमल ना घूरे पर फूले बालू की उठती भीत नहीं॥
॥ १ ॥

२ यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ गीता-२, ५८

कबीर आदि सन्तो और लावनीकारो ने 'इन्द्रिय निग्रह' पर बहुत ध्यान दिया है।

सत कबीर कहते हैं—सासारिक चिताओ को मन से निकाल कर तथा इन्द्रियो का विविध विषयो मे जो प्रसार है, उसे समाप्त कर देने से ही प्रभु भक्ति का माग खुल जाएगा, तब किसी से ब्रह्म प्राप्ति का उपाय पूछने की आवश्यकता नही, वह स्वय ही, अनायास ही, प्राप्त हो जाएगा।[1]

सत कबीर इन्द्रियों के साथ मन की ओर ध्यान दिलाते हुए कहते हैं—हे मानव! तूने सकल्पपूवक मन को नही मारा, इसी कारण तू काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को नष्ट नहीं कर सका। इस मन के अध पतन से ही तेरे अन्दर शील, सत्य और श्रद्धा आदि के सद्गुणो का लोप हो गया है। इन्द्रियो पर अब भी अधिकार कर ले, विषय प्रसार म इसे प्रवृत्त मत होने दे तभी कल्याण हो सकता है।[2]

इसी प्रकार के विचारो से प्रभावित होकर अनेक लावनीकारो ने भी इन्द्रियों को वश म रखने के महत्त्व को स्वीकार करते हुए अनेक प्रकार के विचारो को लावनियो म सजोया है।

ख्यातिप्राप्त लावनीकार महाराज श्री रिसालगिरजी न सत् रज और तम आदि गुणो का वणन करते हुए अपनी एक लावनी म पाँचो इन्द्रियो पर नियत्रण करने को ही वास्तव म पचाग्नि म तपने की तपस्या कहा है। इन्द्रियो को वश म करके ही हम मन रूपी भगवान की ओर ध्यान लगा सकते हैं जहाँ पर काम, क्रोध आदि देश देश के यात्री आकर अपना डेरा लगाते हैं और जो हम से अनेक पाप-कम करा लेते हैं जिनसे हमारे सद्गुण अपने आप ही भगने लगते हैं। इसीलिए उन्होने कहा है कि सुरत निरत से बोल कर हृदय के पटो को खोलो यही मुक्ति का माग है।[3]

---

१ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १७७ द्वितीय सस्करण—प्रो० पुष्पपाल सिंह। दोहा २।

२ कबीर ग्रन्थावली, पृ० १८० ८१ दोहा–१५।

३ श्री रिसालगिरजी महाराज द्वारा लिखित एक अप्रकाशित लावनी का तीसरा चौक—

सतन की सुखधाम करन सब काम सकल फल देनी है।
त्रिगुण तत्व की हरदम बहती काया बीच त्रिवेनी है॥

॥ ३ ॥

॥टेक॥ पच इन्द्रियाँ बद करे सोई तपे तपस्या पच अगन।
मन वेनी माधो है धीर धर उन्ही का हरदम धरो यगन॥
देश देश के उतरें जात्री, काम क्रोध मद लोभ लगन।
पाप दोष हर बार कराते सद्गुण आपी लगे भगन॥
॥मि०॥ सुरत निरत से बोल, हृदय पट खोल, ए मुक्ति निशेनी है।
त्रिगुण तत्व की हरदम बहती काया बीच त्रिवनी है॥

एक अन्य लावनीकार ने समाधि में साधन की चर्चा करते हुए तथा 'अजपा जाप' की महत्ता बताते हुए दस इन्द्रियों में पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों का इस प्रकार वर्णन किया है —

कम से साध समाध मिटे बहु व्याध उपाधी, छूट जावे।
जप-अजपा का जाप आप में आप ब्रह्म दृष्टि आवे ॥
॥टेक॥ पाँच तत्व से हुआ जगत, पच्चीस प्रकृति दस इन्द्रिय जान।
जुदे वरन सुर द्वार विराजें, कारन एक ब्रह्म धर ध्यान ॥
जिभ्या नासा, नैन, त्वचा और कान ज्ञान इन्द्री पहिचान।
हाथ पर मुख गुदा लिंग ये, पंच कर्म इन्द्री गुणवान ॥
पाँच तत्व, पच्चीस प्रकृति के नाम रूप गुण कहूँ बखान।
पृथ्वी तत्व का वास नाभि में, मुख द्वार कहें वेद पुरान ॥
॥मि०॥ पीला रंग पहचान जान आहार जीव निवृत गावे—
जप अजपा का जाप आप में आप ब्रह्म दृष्टि आवे ॥'[1]

पं० शम्भूदास जी कहते हैं कि बिना सत्संग के मनुष्य को अच्छी बुद्धि और परमपद प्राप्त नहीं हो सकते। यह मन रूपी भृंग वैसे ही भ्रमता फिरता है इसे गुरु ज्ञान के बिना गति प्राप्त नहीं हो सकती है क्योंकि मनुष्य 'जोग' तो ले लेता है परन्तु उसके मन का 'मनमथ' (इच्छाएँ) समाप्त नहीं होता। मनुष्य दस इन्द्रियों के वशीभूत होकर पापों को भोग रहा है। पर स्त्री को देखकर आकर्षित हो रहा है और यह समझता है कि धन के बिना मेरा सम्मान ही नहीं है। इस प्रकार मनुष्य अपने तीनों पन, (बालपन, यौवन, बुढ़ापा) अमृत न पीकर, विष बोने में ही खो रहा है इसने सुत माता पिता आदि पारिवारिक तो तज दिए परन्तु तामसिक बुद्धि का त्याग नहीं किया, आदि।[2]

---

१ श्री ख्यालीमीश्र द्वारा लिखित एक अप्रकाशित लावनी का प्रथम चौक—।
२ पं० शम्भुदास जी द्वारा लिखित अप्रकाशित लावनी का प्रथम चौक—।
पद पूरन ब्रह्म परम पदवी पावे बिन सत्संग सुमत ही नहीं।
मन भृंग भ्रमत फल फूल बिना, गुरु ज्ञान बिना मिले गत ही नहीं ॥
॥टेक॥ तन धारन जोग विराग लियौ, तनमन का मरा मनमत ही नहीं।
दस इन्द्रिन के अघ भोग रहा, सुख-सज बिना सुकृत ही नहीं ॥
पर नार को देख लुभाय रह्यो कहे द्रव्य बिना कुछ पत ही नहीं।
पन तीनों दिये शठ खोय रह्यो, विष बोय, पिया अमृत ही नहीं ॥
॥मि०॥ सुत मात पिता परिवार तजे, तामस की तजी गफलत ही नहीं—
मन भृंग भ्रमत फल फूल बिना गुरु ज्ञान बिना मिले गत ही नहीं ॥

इसी प्रकार सत कबीर ने भी कहा है कि—

कबीर मन बिकर पड्या, गया स्वाद के साथि ।
गल का खाया बरजता, अब क्यूँ आवे हाथि ।।

अर्थात्—मन सासारिक विषय वासनाओ के विकारो में पड गया है। वह इन्द्रियजनित आनन्दोल्लास म ही लग गया है। भला अब उसे कसे वश म किया जा सकता है। जो खाद्य वस्तु गले तक पहुच चुकी है उसके लिए 'मना' करने स क्या लाभ ? वह तो पेट मे ही पहुचती है उसका रोकना सामर्थ्य से बाहर है। इसी प्रकार जो मन विषय वासना के अग्राह्य रसो का पान कर चुका है, अब उसे कसे वर्जित किया जा सकता है ?[1]

इन्द्रिय निग्रह' की ओर दृष्टिपात करते हुए सत कबीर अपन उपरोक्त प्रश्न का उत्तर स्वय ही इस प्रकार देते है—

सन्तनि एक अहेरा लाधा ।
मिगनि खेत सभी का खाधा ।।
या जगल में पाचो मिरगा एई खेत सबनि का चरिगा ।।
पारधीपनों जे साधे कोई, अध खाधा सा राखै सोई ।।
कहै कबीर जो पचा मारे आप तिर और कू तारै ।।

अर्थात्—साधु गण एक ब्रह्म अथवा भक्ति के आखेटक का रखते हैं, माया ने समस्त मनुष्यो की सम्पत्ति समाप्त कर दी। इस ससार रूपी वन मे पाँच इन्द्रि रूपी विकारो के मग रहते है जो सब की खेती का चर गये किन्तु जो लोग भक्ति साधना करत हैं उनकी सुकृत्य सम्पत्ति चाह आधी समाप्त भी हो गई हो फिर भी रक्षित हो जाती है क्योकि भक्ति का आखेटक इन विकारा (इन्द्रिय आदि के) का समाप्त कर देता है।

कबीर कहत हैं कि जो इन पच विकारा के मग को समाप्त कर देता है वह स्वय मुक्त हो जाता है और दूसरो को भी मुक्ति की प्रेरणा देता है।

यही बात दम इन्द्रिया को जीतने और ब्रह्मचय व्रत का पालन करने के ढग से श्री नारायण प्रसाद (लावनीकार) ने अपनी एक लावनी मे वणन करते हुए बताई है कि—मैं ब्रह्मचय के आश्चय की बात कहता हू मैं न ही तो ब्रह्म का भक्त हू और न ही वेदो की उपासना करने वाला हू। न मैं बाणप्रस्थी हू और न ही गहस्थी हू मैं तो एक नाममात्र के लिए सन्यासी हू। सन्ध्या-तपण आदि पर मेरा विश्वास नही है न ही मैं कोई सेवा पूजा, सोच विचार धम अधम करता हू। मैं तो माया से दूर

---

१ क० ग्र०। पृ० १८१, द्वितीय सस्करण, सन् १६६५।

रह कर, अपनी मस्ती में मस्त रहने वाला हू और सभी लाज शम आदि को छोडकर शरीर से नग्न रहता हू। मैं दसो इन्द्रिया पर विजय प्राप्त करके, इस विश्व म विचरण कर रहा हू। यथा—

> ब्रह्मचय अचरज की बात कहूँ, ब्रह्मा नहीं वेद उपासी हूँ।
> नहीं वाणप्रस्थ नहि गृहस्थ हूँ मैं, एक नाम का मैं सन्यासी हूँ॥
> ॥टेक॥ कोई सन्ध्या तपण जाप नहीं, कोई जानू कम कुकम नहीं।
> कोई सेवा-पूजा-पाठ नहीं, कोई जानू धम-अधम नहीं॥
> कोई सोच विचार विलाप नहीं, कोई भ्रमता माया-मम नहीं।
> तन नगन रहूँ मन मगन रहूँ कोई लाज नहीं कोई शम नहीं॥
> ॥मि०॥ दस इन्द्रिन जीत के भोग करूँ, मैं भोगी जोग विलासी हूँ।
> नहि वाणप्रस्थ नहि गृहस्थ हूँ मै, एकनाम का मै सन्यासी हूँ॥[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ सन्त साहित्य म 'इन्द्रिय निग्रह' को विशेष महत्व प्राप्त है वहा लावनी साहित्य म भी 'इन्द्रिय निग्रह' पर विशिष्ट बल दिया गया है। इस प्रकार अनेक अन्य उद्धरण लावनी साहित्य म यत्र-तत्र उपलब्ध हैं, यहा पर केवल प्रकरण निर्देशन की दृष्टि से किंचित उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

४ सन्त-साहित्य और लावनी साहित्य मे इडा पिंगला, सुषुम्ना और शून्य

डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने अहिबु ध्न्य-संहिता का प्रकरण निर्देश करते हुए शरीर की नाडी रचना के विषय मे इस प्रकार लिखा है—'अहिबु ध्न्य संहिता म तान्त्रिक ग्रन्थो की तरह ही शरीर की नाडी व्यवस्था का विवरण मिलता है। सभी नाडियो का कन्द नाभि के ऊपर है। यह अण्डाकार है। नाभि के नीचे शरीर का मध्य देश है। चतुष्कोणात्मक है, जिसे आग्नेय मण्डल भी कहते हैं। कन्द को नाभि चक्र भी कहते हैं जिसके १२ दल हैं। इस नाभि चक्र को चारो ओर से आवृत किये हुए अष्टमुखी कु डली है, जो अपने शरीर से सुषुम्ना के ब्रह्म रंध्र नामक छिद्र को बन्द किये रहती है। तन्त्रो के अनुसार कु डलिनी शक्ति शरीर के मध्य के नीचे अवस्थित रहती है। संहिता के अनुसार नाभि चक्र के मध्य मे अलम्बुषा और सुषुम्ना नाम की दो नाडियाँ हैं। सुषुम्ना की विभिन्न दिशाओ म कुहू वरुणा, यशस्विनी पिंगला पूषा, पयस्विनी, सरस्वती, शंखिनी, गान्धारी, इडा, हस्ति जिह्वा, विश्वदरा नाम की नाडियाँ हैं। किन्तु शरीर मे कुल मिला कर ७२००० नाडिया हैं, इनमे इडा पिंगला और सुषुम्ना महत्वपूर्ण हैं। इनमे भी सुषुम्ना, जो मस्तिष्क के मध्य मे पहुचती है, अति महत्वपूर्ण है—जसे एक मकडी अपने जाल म रहती है उसी प्रकार आत्मा भी

---

१ श्री नारायण प्रसाद द्वारा रचित अप्रकाशित लावनी का प्रथम चौक।

प्राण-समन्वित होकर इस नाभिचक्र में रहती है। सुषुम्ना के पाँच मुख हैं जिनमें से चार से रक्त प्रवाहित होता है, जब कि मुख्य द्वार कुंडली के शरीर से बंद रहता है। अन्य नाडियाँ, जो तुलना में इससे छोटी हैं शरीर के अन्य भागों में समकक्ष है। इडा और पिंगला शरीर के सूर्य और चन्द्र के समान मानी जाती हैं।[1]

गोरक्षा सिद्धांत संग्रह' के पृष्ठ ३७३ में नाद की चार अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। विद्वानों ने इन अवस्थाओं का चार शून्यों से भी सम्बन्ध स्थिर किया है। चौथी अवस्था में प्राण ब्रह्म रन्ध्र में स्थिर हो जाता है। चित्त एक विपयीभूत हो जाता है। यह विशुद्ध शून्यावस्था या परम शून्यावस्था है। यही पूर्ण समाधि की अवस्था बताई गई है। इसी अवस्था में योगी जीवन्मुक्त होता है। इन्हीं इडा, पिंगला आदि की चर्चा कबीर प्रभृति संतों ने अनेक प्रकार से की है—व कहते हैं—

हरि को बिलोवनौं बिलोय मेरी माई।
ऐसे बिलोई जसे तत्त न जाई ।।टेक।।
तन करि मटकी मनहिं बिलोइ ता मटकी में पवन समोइ।
इला प्यंगुला सुषमन नारी बेगि बिलोइ ठाडो छछिहारी।
कह कबीर गुजरी बौरानी, मटकी फूटी जोति समानी॥

अर्थात्—आत्मा को सम्बोधित करके कहा गया है कि हे सखी ! प्रभू भक्ति के दूध को ऐसा बिलो जिससे विश्व का नवनीत—सारतत्व—प्राप्त हो जाए। शरीर की मटकी बना कर मन को बिलो और इस शरीर की मटकी में प्राणायाम साधना कर। *इडा पिंगला सुषुम्ना का सम्मिलन कर शीघ्र मन साधना कर।* कुण्डलिनी इस अवसर की प्रतीक्षा में है कि वह शीघ्र विस्फोट कर अमृत का पान करे। आत्मा रूपी गूजरी प्रभु भक्ति मे मदमस्त हो रही है और शरीर की मटकी फूट जाने पर अंश अंशी में विलीन हो गया।[2]

श्री कविलागिर महाराज ने अपनी एक लावनी में इसी बात को इस प्रकार कहा है—योगी लोग इडा, पिंगला को सम करके ध्यान लगाते हैं और सुषुम्ना में श्वांसो को रोक कर शून्य शिखर पर आरोहण करते है। सर्वप्रथम ब्रह्म दतुन गंग क्रिया आदि द्वारा शरीर की शुद्धि करनी चाहिए और धीरे धीरे सुरत निरत तथा शून्य में सुषुम्ना का स्वर पहिचानो। अजपा का जाप करके उस चेतन का स्वरूप अपने आप में ही देखो। मेरुदण्ड शून्य का मार्ग सीधा है जहा पर अनहद का शब्द होता है। इस प्रकार करने से मुक्ति का मार्ग स्वतः ही प्राप्त हो जाता है—यथा—

ईडा पिंगला सम कर के योगी जन ध्यान लगाते हैं।
सुषमन में स्वासा को रोक कर सुन्न सिखर चढ़ जाते हैं॥

---

१ ना० स० सा० पृ० २१६।
२ क० ग्रं० पृ० १४८, पद ३५४।

॥टेक॥ ब्रह्म वतुन गज किरिया करके पहले मज्जन कर तन का।
सुरत निरत में ध्यान शान सुर चौंह शून्य में सुषमन का॥
जपके अजपा जाप आप में आप रूप लख चेतन का।
खच शक्त की नाडि चढ़ादे प्राणघेर मन का मनका॥

सत कबीर कहते हैं—

निहकम नदी ग्यान जल सुनि मण्डल माहि रे।
औधूत जोगी आतमा कोई पैणसजम हाहि रे॥
इला यगुला सुषमना पछिम गगा बालि रे।
कहै कबीर कुशमल झड कोई माहि लौ अग पषालि रे॥

अर्थात्—निष्काम नाम सरिता तो शून्य प्रदेश म ही प्रवाहित होती है, कोई साधक, सन्यासी, तपस्वी उसमे सयम—द्वारा स्नान कर सकता है। इडा, पिंगला और सुषुम्ना के समन्वय से कुडलिनी के विस्फोट द्वारा अमत का स्रवण होता है, कोई चाहे तो उसम अपने अगो को धोकर निष्कलुष बना सकता है।[1]

महात्मा बनिनागिर जी की एक अन्य लावनी उपरोक्त पद का अनुवाद सा प्रतीत होती है—यथा—

सच्चा सतगुरु मिलै तो चेला, पलट के कोडे से भग होकर।
समाता आपे में आप फिर वो, मिसाले जल की तरग होकर॥
॥टेक॥ इडा, पिंगला, सुषुम्ना तीनों नाडी के सग होकर।
हमेशा बहती है ये त्रिवेणी हमारी भकुटी में गग होकर॥
ये दिल को धोया में खूब मलमल मिसाले दपण के रग होकर।
दुई दूर कर हुआ मै इकता, दुरग से मैं इकरग होकर।

अर्थात्—यदि सच्चा गुरु मिल जाये तो चेला कीडे स पलट कर भग हो जाता है और वह जल म तरग की भाति अपने आप म समा जाता है। इडा, पिंगला और सुषुम्ना तीनो ही नाडियो की यह सामूहिक त्रिवेणी (सरिता) हमारी भकुटी मे गगा बन कर प्रवाहित होती है, जिसम हमने अपने दिल को खूब मलमल कर धोया है और दपण के समान निष्कलक बना लिया है। इससे दुई को दूर करके हम दुरग से इक रग हो गये और हमारा रूप सच्चिदानन्द हो गया तथा हमने अपनी जिह्वा से 'सोऽहम्' कहा।

सन्त कबीर न तो केवल सकेत मात्र ही दिया है कि इडा, पिंगला और सुषुम्ना रूपी गगा में कोई चाह तो स्नान करके अपने आपको निष्कलुष बना सकता

---

१ क० ग्र०-पृष्ठ ५७०, पद ३०१।

है। परन्तु सन्त कविनागिर ने स्पष्ट ही कहा है कि हमने इस गगा मे अपने दिल को खूब मलमल कर धोया है और अपने आप को दपण के समान निष्कलक बना लिया है।

सन्त कबीर कहते है—
बोलो भाई, राम की दुहाई।
इहि रसि सिव सनकादिक माते पीवत अजहू न अघाई ॥
इला प्यगुला भाठी कीन्ही ब्रह्म अगनि पर जारी।
ससि हर सूर द्वार रस मूँदे लागी जोग जुग तारी ॥
मन मतवाला पीव रामरस दूजा कछु न सुहाई।
उलटी गग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई ॥आदि

अर्थात्—कबीर कहते हैं कि हे भाइयो, प्रभु की भक्ति करो, क्योकि इस अनुपम भक्ति रस का पान कर शिव और सनकादिक जस भी आज तक परितृप्त नही हुए। उनकी कामना है कि अभी इस रस का पान और करें, और करें। हृदय म ब्रह्म ज्योति प्रज्ज्वलित कर इडा और पिंगला नाडियो की भट्टी बना ली। इगला पिंगला के मध्य सुषुम्ना के द्वारा कुण्डलिनी को उर्ध्वगामी कर सहजावस्था की प्राप्ति की। इस प्रकार सुषुम्ना के माध्यम से कुण्डलिनी द्वारा ब्रह्म रन्ध्र म विस्फोट स अमृत का स्रवण होने लगा। प्रभु भक्ति म मस्त मेरा मन उस महारस के पान स ससार के समस्त रसो के आनन्द को भूल गया। इस अमृत पान के साथ-साथ पाचो इन्द्रिया भी तल्लीन थी। इस महारस स ही य सब झूम रही थी। इस भाँति सुषुप्त कुण्डलिनी जागृत हो गई। सद्गुरु से ज्ञान लाभ करके ही साधक इस सहज शून्य के अनुपम रस को प्राप्त कर सकता है। दास कबीर तो इसी रस का पान करके मदमस्त हैं, इसकी खुमारी कभी नही जा सकती।[1]

उक्त पद के अनुसार सत कबीर सुषुम्ना के माध्यम स कुण्डलिनी द्वारा ब्रह्म रन्ध्र म विस्फोट से अमृत का पान कर समस्त सासारिक रसो को भूल गय तो सत कवितागिर भी ज्ञान का अकुश लगा कर सतो की सगति करके, बुरी सगति को छोड कर और अच्छी सगति को प्राप्त करके 'नाभि कमल स सीधे 'वक नाल' की सुरग स होकर शून्य शिखर पर पहुच गय हैं और वहा व कबीर की भाँति जन्म और मृत्यु स भी रहित होकर सुखपूवक मदमस्त होकर सोय हुए है, वहाँ 'काल' की भी पहुचने की मजाल नही है। योगी लोग इसी प्रसग के कारण युग युगो से जीवित हैं, क्योकि इसकी खुमारी कभी नही जाती। केवल इतना ही नही अपितु लावनीकार इस सारे सुख का कारण सन्तो की सगति ही बता कर स्वय सन्तो के प्रभाव को स्वीकारता है।—यथा—

---

१ क० ग्र०—पृष्ठ—३८१-८२, पद ७४।

ज्ञान का अंकुश लगाया हमने, हमेशा संतों के संग होकर।
बिन सत् संगत कोई न सुधरे, कुसंग छोड़ा सुसंग होकर॥
नाभि कमल से गया में सीधा, बंकनाल की सुरंग होकर।
शून्य शिखर सोया मैं सुख से जन्म मरण से निसंग होकर॥

सन्त कबीर हिंडोले के बहाने से इस शरीर का चित्रण करते हुए कह रहे हैं कि—जिस प्रकार हिंडोल में दो खम्भ होते हैं उसी प्रकार चन्द्र और सूर्य, अर्थात् इड़ा पिंगला के दो स्तम्भ हैं, जिनके मध्य बंक नालि—सुषुम्ना—की डोर डाल रखी है जिस पर पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ झूलती हैं—मेरा मन भी वहीं रमता है। जिस शून्य स्थान पर—ब्रह्म रंध्र में—द्वादस आदित्या के आलोक सदृश प्रकाश प्रकाशित रहता है, वहीं अमृत का कुण्ड है, जिस साधक ने इस अमृत का पान कर लिया, वह हमारा स्वामी है। शून्य शिखर पर सहज समाधि में ही हमारा पीहर है, यहां झूल कर हमने दोनों ही (लोक और परलोक) कुलों को श्रेष्ठता प्रदान कर ली है। आगे दूसरा रूपक प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि कुण्डलिनी मूलाधार चक्र के घाट से इड़ा, पिंगला रूपी मार्गों द्वारा षटचक्रों की गगरी को उठाकर त्राटक के संगम पर पहुंच विस्फोट करेगी जिससे जो अनहद नाद उत्पन्न होगा, वही इस तीर्थस्थल में नौका होगी जिसे नाम स्मरण से खेया जाएगा। कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू राम का गुणगान करले जिससे इस संसार सरिता के पार उतारा जा सके।—यथा—

हिंडोला तहाँ झूलै आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतनि कौ विश्राम॥
चन्द्र, सूर दुइ खम्बा बंकनालि की डोर।
झूलें पंच पियारियाँ, तहां झूलै जिय मोर॥ आदि[1]

कबीर की भांति ही इस शरीर की त्रिवेणी (तीर्थ स्थल) के साथ रूपक बांधते हुए इड़ा आदि नदियों को मुक्ति प्रदाता कह कर श्री राम प्रकाश (लावनीकार) ने भी ब्रह्मरंध्र में वायु को धारण कर ब्रह्ममय हो जाने की बात कही है। वे कहते हैं—इस काया में ही तीर्थराज विराजमान है जो मुक्ति प्रदाता है। यह त्रिवेणी रेचक, कुम्भक और पूरक तीनों स्वासों से बहती है। इसकी बाईं ओर इड़ा गंगा नदी के रूप में है जिस पर चन्द्रमा की छाया है। दाहिनी ओर पिंगला रूपी यमुना नदी है जिस पर सूर्य की दया है। इनके बीच में सुषुम्ना रूपी सरस्वती बह रही है। परमात्मा का नाम ओइम् उसी में संयुक्त है जिसमें यह कल्पित काया है। इस तीर्थ में स्नान करने से समस्त फल प्राप्त हो जाते हैं और पांचों तत्त्वों के पांचों देवता शीश झुकाते हैं।

यहां भी कबीर की भांति लावनीकार एक अन्य रूपक की सृष्टि करते हुए कहता है कि काया रूपी किले में आकाश रूपी अक्षयवट वृक्ष है, जिससे हरदम शब्द

---

१ क० ग्र०—पृ० ३४८ पद–१८।

होता रहता है। वहाँ पर वमनासन को बाँध कर अपान वायु को कम करके, कुम्भक ब द सुषुम्ना को एकत्र करके बिना किसी दु ख क, ब्रह्म रन्ध्र म वायु को रखकर हम ब्रह्म म ही मिल जावेंगे। इस प्रकार यह काया भी किसी भाँति तीथराज प्रयाग राज से कुछ कम नही है।—यथा—

तीथराज बिराजत काया बनी मुक्ति मारग देनी।
रचक, कुम्भक, पूरक तीनो श्वाँस से बहती तिरवेनी॥
॥टेक॥ इडा नदी गगा बाएँ बह रही है, जो च द्रमा की छाया।
दाहिने पिंगला बहती यमुना तेज भास्कर की दाया॥
सुषमना बरोबर बहे स्वामी शिव सरस्वती की है माया।
'ओ३म् सयुक्त उसी में, जिसमें, है यह जो कल्पित काया॥ आदि

इस प्रकार यहा लावनीकार पर स त साहित्य का बहुमुखी प्रभाव स्पष्ट है यहाँ तक कि उपरोक्त एक पद म दो रूपक बाँधे गये हैं तो एक लावनी म भी दो उसी प्रकार के रूपको का सयोजन किया गया है।

श्री ख्यालीमिश्र (लावनीकार) ने इडा, पिंगला और सुषुम्ना आदि के स्थानो (चन्द्र, सूय आदि) की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है कि स त लोग इनको चीन्ह कर साधना करते हैं।—यथा—

पहले नाडी तीन चीन्ह, हो लीन करें साधू साधन।
इडा, पिंगला और सुषुम्ना हैं तीनो के तीन बरन॥
पिंगल रविघर जान चन्द्र है एडा का अस्थान अटन।
छिन छिन रवि शशि बहे, उसे विस्तार कहे साधु सुषमन॥
तीनों नाडी साध जगत की व्याध छूट मन से जावे
शून्य शिखर जा चढ़े उसे फिर कहो काल कसे खावे

यहा भी (लावनीकार) की धारणा यही है कि शू य शिखर मे पहुचने पर किसी को काल कसे खा सकता है।

स त कबीर ने भी स्पष्ट कहा है कि वहा (शून्य म) न तो सिंह का (काल का) डर है और न ही रात दिन आदि होते हैं। मैंने अपनी लगन वहीं लगा ली है—

"जिंहि बन सिंह न सचरैं, पषि उड नहिं जाइ।
रैन दिवस का गमि नहीं, तहाँ कबीर रह्या ल्यौ लाइ॥ [1]

यह सन्त प्रभाव लावनी साहित्य पर प्रचुर मात्रा मे यत्र-तत्र बिखरा पडा है। विस्तार भय से यहा अधिक उदाहरण नही दिये गये हैं, केवल कुछ ही नमूने प्रस्तुत किये हैं।

---

१ क० ग्र०—पृ०—१५१, दो०—१।

५ सन्त साहित्य और लावनी साहित्य मे 'योग समाधि'

'प्रकृति के सभी विकारो का अवधूनन करने वाला सिद्ध ही अवधूत है। अवधूत योगी ही सद्गुरु पद को प्राप्त कर सकता है। सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' मे सिद्ध योगी अवधूत को अत्याश्रमी, योगी सिद्धयोगी, जितेन्द्रिय आदि कहा गया है। 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' ने इसे प्रमाण रूप मे उद्धृत किया है।[१]

यद्यपि महात्मा तुलसीदास ने इस भक्ति को भगाने वाला माना है—

"गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग"[२]

तथापि नाथो और सिद्धो की परम्परा को पूर्णतया स्वीकार न करने पर भी, कबीर आदि सन्तो ने 'जोग', जोगी, अवधू समाधि आदि शब्दो का उदारतापूर्वक प्रयोग किया है—यथा

अवधू ग्यान लहरि धुनि माडी रे।[३]
× × ×
अवधू जोगी जग थे न्यारा।[४]

केवल यही नही अपितु इडा, पिंगला, सुषुम्ना, बकनाल आदि की चर्चा करके सन्तो ने सुन्न शिखर की सेज को भी पसन्द किया है (जिसकी चर्चा, इससे पूर्व ही की गई है) और 'योग समाधि' से भी परम पद की प्राप्ति मानी है—कबीर कहते हैं—'हे मन के स्वामी ! मेरा मन केवल आप मे ही अनुरक्त है। आपके चरण कमलो मे ही मेरा मन लगता है, मुझे अन्य कुछ भी प्रिय नही है। स्वाधिष्ठान चक्र मे मूलाधार चक्र से कुडलिनी का पहुचाने से जो समाधि लगाई जाएगी, उससे मृत्यु भय दूर हो जाएगा। अष्ट कमल—सुरति कमल—के मध्य ईश्वर का निवास है। यदि सद्गुरु प्राप्ति हो जाए तो वहा तक पहुचा जा सकता है अन्यथा यह जन्म व्यर्थ ही चला जाता है। कदली तुल्य रीढ की हड्डी के मध्य जो नाडी जाल है, मूलाधार चक्र से हृदय चक्र तक पहुचने मे दस अगुल की दूरी है। यहा द्वादश दल वाला कमल है, जिसकी प्राप्ति से मृत्यु नही होती। सुषुम्ना यदि ऊपर सहस्रार मे जाकर बाई ओर को विस्फोट करे तो वहा उस शून्य गुफा से अमृत स्रवण होता है। यदि साधक को इस स्थान की प्राप्ति हो जाय तो वह त्रिवेणी स्नान का पुण्य लाभ यही करता है। वहाँ जाकर पुन ससार की ओर दृग्पात करने की आवश्यकता नही, वहाँ तुम्हारा मिलन अन्य मुक्तात्माओ से भी हो जाएगा। अनहद नाद के द्वारा मेघ गर्जन का

---

१ ना० और स० सा०, पृ०—२६५। गो० सि० स०—पृ०—६।
२ कवितावली—उत्तर काण्ड—पृ०—८४।
३ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण १९६५ पृ०—३४२, पद–१०—प्रो० पुष्पपालसिंह।
४ —वही— पृ०—३७८, पद–६६।

सुख लाभ होता है और परब्रह्म के दर्शन होते हैं। वहाँ अनन्त ज्योतिष्मान् परमेश्वर की कांति का विद्युत प्रकाश है एवं अमृत स्रवण से समस्त मुक्तात्माएँ स्नात हैं। पोडषदलकमल—विशुद्ध चक्र—प्राप्ति पर साधक प्रभु से तदाकार हो जाता है। इस स्थिति को प्राप्त कर जरा मरण का भय भाग जाता है और पुनः आवागमन में नहीं पड़ना। यह परमपद गुरु कृपा के द्वारा ही पाया जा सकता है। वैसे चाहे कोई कितना ही भगीरथ प्रयत्न करे, उसकी प्राप्ति नहीं कर सकता। कबीर तो अब उसी परमपद का लाभ सहज समाधि द्वारा कर रहा है।—यथा—

> मन के मोहन बीठुला यहु मन लागौ तोहि रे।
> चरन कवल मन मानियाँ, और न भावै मोहि रे॥
> ॥टेक॥ षट दल कवल निवासिया, चहु कौ फेरि मिलाइ रे।
> दहु के बीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासि आइ रे॥
> अष्ट कवल दल भीतराँ, तहाँ श्री रंग केलि कराइ रे।
> सत गुर मिलै तौ पाइये नहीं जन्म अकारथ जाइ रे॥ आदि[1]

इसी प्रकार की समाधि की चर्चा करते हुए प० रूपकिशोर (लावनीकार) ने भी यही कहा है कि सच्चा साधु वही है सच्चा ध्यानी वही है जो योग की रीति से समाधि को धारण करके परमब्रह्म की आराधना करता है। वह सत्य के पथ को धारण करता है अर्थात् सत्य मार्ग पर चलता है और सद्ग्रन्थों का अवलोकन करके योग की विद्या को साध लेता है। उसके धर्य और वीर्य की कान्ति बढ़ जाती है। वह आकाश में (शून्य शिखर में) चढ़ जाता है और उसकी तीनों प्रकार की व्याधियाँ छूट जाती हैं। सभी लोग ऐसे व्यक्ति के चरणों को (शीश पर) धारण करते हैं और कोई भी उसकी बात को काट नहीं सकता। उस व्यक्ति के लिए धूप और छाँह समान होती है और उसके निकट कोई बीमारी नहीं आती।

वह वल्कल चीर को धारण करके किसी पर कभी क्रोध नहीं करता और परमब्रह्म का ध्यान लगाकर बाहर और भीतर का शोध कर लेता है। यही कारण है कि उसके शरीर का सभी मल (कलमष) धुल जाता है और वह संसार रूपी अगाध समुद्र से पार उतर जाता है।

यहाँ कबीर और प० रूपकिशोर दोनों ने ही 'समाधि' को जरा मरण से छुटकारा दिलाकर संसार रूपी सिंधु से पार उतारने वाली बताया है। लावनी का कुछ अंश इस प्रकार है—

> धरमी ध्यानी दया न्याय युत, योग रीति से धर समाध।
> ध्यानी हैं वो साधु सही जो, परमब्रह्म को लेत अराध॥ आदि

---

1 क० ग्रं०—द्वितीय संस्करण सन् १९६५, पृष्ठ—३३५।

सन्त कबीर कहते हैं कि 'मैं उस प्रभु का रहस्य जान गया हूं। गुरु उपदेश से यह ज्ञात हुआ कि अनन्त प्रकाश के मध्य उस ज्योति पुञ्ज का निवास है। शून्य तरु पर एक अनन्त सौन्दयमयी मूर्ति—ब्रह्म—है। 'सुरत द्वारा—सहज समाधि—द्वारा उसके दर्शन किये जा सकते हैं। उस तरु की शाखा, पत्र, तना इत्यादि सामान्य वृक्ष की भाँति नहीं हैं, अपितु वहाँ तो केवल मात्र अमृत का ही श्रवण होता है। उस तरुवर के फल पर मधु लोभी मधुकर—साधक—पहुंचता है और उस अमृत को अपने हृदय में संचित कर लेता है। इस प्रकार सोलह पवनों से वह स्पर्श करता है और उसका फल शून्य से ही लगा हुआ है। सहज समाधि के द्वारा इस वृक्ष का अभिसिंचन किया जाता है उसे सांसारिकता का स्पर्श तक नहीं होता। कबीर कहते हैं कि मैं उस साधक भक्त का शिष्य बनने को तयार हूं जिसने ब्रह्म स्वरूप इस अद्भुत वृक्ष को देख लिया है।—यथा—

> अब मैं जाणिबो रे केवल राइ की कहाणी।
> मझा जोति राम प्रकाशै गुरु गमि बाणी॥
> ॥ टेक ॥ तरवर एक अनन्त मूरति, सुरता लेहु पिछाणी।
> साखा पेड फूल फल नाहीं, ताकी अमृत बाणी॥
> सहज समाधि बिरछ यहु सींच्या, धरती जल हर सोष्या।
> कहै कबीर तासु मैं चेला, जिनि यह तरवर पेष्या॥[1]

यहाँ कबीर जी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि मैंने उस वृक्ष का तथा शून्य आदि के भेद को भली प्रकार जान लिया है परन्तु यदि अन्य कोई व्यक्ति इस भेद को बता सके तो मैं उसका शिष्य भी बनने के लिए तयार हूँ।

इसी प्रकार पं० अम्बा प्रसाद (लावनीकार) ने भी अपनी 'योग समाधि' नामक लावनी में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यदि तुम उस के डाल-पात फल फूल और मूल (आनन्द) रस तथा इस रस का स्वाद लेने वाले (साधक) आदि के विषय में कुछ जानते हो तो बताओ। हजारों व्यक्ति खोज खोज करके मर गये, किसी को भी उस आदि अनादि ब्रह्म का पता नहीं लगा। तुम्हें क्या मालूम कि इस ब्रह्म समाधि का घर कहाँ है? यदि तुम्हें मालूम है तो बताओ कि 'सोहं' का क्या स्वरूप है? बताइये कि 'सोहं' कहने से क्या प्रकट होता है और तीन पाँच, बारह नौ और सात क्या हैं? इडा, पिंगला और सुषम्ना, तीनों नाडियाँ तो अज्ञात हैं तुम पृथक् पृथक् बताओ कि (योग समाधि के समय) कौन सा स्वास किस स्वास के साथ चलता है? वह अमृत का कूप (कुआ) कहाँ है?—यथा—

> खोज खोज मर गये हजारों पता न आदि अनादी का।
> तू क्या जाने कूर दूर घर है इस ब्रह्म समाधि का॥

---

१ क० ग्र०—द्वितीय संस्करण सन् १९६७, पृष्ट ४३५, पद—१६६।

॥ टेक ॥ क्या स्वरूप 'सोहं' का बताना, सोहं किस अक्षर की जात।
क्या सोहं से भया प्रकट कहो तीन पांच बारह नौ सात ॥
इड़ा पिंगला और सुषुम्ना य तीनों नाड़ी अज्ञात।
बता भेद सब जुदे जुद चले कौन श्वास किस श्वास के साथ ॥ आदि

सन्त कबीर कहते हैं कि अब मुझे ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हो गई है। उस सहज समाधि म ऐसा अपरिमित सुख है कि करोड़ा कल्प तक उसी स्थिति म रमा जाए।

कृपालु सद् गुरु ने जब कृपा द्वारा ज्ञान प्रशस्त किया तो हृदय म पूर्ण कमल का विकास हुआ, जिसस मेरा ससार विषयक भ्रम दूर हो गया और अनन्त ज्योति प्रकाशित हो उठी। आदि।—यथा—

अब मैं पाइबो रे पाइबो ब्रह्म गियान।
सहज समाध सुख में रहिबो, कोटि कल्प विश्राम ॥
गुर कृपाल कृपा जब कीन्हीं हिरदे कवल बिगासा।
भागा भ्रम दसौं दिस सूझ्या परम ज्योति प्रकासा॥[1]

इसी प्रकार की भाव धारा को पुष्ट करते हुए प० रूपकिशोर (लावनीकार) कहते हैं कि यह ब्रह्म ज्ञान (जो कबीर को प्राप्त हुआ है) तभी प्राप्त होता है जब ध्यानी लोग ध्यान लगाकर, कमलासन मार कर समाधिस्थ हो जाते हैं। धर्म का शोधन करने पर तथा ज्ञान प्राप्त करने पर लोभ मद काम क्रोध आदि के उपद्रव समाप्त हो जाते हैं। ललाट म ब्रह्म का ध्यान धरने से और हृदय म कमल की स्वासा साधन से तथा हित के हिरदे मे धूल स्याम (चन्द्र पिंगल नाड़ी) और अरुण रूप की (सूर्य की इड़ा की) आराधना करने से, पूरक, कुम्भक स चढ कर रेचक से उतरने से और स्वासा को साध कर अर्थात समाधि लगाकर मन को विघ्नो से रहित किया जा सकता है और सभी व्याधियों से छूटा जा सकता है। शून्य शिखर म (जहाँ अगाध जल भरा हुआ है) गोता लगाने से मोह रूपी अन्धकार समाप्त हो जाता है और दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है। आदि यथा

ध्यान से ध्यानी कर कमलासन बैठ बनो में लगा समाध।
धरम शोध कर बोध, लाभ मद काम क्रोध की मिटे उपाध ॥
धर लिलाट में ध्यान ब्रह्म का, हृदये कमल की स्वासा साध।
धूल स्याम और अरुण रूप को, हित के हिरदे में आराध।
धरम पुरक कुम्भक से चढ रेचक से उतर छूट सब व्याध।
धरे धीर बिन स्वास साध के फर मन को कर विघ्न अबाध ॥
धाप मार ल शून्य शिखर की जहा तरी जल भरा अगाध।
धुन्दकार मिट जाए मोह का, दिव्य दृष्टि होवे, न उपाध॥ आदि

---

१ क० ग्र०—द्वितीय संस्करण सन् १९६५, पृष्ठ ३३८, पद ६।

इस प्रकार सन्तो एवं लावनीकारो मे 'समाधि' सम्बन्धी अनेक 'साम्य' लावनी-साहित्य पर सन्त साहित्य के प्रभाव के सूचक हैं। केवल 'समाधि' ही नही, अपितु इससे सम्बन्धित अन्य अनेक प्रक्रियाओ के सम्बन्ध म भी दोनो मे अनूठा साम्य दृष्टिगोचर होता है। कही-कही तो ऐसा प्रतीत होता है कि सन्तो के पदो का लावनीकारो ने ज्यो का त्यो अनुवाद करके रख दिया है यद्यपि वास्तव मे वह अनुवाद नही अपितु सन्तो के प्रभाव के कारण लावनीकारो की वे अपनी मान्यताएँ है और उन्होने अपने अनुभव के आधार पर ही लिखा है। लावनी साहित्य मे 'योग समाधि' 'सहज समाधि', 'शून्य समाधि' समाधि आदि शीर्षको से अनेक लावनियाँ हस्तलिखित रूप मे प्राप्त हैं। इन 'समाधियों' के अवलोकन से लावनीकारो के तत्सम्बन्धी विशेष ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है और इनकी प्रचुरता को देखकर एसा प्रतीत होता है कि मानो उन दिनो 'समाधियाँ लिखने की होड सी लगी हुई थी और जब तक लावनीकार एक दो 'समाधियां' न रच लेता तब तक वह अच्छा लावनीकार नही समझा जाता था। सम्भवत यही कारण था कि प्राय समस्त लावनीकारो ने इस विषय का खूब मथन किया।

६ सन्त-साहित्य और लावनी साहित्य मे—उलटबासियाँ—

कहने की आवश्यकता नही कि सन्त-साहित्य मे कबीर आदि सन्तो की उलटबासियो का अपना विशेष महत्व है परन्तु आश्चर्य की बात है कि लावनी साहित्य मे भी इस प्रवृत्ति के प्रचुर मात्रा म दर्शन होते हैं। इन 'उलटबासियो पर विचार करने से पूर्व इनके अर्थ और परम्परा पर भी किंचित् दृक्पात कर लेना अनुपयुक्त न होगा।

'उलटवासी' का अर्थ सामान्यतया 'उलटा अर्थ' लिया जाता है परन्तु यह अर्थ और परिभाषा किंचित भ्रमोत्पादक है। इसके दो अर्थ लगाये जाते है—प्रथम तो 'जैसा कि अर्थ वास्तव म प्रकट है, उससे उलटा लगाया जाए,—दूसरे—जो प्रतिपाद्य का वास्तविक अर्थ है उससे उलटा समझा जाए।'

श्री परशुराम चतुर्वेदी और डा० सरनामसिंह प्रभृत विद्वानो ने इन शब्दों पर विशेष प्रकाश डाला है।

एक लावनीकार का कथन है कि —

'इन उलटों के सुलटे हैं अर्थ लिया, कवि शम्भु यों फरमाने लगे"

अर्थात् ये सब बातें उलटे रूप म कही गई हैं इनके अर्थ सुलटे हैं—अर्थात्—इन्हे सुलटा करके पढ़ोगे तो अर्थ स्वत स्पष्ट हो जाएगा।

परम्परा की दृष्टि मे विद्वानो ने वेदों म भी इस 'उलटबाँसी शैली की उपस्थिति मानी है। इस सम्बन्ध म मुख्यतया 'ऋग्वेद' से ही उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं—यथा—

१—'अपादेति प्रथमा पद्वतीना कस्त द्वा मित्र वरणा चिकेत'

अर्थात् 'बिना परो वाली, पैरो वाली मे पहले आ जाती है, मित्रा वरुणा इस रहस्य को नही जानते'[1]

२—'चत्वारि श्र गा त्रयोअस्य पादा द्व शीर्षे सप्त हस्ता सो—
त्रस्य त्रिधा वृद्धो वृषभो रोर वीति ।

अर्थात्—'इस बैल के चार सीग, तीन चरण, दो सिर और सात हाथ हैं यह तीन प्रकार से बधा हुआ, उच्च शब्द करता है।'[2]

३—"इद वपु निवचन जना सश्चरन्ति यन्नद्यस्त स्थुराप'

अर्थात्—हे मनुष्यो। यह वपु निवचन है क्योकि इसमे जल स्थिर है और नदियाँ बहती हैं।[3]

इसी प्रकार के उदाहरण 'अथर्व वेद' आदि मे भी खोजे गये है। वेदो के पश्चात् उपनिषदो द्वारा इस शैली का और भी अधिक विकास हुआ और उपनिषदो से यह विचित्र कथन की प्रणाली सिद्धो नाथो मे आई। कबीर ने कही कही तो सिद्धो और नाथो की उक्तियो को (बहु चर्चित होने के कारण ही समझो) यथावत् ही रख दिया है —

"बैल बियावल, गविया बाँझ ॥'
× × ×
'बरसै कम्बल, भीग पानी'
× × ×
'नाव विच नदिया डूबी जाए"

लावनी साहित्य मे नाथो सिद्धो या कबीर आदि सन्तो की ये उक्तियाँ ज्यो की त्यो तो प्राप्त नही होती परन्तु विचित्रता की दृष्टि से इस प्रकार की अनेक लावनियाँ इन उक्तियों के समक्ष भली भाँति टिक सकती है।

सन्त कबीर कहते हैं —

एक अचम्भा देखा रे भाई।
ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई ॥ टेक ॥

---

१ श्री सातवलेकर द्वारा सपादित ऋ० स० ततीय सस्करण पृष्ठ ११६ पंक्ति ६ (१, १५३ ३) अथ सहिता—पृष्ठ २१७ (सातवलेकर) (६, १० २३)

२ श्री सातवलेकर द्वारा सम्पादित—ऋ० स० (तृतीय सस्करण) पृष्ठ २७७—म०—४ ५८ ३, और य० स०—पृष्ठ—७८ ततीय सस्करण, अध्याय १७ ६१।

३ —वही—अ० स०, पृष्ठ—३११—म०—५—४७ ५

पहले पूत पिछ भई माई ।
चेला के गुरु लागे पाई ॥
जल की मछली तरुवर ब्याई ।
पकडि बिलाई, मुरगे खाई ॥
बैलहिं डालि गूनि घरि आई ।
कुत्ता कू लै गई बिलाई ॥
तलि करि साषा उपरि करि मूल ।
बहू भाँति जड लागे फूल ॥
कहै कबीर या पद कू बूझ, ताकू तीन्यू त्रिभुवन सूझ ॥[1]

यहाँ कबीर ने साधना क्षेत्र की बातें रूपक बाँध कर कही हैं जिनसे हमे साधारण लोक व्यवहार की दृष्टि से कुछ 'उलटा सा' लगता है। इसी प्रकार प० रूपकिशोर (लावनीकार) ने साधना क्षेत्र की बातो का रूपक बाँध कर कहा है कि 'मैं एक देखी हुई, पर तु विस्मत सी बात कह रहा हू कि वन मे एक बार एक मग एक सिंह को खा रहा था, यह सुनकर, अरे योगी, अचम्भा न मान, आँखें खोल और देख, वह मृग यहाँ आ रहा है क्योकि हाथी को एक चीटी ने चाट लिया है और चीते को बिलाव धमका रहा है कबूतर ने एक बाज को पकड लिया उसके पख फेंक दिये और उसका माँस खा रहा है एक राजा पर एक साधारण चौकीदार ने चढाई कर दी है यह देखकर सारा नगर दुखी हो रहा है। प्रजा का कुछ भी वश नही चलता क्योकि सत्यवादी ने ही अपना सत्त छोड दिया है इस प्रकार राजा का सारा राज्य क्षीण हो गया और हाय हाय का शब्द सुनाई दे रहा है। यथा—

एक देखत भूली सी बात कहूँ बन में मृग सिंह को खाय रह्यो ॥
मत मान अचम्भा ए जोगी, दग खोल, इते मग आय रह्यो ॥
॥टेक॥ गज को एक चींटी चाट गई, चीते को बिलाव चिताय रह्यो ॥
एक पकरयो बाज कबूतर ने, पर फेंक के माँस चबाय रह्यो ॥
एक भूप पे चौकीदार चढयो, यह देख के नगर दुखाय रह्यो ।
बस नाँय चल कुछ परजा को सतवादी सत डिगाय रह्यो ॥
॥मि०॥ सब राज महीप को, क्षीण भयो, हा हा को शब्द मचाय रह्यो ।
मत मान अचम्भा

यहाँ द्रष्टव्य बात यह है कि प्रतीक रूप म चाहे सन्त कबीर और प० रूपकिशोर ने मृग, सिंह आदि को मान बुद्धि, जीव आदि किसी का भी प्रतीक माना हो परन्तु चित्रण दोनो ने ही अपने अपने ढग से इस शरीर मे रहने वाले विकारा (इन्द्रिय आदि) का किया है।

---

१ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण, पृ० ३४३, पद ११।

सन्त कबीर ने सिंह रूपी ज्ञान की देख रेख में इन्द्रियो रूपी गायो को चर वाया है तो प० रूपकिशोर ने ज्ञान रूपी मृग से अज्ञान रूपी सिंह का भक्षण कराया है और योगी को बताया है कि देख योग साधना के फलस्वरूप यह ज्ञान रूपी मृग तेरे निकट ही आ रहा है आदि।

इस रूपक योजना में प्रतीक की अत्यधिक प्रधानता के कारण कहीं-कहीं कबीर की यह रूपक योजना गौण पड़ गयी है। यथा—

है कोई जगत गुरु ग्यानी, उलटि वेद बूझै।
पाणी में अगनी जरै, अधरे को सूझ ॥
एकनि दादुर खाये पच भुवगा।
गाइ नाहर खायो हरनि खायो चीता ॥
कागिल गरफदिया, बटेरै बाज जीता ॥
मूसै मजार खायौ स्यालि खायो स्वाना।
आदि को आदेश करत, कहै कबीर ग्याना ॥[1]

यही बात लावनीकारो में भी विद्यमान है। लावनीकारो ने भी कहीं-कहीं प्रतीक योजना ऐसी की है कि रूपक-योजना गौण होकर ही रह गयी है। यथा—

एक बात अचम्भी देखी मिया, बिल्लिया को जो चुहिया खान लगी।
गधव को गान सुनाता गधा, सुन इन्द्र की रूह चकराने लगी ॥
गई नेवले का नागिन जड से निगल औ बगुले का मछली दबाने लगी।
किया शेर को जेर बकरियों ने भेडिये को भेड भगाने लगी ॥
अधे को खलक नजराने लगी सुन बहरे की रूह चकराने लगी।
मुरशद को सबक दे मुरीद मियाँ नदि नाव के बीच समाने लगी ॥
आकाश के दर फल फूल खिले जब वेल यहा मुरझाने लगी।
उठ कूर को गग चली न्हाने और आब को आतिस खाने लगी ॥

यहा कबीर के पद और प० शम्भुदास की लावनी के उपरोक्त अश मे रेखा कित शब्दो से न केवल रूपक योजना का ही प्रभाव दृष्टिगोचर होता है अपितु प्रतीक योजना पर भी स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। यहाँ तक कि 'मूस मजार खायो और बिल्लिया को जो चुहिया खान लगी' तथा 'पाणी में अगनी जरै और आब को आतिश खान लगी जसा स्पष्ट प्रभाव भी यत्र-तत्र उपलब्ध है। सन्त कबीर की 'नाव बिच नदिया डूबी जाय' जसी प्रसिद्ध उक्तियो को लावनीकारो ने नदि नाव के बीच

---

१ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ५०।
२ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ४७।

समान लगी और "नदि नाव के बीच डुबाने लगी" कह कर स्पष्ट रूप से सन्तो का प्रभाव स्वीकार किया है। सन्त कबीर कहते हैं —

> ऐसा अद्भुत मेरे गुरु कथ्या, मैं रहया उमेप।
> मूसा हस्ती सौं लड कोई विरला पेपै॥
> मूसा पेठा बाबि म, लार सापणी धाई।
> उलटि मूसै सापणि गिली, यह अचिरज भाई।
> चींटी परवत ऊपण्यां, लै राख्यौ चौडै।
> मुरगा मिनकी यू लडै झल पाणी दौडै॥
> भील लुक्या बन बीझ मैं ससा सर मार।
> कहै कबीर ताहि गुरु करो, जो या पदहि विचार॥[1]

इसी प्रकार का विरोधाभास लावनीकारों मे भी विचित्र ढग से वर्णित है। यथा—

> मगराज को मार तब मगनि लिया, सुन बहरे की बुद्धि डुलाने लगी।
> एक चुहिया ने हस्ती से युद्ध रचा, चींटी परवत चढ जाने लगी॥
> जा भील छुप्या बीहड बन में, हिरनी सर धनुप चढाने लगी।
> लगे चले पढाने गुरु के तई भेडिये को भेट भगाने लगी॥
> चूहे ने निगल सापिन को लिया, बिल्ली को हासी आने लगी।
> दस आठ छह चार का सार है ये दुनिया सुन नाक चढाने लगी॥

यहा भी विशेप दर्शनीय यह है कि कबीर और लावनीकार की प्रतीक योजना तथा विरोधाभास आदि ऐसे साथ साथ चलते हैं, मानो एक दूसरे का अनुवाद मात्र ही हो। 'मूसा हस्ती सौं लड' और "एक चुहिया ने हस्ती से युद्ध रचा" तथा "जा भील छुप्या बीहड वन म' और "भील लुक्या वन बीझ म' आदि से लावनी साहित्य पर सन्त-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है।

जहा सन्त साहित्य मे (विशेप रूप से कबीर-साहित्य मे) इस प्रकार की उक्तियो की न्यूनता नही है वहाँ लावनी साहित्य म भी यत्र-तत्र इस प्रकार की उलटवासिया अत्यधिक मात्रा म उपलब्ध हैं। केवल प्रतीकात्मता तथा अलकार आदि की दृष्टि से ही नहीं अपितु साधना क्षेत्र की दृष्टि से भी लावनी-साहित्य इन उलट वासियो से भरपूर है। यदि कबीर का ज्ञान रूपी सिंह अनेक इद्रिय रूपी गायो पर शासन करके उन्ह चराता है तो प० रूपकिशोर (लावनीकार) का ज्ञान रूपी मृग भी इद्रिय रूपी मछलियो से युद्ध कर रहा है। लावनीकार कहता है —

---

१ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण पृष्ठ २१।

मग मे और मीन मे युद्ध मच्यो, जल मे जल जीव निहारत है।
गयो चाल जो चूक तो प्राण गए, तब रामहि राम पुकारत है—॥ आदि

सन्त कबीर ने अनेक स्थानो पर कहा है कि इस पद को कोई विरला ही समझ सकता है आदि। लावनीकार भी कहता है कि —

अज्ञान अचम्भा मान अधर्मी पातक आपने धोय रहा।
कोई साधू समझे छन्द मेरा, और मूरख मन म रोय रहा—॥ आदि

इस प्रकार अनेक स्थानो पर शब्दो तक की भी समानता होना स्पष्ट रूप से सन्त-साहित्य के प्रभाव का द्योतक है।

७ सन्त साहित्य और लावनी साहित्य मे "आडम्बर खडन"

'सन्त' अपनी स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। उन्होने अपनी स्पष्टवादिता के समक्ष हिन्दू मुसलमान अमीर गरीब और बडा छोटा किसी को क्षमा नही किया। कई बार तो यह स्पष्टोक्ति इतनी अप्रिय होती थी कि दूसरो को वह अक्खडपन प्रतीत होता था।

भारतीय धर्म शास्त्रो म वर्णित— *सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात्'* म से उन्हे प्रथमाश ही अधिक प्रिय था द्वितीयाश (प्रिय ब्रूयात्) की उन्होने कभी चिन्ता नही की। यही बात लावनीकारो मे भी स्थान स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। लावनीकारों मे कुछ साधारण-स्तर के लावनीकारो के अतिरिक्त अनेक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होने किसी भी सासारिक की चिन्ता न करते हुए, जो कुछ उचित लगा वह स्पष्ट कहा। उन्हे आडम्बर बिल्कुल भी पसन्द न था।

समाज-सुधार की दृष्टि से पलायनवादी आडम्बरी लोगो के प्रति सन्त कबीर ने स्पष्ट कहा है कि —

नारी मुई घर सम्पत्ति नासी।
मूड मुडाइ भये सन्यासी॥

ऐसे ही लोगो के प्रति उन्होने कहा कि यदि मन को आशा रूपी पाश से नही छुडाया तो विरक्त होकर वन म जाकर रहने से क्या लाभ ?

का बन म बसि भये उदास
जे मन नहि छाडैं आसा पास।[1]

यही बात सन्त सुन्दरदास ने भी कही है कि आसन छोडि के कासन ऊपर आसन मार्यौ पै 'आश' न मारी और यही प्रभाव हम लावनी साहित्य म भी उपलब्ध

---

१ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण–पृष्ठ ४१३, पद १३०।

है। लावनीकार एक साधु वेश धारी से पूछता है कि महाराज ! आप कहाँ से आय हैं और यह जोग किस लिए लिया है ? शरीर पर भस्म रमाकर जगलो मे किस लिए फिर रहे हो ? तुमने वालकपन में ही यह 'जोग' क्यो लिया ? वह कौन अज्ञानी गुरु है जिसने ऐसा उपदेश देकर तुम्हें दुख दिया है जरा वताओ तो सही कि किसके दम पर तुमने ऐसा किया है और तुमने कौन से गुरु का प्रेम प्याला पी लिया है ! जप जोग आदि की वातो का आकपण दिखा कर तुमको किसने इस प्रकार पावन्ध किया है अर्थात् यह सब समाज के प्रति धोखा है, आडम्बर है। यथा

> जोगी जी कहा से आए हो जोग लिया किसके कारन ।
> किस फिराक मे—फिरो हो भस्म रमा भ्रमते वन वन ॥
> ये बालापन म जोग क्यो धारण किया स्वामी ।
> ये किस अनान ने उपदेश देकर दुख दिया स्वामी ॥ आदि

यहाँ जोगी जी के वहाने से ऐसे व्यक्तिया की खिल्ली उडाई गयी है जो केवल भगवाँ वस्त्र पहनने को ही साधु वनना समझते हैं। यहाँ तक कि एसे व्यक्तियो के गुरुआ को भी अज्ञानी कहा गया है।

यही वात सन्त कवीर ने भी अनेक स्थानो पर कही है कि—

> का नट भेप भगवा बस्तर भसम लगाव लोई ।
> ज्यो दादुर सुरसुरि जल भीतरि, हरि बिन मुकुति न होई ॥[१]

अर्थात्—नट के समान भगवें वस्त्र से विभिन्न वेप धारण करने और शरीर को भस्म लगाने से क्या लाभ है ? जिस प्रकार गगा जल मे रहने से मेढक मुक्ति को प्राप्त नही कर लेता इसी प्रकार बिना वास्तविक भक्ति से मुक्ति सम्भव नही है।

एक अन्य इसी प्रकार के साधु को देखकर श्री नारायण प्रसाद (लावनीकार) ने साधु से कुछ प्रश्न करते हुए अपनी ओर से कहा है कि—

'अरे जोगी जी, जरा इधर तो आइये, और वताइये तो आप किस कमाल के हैं ? आप कहाँ स आए हो, कहाँ जा रहे हो और किसके बालक हो ? अपने मुख से अपने गुरु के वचन तो कहो कि उन्होने आपको क्या उपदेश दिया है ? अरे महन्त ! तेरा सन्त (गुरु) कौन है, जो अजन्म होकर भी सन्त जीवित रहा है ? वह गुरु कौन है जिसने तुझे बिना मन्त्र (उपदेश) दिये ही अपना चेला वना लिया है ? ऐसा लगता है कि तुम्हारी यह सब साधना झूठी ही पडेगी, क्योकि अमृत के बहाने से तुमने विष का ही पान किया है अर्थात् सोच समझकर जोग नही लिया। सन्तो की कीमियाँ तो यही है कि उनके वचनो म सिद्धि हो। यदि यह सिद्धि नही है तो यह जोगी का

---

१ — वही — पृष्ठ ५४४, पद ३४६ ।

स्वरूप व्यर्थ ही है और वह जोगी नहीं, भिखमगा है। तुम न फन पात के हो और न वृक्ष या इसकी डाल के ही हो। अर्थात् यह जोग व्यथ है। यथा—

इधर को जोगी जी आइयेगा कहो तो तुम किस कमाल के हो।
कहाँ से आए कहाँ को जाओ, के कौन हो किसके बालक हो॥
॥टेक॥ निकालो मुख से वचन गुरु का गुरु ने उपदेश जो दिया है।
महत, है स त कौन तेरा, अजन्म हो जो सदा जिया है॥—आदि

यहाँ लावनीकार का भाव यही है कि समाज को ऐसे लोगो की आवश्यकता नहीं है जिन्हे कोई ज्ञान तो है नहीं परन्तु व्यथ ही जोगी का भेष धारण करके भीख माँगते फिरते हैं और आडम्बर करके समाज को ठगते हैं। सन्त कबीर भी इसी बात को अपने ढग से इस प्रकार कह रहे हैं कि—

भगवें वस्त्र पहन कर माला हाथ म लेना तो सब सासारिक भेष (दिखावा मात्र) है माला तो मन की ही होती है अगर माला फेरने से ही भगवान मिलें तो रहँट के गले को देखो। यथा—

कबीरा माला मनहि की, और ससारी भेष।
माला फेरे हरि मिलें, गले रहट के देख॥

इसी 'ससारी भेष को सन्त भर्लसिह महाराज (लावनीकार) ने इस प्रकार चित्रित किया है—

कहो साध जी क्या पाया, ये तुमने भस्म रमाने मे।
आशा तृष्णा मिटी नहीं तबियत है मजा उडाने मे॥

अर्थात्—हे साधु! कहो तुमने भस्म रमा कर क्या पाया। तुम्हारी आशा-तृष्णा तो मिटी ही नहीं, 'तबियत तो मौज उडाने म लगी रहती है। क्योकि कबीर ने तो स्पष्ट ही कहा है कि—

मूड मुडाय हरि मिलें, तो सब कोई लेय मुडाय।
बार बार के मूडत भेड न बकुठ जाय॥

सन्त कबीर कहते हैं कि भगवान न तो मन्दिर मस्जिद म है और न काबे कलाश म है वह तो "राम रमया रमि रहा घटि ही खोजो भाई' है। अर्थात्—वह तो अपने पास ही है।

यही बात सन्त भर्लसिह ने अपने शब्दो म इस प्रकार कही है—

आते जाते पाव टूट जा, काबे काशी जाने मे।
नाहक जान खो बठोगे, हरबार के जाने-आने मे।

जहाँ कबीर ने पंडितो को फटकारा वहाँ मुल्ला जी से भी कहा कि अरे (काजी) मुल्ला जी, मस्जिद पर इतने ऊँचे चढकर जो खुदा का नाम पुकार रहे हो तुम्हारा साहेब (भगवान) बहरा है क्या ? परन्तु वह खुदा बहरा कसे हो सकता है वह तो चीटी का पद चाप भी सुन लेता है—

> मस्जिद ऊपर मुल्ला पुकारे क्या साहेब तेरा बहरा है ?
> चीटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है।

इसी स प्रभावित हो सन्त भर्लसिह कहते हैं—

> भला बताओ काजी जी, हासिल क्या शोर मचाने मे।
> है क्या तुम से दूर, बाग जो देते फिरो जमाने मे॥

अर्थात्—हे काजी जी (मुल्ला जी) यह शोर मचाने मे क्या रखा है ? (वह परमात्मा) तुम से दूर है क्या, जो जमाने भर म बाग देते फिर रहे हो।

इसी प्रकार की स्पष्टवादितापूण आडम्बर खडक उक्तियाँ सन्त-साहित्य और लावनी साहित्य दोनो मे ही उपलब्ध हैं। इससे स्पष्ट ही विदित होता है कि पूववर्ती सन्त साहित्य का प्रभाव परवर्ती लावनी साहित्य पर अत्यधिक अश मे पडा है। विस्तार भय से यहाँ और अधिक उद्धरण नही दिये जा रहे हैं।

८ सन्त साहित्य और लावनी साहित्य मे—'माया चर्चा'

सन्त साहित्य और लावनी साहित्य, दोना मे ही 'माया' की विशेष चर्चा की गयी है।

सन्त कबीर के अनुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन मे माया' सबसे वडी बाधा है। कबीर ने इस माया के विविध रूपो का वणन किया है। अन्य सन्तो ने भी इसी प्रकार माया के अनेक रूपा का वणन किया है। अनेक सन्ता ने कबीर के स्वर म स्वर मिला कर कहा है कि यह माया पापणी है और सासारिक आकषणो का फदा हाथ मे लेकर बैठी हुइ है। लावनीकारा ने भी कहा है कि प्रभु मिलन म यदि कोई बाधा है तो वह माया ही है जो मनुष्यो को अपने फन्दे म फँसा लेती है।

सन्त कबीर कहते हैं—

> माया महा ठगनी हम जानी।
> तिरगुण फास लिये कर डोल बोलै मधुरी बानी॥

अर्थात्—हमने जान लिया है कि यह माया महा ठगनी है यह तीनो गुणो (सत् रज तम) का फदा लिए हुए डोलती है और अपनी मधुर वाणी से (आकषण से) सब को फँसा रही है।

यही बात लावनीकार सन्त भर्लसिह जी महाराज ने इस प्रकार कही है—

ये हरजाई माया ठगनी, इधर उधर डोलै ठगती ।
इस कारन माया को देख क, 'भगती भगवत की 'भगती ॥ आदि

अर्थात्—यह हरजाई माया ठगनी है और इधर उधर सबको ठगती फिरती है, यही कारण है कि माया को दखकर भगवान की भक्ति (भगती) भाग जाती (भगती) है । जहाँ पर भक्ति है वहाँ माया नही आती और जिस घर म माया है, वहा भक्ति नहीं रह सकती क्योकि ये दाना एक दूसरे की 'सोत' है (एक पति की दो पत्नी) फिर एक 'सोत' दूसरी सोत के यहा कसे आए ? बल्कि एक दूसरी को देख कर नाक ही चढाती हैं, चाहे कणी (हीरे की कणी) खाकर ही क्या न मर जायें परन्तु एक-दूसरे से मिल नही सकती ।

यहाँ लावनीकार ने सत कबीर की भाँति उदाहरण देकर माया को भक्ति की विरोधिनी बताया है ।

सत कबीर कहते हैं कि ससार एक बाजार है जिसमे इद्रियो के स्वाद रूपी विषय-वासनाओ के ठग एव मायारूपी वेश्या जीव को ठगने का, अपने जाल म फँसाने का उपक्रम करते हैं । हे मनुष्य ! यदि तुम निष्ठापूवक प्रभु आश्रय ग्रहण करोगे, तो तुम्हारा कल्याण हो सकता है, तब ये ठग और मायारूपी वेश्या तुम्हारे जीवन धन को ठगने मे असमथ हाग । यथा—

जग हटवाडा स्वाद ठग माया बसा लाइ ।
राम चरन नीका गही जिनि जाइ जनम ठगाई ॥[1]

सत भर्रूसिह (लावनीकार) कहते है—

भक्ति पथ है कठिन महा, जसे कृपाण की धारा है ।
भाव भजन भक्ति भैर्रूसिह जगन्नाथ पग धारा है ॥
विषय भोग को चाम प्रीय, कचनी को दाम पियारा है ।
तैसे हरि की भगति पियारी नही विवेक पसारा है ॥

अर्थात् भक्ति पथ (जिसकी कबीर ने चर्चा की है) ऐसे ही अत्यधिक कठिन है, जसे कृपाण की पनी धार होती है । जो व्यक्ति विषय भोग म लिप्त है उह चाम (चमडी शरीर) प्यारा लगता है और कचनी (वेश्या) को पसा प्यारा लगता है अर्थात ये माया वेश्या के समान है और माया म लिप्त व्यक्तियो को पैसा (दाम) ही प्यारा लगता है परन्तु भक्तो को भगवान की भक्ति भी वसे ही प्यारी लगती है ।

यहा लावनीकार ने माया की तुलना कबीर की भाति वेश्या से ही की है और स्पष्ट रूप से बताया है कि भक्ति का माग वास्तव म ही बहुत कठिन है ।

---

१ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण, पृ० १८६ दोहा १ ।

कबीर जी कहते हैं कि यह माया ऐसी पापिन है कि जीव को प्रभु विमुख कर देती है। यह जीव के मुख से कडवी वचनावली का निरंतर उच्चारण करा कर राम-नाम कहने का अवसर नही देती। यथा—

कबीर माया पापणी, हरि सू करैं हराम।
मुखि कडियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥[१]

आश्चर्य की बात है कि लावनीकारों ने भी 'माया' का चित्रण ठीक ऐसा ही किया है। एक लावनीकार कहते हैं कि—

रहे आतमा के बस म ठाकुर हो या ठकुराइन हो।
नारायण कब मिलें जब तलक सग मे ऐसी डाइन हो ॥
काम क्रोध, मद, ममता माया, मद मत्सर का वध न कर ॥
कभी न पहुचे ब्रह्म तलक तू फिरे भूलता उरे परे ॥

अर्थात्—चाहे ठाकुर हो या ठकुराइन हो, सभी को अपनी आत्मा मे ही रमण करना चाहिए क्योकि जब माया जैसी डाइन' साथ मे हो तो नारायण (भगवान) कैसे मिल सकते हैं, अर्थात जीव प्रभु विमुख हो जाता है। (यह माया मनुष्य को काम, क्रोध आदि के द्वारा कटुवचन बोलने क लिए विवश कर देती है, इसलिए) इन काम, क्रोध, मद, ममता रूपी माया का जब तक वध नही कर दिया जाता तब तक यह जीव इधर-उधर वैसे ही भुलावे में पडा रहता है कभी भी ब्रह्म तक नही पहुच सकता अर्थात इनके कारण उसे ब्रह्म तक पहुचने का (या राम नाम लेने का) अवसर ही नही मिलता।

कबीर ने माया के विषय मे कहा है कि यह पापणी फन्दा लेकर बाजार मे बैठी है, सारा ससार इसके फन्दे म पड गया परन्तु मैं (कबीर) इस फन्दे को काट कर निकल गया। यथा—

कबीर माया पापणी, फद ले बैठी हाटि।
सब जग तो फदे पडया, गया कबीरा काटि ॥[२]

प० रूपकिशोर (लावनीकार) ने भी कबीर की भाँति स्पष्ट कहा है कि मन पाँच पचीस को (अर्थात् इन्द्रिय-गण को) जीत लिया है क्योकि मैं (यह जीव) कभी भी इनसे डर कर मैदान छोडकर नही भागा। झूठ क्या बोलू ? मुझ इस माया ने कभी नही ठगा, क्योकि मेरे लिए न कोई धम है न अधम, न सेवा न पूजा-पाठ आदि। मुझे किसी प्रकार का सोच विचार तथा विलाप आदि भी कुछ नही है और माया का भ्रम भी मुझे नही भ्रमा सकता। यथा—

---

१ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण, पृ० १६०, दोहा—४।
२ —वही— पृ० १८६, दोहा—२।

हम पांच पचीस को जीत चुके, रण छोड के जीव भगोही नही।
क्यों पूठ कहू या माया ने, कबहू मन शाद ठगो ही नही॥
कोई सेवा पूजा पाठ नहीं कोई जानूं धम-अधम नही।
कोई सोच विचार विलाप नही, कोई भ्रमता माया भरम नही॥

इस प्रकार कबीर की भांति ही लावनीकार का भी आत्मविश्वास वास्तव म ही श्लाघनीय है।

सन्त कबीर कहते हैं कि—

जाणें हरि को भजा, मो मनि मोटी आस।
हरि बिच घाले अन्तरा, माया बडी बिसास॥[1]

अर्थात—प्रत्यक्षत ऐसा लगता है कि मैं (ढोगी साधक) प्रभु भक्ति मे तल्लीन हूं किन्तु मेरे मन मे माया ने विषय वासनाओ की अदम्य तृष्णा बसा रखी है, यह माया बडी विश्वासघातिनि है जो इन विषय-वासनाओ के द्वारा प्रभु और जीव के बीच अन्तर डाल देती है।

यही बात प० पन्नालाल ने अपनी एक लावनी म इस प्रकार कही है—

कुटुम्ब नारी, औ, सुत घनेरे, रहे हैं निशि दिन जो तुझको घेरे।
नही ये साथी हैं कोई तेरे, तू अपना तन मुफ्त पोलता है॥
तुम है माया ने ऐसा घेरा न तूने पल भर हरी को हेरा।
पडा है माया का तुझ पे फेरा न तत्व की बात तोलता है॥

अर्थात—अरे ढोगी व्यक्ति ! तू तो यह समझता है कि तू सब कुछ ठीक कर रहा है परन्तु यह सब माया जन्य विकार है। तुझ पर माया का फेरा (पडदा) पडा हुआ है जिसके कारण तू तत्व की बात नही तोल पाता। माया ने तुझको ऐसा घेरा हुआ है कि यह तुझको पल भर भी भगवान की ओर नही देखने देती अर्थात इसने तुझ (जीव) और हरि (भगवान) के बीच अन्तर डाल दिया है। यही कारण है कि तू तेरे कौटिम्बिक तथा नारी और अनेक पुत्रो को अपना समझता है और ये भी तुझे रात दिन घेरे रहते हैं परन्तु यह सब भी माया जन्य विषय वासनाओ के कारण ही है क्योकि वास्तव म ये सब तेरे साथी नही हैं तू व्यथ ही अपने शरीर को कष्ट दे रहा है।

यहा लावनीकार पर सन्त साहित्य का स्पष्ट एव सीधा प्रभाव परिलक्षित हो रहा है।

---

१ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण, पृष्ठ १६० दोहा-५।

सन्त कबीर कहते हैं कि—

> तेरा जन एक आध है कोई ।
> काम-क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरि पद चीन्हैं सोई ॥
> राजस, तामस, सातिग तीन्यू, ये सब तेरी माया ।
> चौथे पद को जे जन चीन्हैं तिनहि परम पद पाया ॥[1]

अर्थात—(कबीर कहते हैं) हे प्रभु तेरी भक्ति करने वाला भक्त साधक तो कोई बिरला ही है, जो काम, क्रोध लोभ, मोह आदि से दूर आपके चरणों को पाने का यत्न करता है। सत् रज, तम, त्रिगुणात्मक संसार तो तेरी ही माया है। परन्तु जो इन सबसे तटस्थ हो प्रभु-आराधना करते हैं, वे प्रभु के परमपद से साक्षात्कार कर लेते हैं, आदि।

लावनीकार की लावनी भी इस सम्बन्ध में विशेष रूप से द्रष्टव्य है। वह भी (लावनीकार) कहता है कि *यह सत् रज, तम त्रिगुणात्मक संसार तो तेरी ही माया* है। तीनों गुणों और पाँचों तत्वों से यह वर्तमान माया प्रत्यक्ष है। यह जीव बिना ज्ञान के जड के समान होकर ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकता और यह अज्ञानता सब माया ही है, जिसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह परमपद का साक्षात्कार कर लेता है। यथा—

> है ब्रह्म आश्रय सत्, रज, तम, त्रय, उत्पन्न त्र गुन समान माया।
> पंच तत्व और तीनों गुण से प्रत्यक्ष है वर्तमान माया ॥
> न ब्रह्म को लख सके जीव जड, बिना ज्ञान बिन, अज्ञान माया।

इसी प्रकार की अन्य भी अनेक लावनियाँ लावनी साहित्य में विद्यमान हैं, जिन पर सन्त साहित्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर ही नहीं होता अपितु अनेक स्थानों पर लावनियाँ सन्तों के दोहों और पदों का अनुवाद सी प्रतीत होती हैं।

६ सन्त-साहित्य और लावनी-साहित्य में 'एक सर्व व्यापक निर्गुण भगवान'

यह सर्वविदित है कि सन्त लोग बहु देववाद पर विश्वास नहीं रखते थे। उनका विश्वास था कि एक ही राम घट घट में समाया हुआ है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि दशरथ-सुत तिहुं लोक बखाना राम नाम का मम है आना ॥ निर्गुण राम जपहुरे भाई अविगति की गति लखी न जाई ॥

इसी प्रकार की विचारधारा लावनीकारों ने भी अनेक स्थानों पर व्यक्त की है उन्होंने कहा है—

---

१ क० ग्र०—द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४४८, पद १८४।

'है तेरी कुदरत का भेद न्यारा, हर एक श म शुमार तू है।
ना भेद वेदो म पाया तेरा के ऐसा अपरम् अपार तू है॥

यही बात सन्त कबीर के निम्नलिखित पद मे दर्शनीय है—

निरगुण राम, निरगुण राम जपहुरे भाइ।
अविगत की गति लखी न जाई।
चारि वद जाके सुमृत पुराना,
नौ, ब्याकरणा मरम न जाना॥[1]

अर्थात—हे भाई! तुम निर्गुण ब्रह्म की भक्ति करो। उस अगम्य प्रभु की गति का किसी को पता नही। चारा वेद एव समस्त स्मृति एव पुराण ग्रन्थ तथा नव व्याकरण इस निर्गुण ब्रह्म के भेद को न जान सके। ऊपर लावनीकार ने भी यही कहा है कि यह निर्गुण ब्रह्म ऐसा अपरम्पार है कि वेदो म भी इसका भेद कही नही मिला। सन्त कबीर के अनुसार उनका ब्रह्म स्वय कहता है कि—मैं सवत्र प्राप्त हू और सृष्टि के प्रत्येक पदाथ म सब कुछ मैं ही हूँ। यह नानारूपात्मक ससार मेरे विभिन्न रूपो का प्रकाश है। कोई मुझ किसी नाम स पुकारता है और कोई किसी अन्य नाम से। मैं न तो जल प्रवाह म डूब सकता हू और न किसी बाह्य प्रकाश से से प्रकाशित हू आदि। यथा—

सबनि मैं औरनि मैं हू सब।
मेरी विलगि विलगि विलगाई हो,
कोई कहौ कबीर कोई कहौ राम राई हो॥
॥टेक॥ ना हम बार बूढ नाही हम ना हमरे चिलकाई हो।[2]—आदि

प० अम्बाप्रसाद (जो स्वय भी कहा करते थे कि मैं जीवन म सन्तकवियो से अतीव प्रभावित रहा हूँ) निर्गुण ब्रह्म को सम्बोधित करते हुए स्वय कहते हैं कि—

अलख, अगोचर, अजर अमर अज निर्विकल्प निर्विकार तू है।
न पार पाया किसी ने तेरा, के ऐसा अपरम् अपार तू है॥
॥टेक॥ चिदानन्द मय अनन्त शक्ति निराधार का आधार तू है।
तू ही है निरगुण, तू ही है सरगुण निराकार और साकार तू है॥
रहित है तिरगुन के जाल से तू औ, सब गुण का आगार तू है।
अखड अविनाशी नाम तेरा, अखिलेश्वर ओमकार तू है॥
॥मि०॥ रोम रोम मे रमा हुआ तू, रकार तू है मकार तू है
न पार पाया

१ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ३६६, पद ४६।
२ —वही— पृष्ठ-३६७, पद ५०।

अर्थात्—ओ मेरे निगुण ब्रह्म ! तू अलख, अजन्मा निर्विकल्प और निर्विकार आदि सभी कुछ है, तू ऐसा है कि अब तक किसी ने तेरा पार नही पाया है। तू ही चिदानन्दस्वरूप अनन्त शक्तिमान है, इस विश्व मे जिसका कोई आधार नही उसका आधार तू ही है। तू निर्गुण और सगुण सभी कुछ है। तीनो गुणो, (सत्, रज, तम) से परे होकर भी तुझमे सब गुण विद्यमान हैं। तेरा नाम अलख अविनाशी और अखिलेश्वर तथा ओमकार है। तू सभी के रोम रोम मे रमण कर रहा है, अर्थात् यह विश्व तेरे ही प्रकाश से प्रकाशित है। राम नाम के दोनों अक्षरो मे 'र' कार भी और 'म' कार भी तू दोनो ही है, अर्थात् निर्गुण राम तुम ही हो।

सन्त कबीर ने कहा कि—

> लोका जानि न भूलो भाई।
> खालिक खलक खलक मे खालिक, सब घट रह्यो समाई॥
> ता अल्ला की गति नही जानी, गुरि गुड दीया मीठा।
> कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहब दीठा॥[1]

अर्थात्—है पडित ! प्रभु महिमा को जानते हुए भी तुम उसे भूलो नही। वह ब्रह्म सवत्र है। वह घट घट वासी है। उस एक प्रभु से ही इस समस्त विश्व का निर्माण हुआ है, फिर कौन भला है और कौन बुरा है। उस भगवान की गति को जाना नही जा सकता, गुरु कृपा से प्रभु के दशन हो गये। कबीर कहते हैं कि उस परब्रह्म के दशन होने के कारण मुझे अब वह सभी के घटो मे दृष्टिगोचर हो रहा है। यह कबीर का अपना अनुभव है। यही अनुभव सन्त भर्लसिह को भी हुआ है। वे कहते हैं कि मैं अनेक प्रकार के कष्टो को सहन करके भी काशी और कावे म गया। यात्रा करते करते तो तग आ गया परन्तु कही पर उस दिलरुबा (ब्रह्म) के दशन नही हुए। मैंने मस्जिद म जाकर सारा कलामे मजीद पढ डाला अपनी लगनशीलता के कारण मैंने मन्दिर मे जल चढा कर गीता के श्लोको का पाठ किया। हमने अठारह पुराण, चारो वेद और छहो शास्त्रो को खूब पढ़ा। हमारे गुरु ने प्रत्येक का माग भली प्रकार बताया। परन्तु वह सनम (ब्रह्म) कही भी दिखाई नही दिया। भर्लसिह कहते हैं कि इस प्रकार की बातों ने प्रत्येक के दिल को लुभाकर धोखा दिया हुआ है परन्तु ज्या ही मैंने अपने आपको देखा तो मुझे वह सनम अपने म ही मिल गया। अब उस सनम (ब्रह्म) के दशन मुझे हो गए हैं और घट घट मे वही दिखाई देता है।—यथा—

> गया मैं काशी मे और काबे, हर एक तरह का अलम उठाया।
> सफर के चलने से तग आया, मगर न उस दिलरुबा को पाया॥

---

१ क० ग्र०—द्वितीय सस्करण पृ०—३६७, पद–५१।

।।टेक।। बनाये दिल जब के मेरा हाफिज, तो जाके मस्जिद मे सिर झुकाया ।
पढा कलाम मजीद सारा, मगर वो जानी नजर न आया ।।
ये गाहे आबिद बना अलग मैं के जाके मन्दिर म जल चढाया ।
पढी वहाँ गीता मन्त्र आदिक तो वो ना फिर ध्यान मे समाया ।।
कहै ये भरू फरेवता सब हर एक जानिब का न्दिल लुभाया ।
मिला वो दिनदार दिलके अन्दर सनम ने जलवा मुझे दिखाया ।।

यहाँ अपन अनुभव के बहाने से लावनीकार न मन्दिर मस्जिद आदि की निस्सारता दिखाकर सन्तो के घट घट वासी भगवान के दशन न केवल स्वय किये हैं अपितु अन्य लोगो को भी कराए हैं और स्पष्ट कहा है कि वेद पुराण और कुरान आदि म नहीं अपितु वह परमब्रह्म अपने अनुभव एव चिन्तन के आधार पर स्वय ही घट घट मे देखा जा सकता है ।

कबीर के अतिरिक्त अनेक अन्य सन्तो ने भी इसी भावना का द्योतन किया है । सन्त दादूदयाल जी कहते हैं कि वह भगवान घट घट म रमा हुआ है परन्तु उसका ज्ञान सबको नहीं, किसी बिरले को ही होता है । उस (निगुण) राम के विषय म वही जानता है जो उसका प्रिय है । यथा—

सब घट माही रमि रह्या बिरला बूझ कोइ ।
सोई बूझ राम को जो राम सनेही होइ ।।[1]

सन्त धरनीदास ने भी यही कहा है कि—

धरनी' तन मे तख्त है, ता ऊपर सुलतान ।
लेत मोजरा सबहि का जह लो जीव जहान ।।[2]

अर्थात्—इस शरीर म ही वह शाही तख्त है जिस पर वह शाहो का शाह 'सुलतान बठा हुआ है । जहान भर मे जितने भी जीव हैं वहीं से बठे बठे वह सबका मुजरा लिया करता है ।

सन्त तुकाराम कहते हैं कि अरे बाबा, तुम सदा उस अल्लाह के ही गुण गाओ, जो सबके अन्तर म रम रहा है । यथा—

जिकिर करो अल्लाह का बाबा,
सबका अन्दर भेस ।।[3]

---

१ स० बा०–वियोगी हरि—सस्ता साहित्य मडल चौथा सस्करण—सन् १९४७, पृष्ठ–१२ क्रमाक–३ ।

२ –वही– पष्ठ १२, क्रमाक–४ ।

३ स० बा०–वियोगी हरि–सस्ता साहित्य मडल, चौथा सस्करण, सन् १९४७, पृ० १०, क्र० ८ ।

सन्त गरीबदास कहते हैं कि हे मेरे पूर्ण ब्रह्म स्वामी, तेरी साहिबी (महिमा) को क्या कहूं ? धन्य ! हर पलक और हर नजर में तेरा दर्शन मिल रहा है। यथा—

साहिब तेरी साहिबी, कहा कहूं करतार ।
पलक पलक की दीठि मे, पूरन ब्रह्म हमार ॥[1]

गुरु नानक ने भी यही कहा कि अरे ! उसे तू वन में क्यों खोजने जा रहा है वह घट घटवासी अलिप्त स्वामी तो तेरे रोम रोम मे समाया हुआ है। उसे तो अपने घट मे ही खोजो । यथा—

काहे रे बन खोजन जाई ?
सब निवासी सदा अलेपा, तो ही संग समाई ॥
× × × ×
घट ही खोजो भाई ॥[2]

पं० शम्भुदास (लावनीकार) कहते हैं कि जब मैंने दुई दूर करके अपने आपको देखा तो मुझे अपने दिलदार के दर्शन हो गए और उस ब्रह्म दर्शन से मैं इतना मस्त हुआ कि मुझे घट घट में वही नजर आने लगा । इस संसार में कोई दूसरा और नही है जिसके लिए दुःख उठाया जाए । वे स्वयं ब्रह्म के मुख से कहलाते हैं कि वह, मैं ही तो हूं, जिसकी ताबेदारी सारा संसार करता है । यथा—

दुई को कर के दूर यार दिलदार मुझे अपना देखा ।
मस्त हुआ मैं, जब से दीदार मुझे अपना देखा ॥
नही कोई दूसरा जहां मे, जिसके लिए गम रवार बने ।
मैं ही तो वो हूं, जिसका कुल जहान ताबेदार बने ॥ —आदि

इस प्रकार निर्गुणियाँ सन्तो की भांति लावनीकारों मे भी निर्गुण लावनियाँ प्रचुर मात्रा में रची गई हैं । यही नही, अपितु अनेक विद्वानों का तो यह मत है कि लावनी साहित्य का अर्थ ही निर्गुण साहित्य है । यद्यपि हमारी इस प्रकार की मान्यता तो नही है कि लावनी साहित्य है ही निर्गुण साहित्य तथापि उपरोक्त उदाहरणों से निर्गुण की दृष्टि से भी सन्त साहित्य का प्रभाव तो स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता ही है ।

१० सन्त-साहित्य और लावनी-साहित्य मे 'जीवन का स्वरूप'

यह समस्त विश्व नश्वर है । इसी दृष्टि से मनुष्य जीवन भी नश्वर एवं क्षण भंगुर है । सन्तों ने मनुष्य जीवन की क्षण भंगुरता का अतीव विश्लेषणात्मक ढंग से

---

१ —वही— पृ० १४, क्र० ६ ।
२ —वही— पृ० १६, क्र० १५ ।

वणन किया है। इसके लिए उन्होंने ऐसी ही वस्तुओं को माध्यम बनाया है जो सव साधारण के परिचय की सीमा मे हैं।

लावनीकारो ने भी स तो की इस परिपाटी को अत्यन्त मार्मिक एव प्रभाव पूण ढग से निबाहा है। यहाँ तक कि लावनीकारो के प्रकटीकरण के माध्यम भी ठीक वसे ही सव-साधारण वस्तुओ से सम्वद्ध रहे हैं जैसे कि सन्तो के।

सन्त कबीर कहते हैं कि—

सातो सवद जहाँ बाजते होत छतीसो राग।
वे मन्दिर खाली पडे, बैसण लागे काग॥[1]

अर्थात्—जिस शरीर मे जीव की चेतना के कारण सातों शब्द होते थे और छतीसो राग गाए जाते थे अब उस चेतन के निकल जाने पर वह मन्दिर रूपी शरीर खाली पडा है और उसमें काग रूपी कीडे आदि लग गए हैं। ससार की नश्वरता की दृष्टि से तो स्पष्ट ही है कि जिन घरो म खूब रौनक रहती थी आज वहाँ काग बठने लगे हैं क्योंकि उन घरो और महलो के मालिक काल द्वारा चट कर लिये गए हैं। यही बात प० अम्बा प्रसाद ने भी अपनी लावनी मे इस प्रकार कही है—

लगे है सूनी गुफा बिहूनी यू देखकर हस रो रहा है।
निकस गया इस मढी का मालिक, इसी से सुनसान हो रहा है॥
॥टेक॥ पडे सुनाई न शब्द सोह जो बोलता था न वो रहा है।
मचा है अधेर घोर घर म, प्रकाश इसम न जो रहा है॥
न पाँच पच्चीस चार दस हैं न रज तमो गुण सतो रहा है।
चले गये आप-आप को सब न इन को वो अब जयो रहा है॥

अर्थात्—जीवन की क्षणभगुरता की दृष्टि से प० जी कहते हैं कि इस शरीर रूपी गुफा से चेतन (जीव) रूपी सन्त के निकल जाने से यहाँ सुनसान हो गया है। वह चेतन प्रतिक्षण सोह आदि शब्दो का जाप करता था परन्तु उस प्रकाश के निकल जाने पर अब इस शरीर रूपी गुफा म अधेरा हो गया है। न तो अब इसम पाँच और पच्चीस (इन्द्रिय आदि) ही हैं और न रजो गुण, तमो गुण और सतो गुण आदि गुण ही रहे हैं। य सभी तत्त्व अपने अपने तत्वा म मिल गए हैं और यह शरीर निरथक हो गया है।

ससार की नश्वरता की दृष्टि से भी स्पष्ट ही है कि महात्मा अपनी मढी को सूनी छोडकर तीर्थ यात्रा के लिए चला गया और पीछे से यहाँ कौन प्रकाश करता? अधेरा ही अधेरा हो गया। अब वहाँ भाँति भाँति की बोलियो म सत्सग आदि नहीं होता, आदि।

---

१ क० ग्र०–पृष्ठ–८०।

उपरोक्त पद और लावनी म आश्चर्यजनक साम्य है।

गुरु नानक कहते हैं कि जीवन का स्वरूप यही है कि एक दिन यह यहाँ नही रहेगा। क्योकि यहा आने वालो मे चाहे पीर, पगम्बर या औलिया कोई भी हो, सभी मरने के लिए आय हैं।

'पीर पैगम्बर औलिया सब मरने आया ॥'[1]

यही बात प० अम्बाप्रसाद ने एक लावनी म इस प्रकार कही है कि—अरे मनुष्य ! यह शरीर तो इस जग म अपावन है, इसको तू क्या मल मल कर धो रहा है यह तेरे साथ नही जायेगा। यथा—

ये काया जग मे अपावनी है, क्या इसको मल-मल के धो रहा है।
चले नही ये तो सग मे अपने, निहार किस ओर को रहा है॥ आदि

सन्त बुल्लेशाह ने भी यही कहा है कि—

नदियो पार सजन दा ठाना।
कीजे कौल जरूरी जाना॥
कुछ कर ले सलाह मलाहे नाल॥[2]

अर्थात्—अपने सजन (प्रीतम) (भगवान) का स्थान नदियो के उस पार है। हमने वहाँ अवश्य जाने का वचन दिया हुआ है, इसलिए गुरु रूपी मल्लाह से कुछ सलाह कर लेनी चाहिए। भाव यही है कि एक दिन अवश्य ही यह शरीर नष्ट होगा।

सन्त कबीर कहते हैं कि मनुष्य की यह जाति पानी के बुलबुले के समान है। प्रभात-कालीन तारे के समान यह देखते-देखते ही छिप जाती है अर्थात् समाप्त हो जाती है। यथा—

पानी केरा बुदबुदा अस मानस की जाति।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यो तारा परभाति॥[3]

लावनीकार ने यही बात इस प्रकार कही है—

तेरा यह सुन्दर रूप बिशाल, चन्द जसे छिप जावेगा।
गुनी मत करना सोच खयाल, फूल खिल कर मुरझावेगा॥

अर्थात्—अरे गुनी ! कुछ चिन्ता न कर, यह जीवन रूपी फूल खिलकर अवश्य ही मुरझावगा क्योंकि यह स्वाभाविक है। तेरा यह सुन्दर एव विशाल स्वरूप चन्द्रमा की भाँति देखते ही देखते छिप जावेगा।

---

१ गुरु नानक—स० वा०—पृष्ठ—६१, क्रमांक १।
२ स० वा०—पृष्ठ—६६, क्रमाक—२६, सन्त बुल्लेशाह।
३ क० ग्र०

सन्त कबीर ने जीवन की तुलना प्रभात कालीन तारे से और लावनी
मा से की है।[1]

। कबीर कहते है—

माटी कहे कुम्हार सूँ, तू क्या रूदे मोय।
इक दिन ऐसा होदगा, मैं रूदूगी तोय॥

ृयु अवश्यम्भावी है। एक दिन अवश्य ही यह शरीर मिट्टी के समान हो
सके अन्दर का जीव रूपी हस निकल जाएगा तो शरीर मिट्टी मे मिल

बेगराज जालान (लावनीकार) ने भी यही कहना है कि इस दम का क्या
' अन्दर वठा हुआ जीव न जाने कब निकल जायेगा ?—यथ —

रोसा क्या दम का, दे ताल हस एक दिन उड जावेगा। —आदि।

' प्रकार सन्तो और लावनीकारो ने जीवन के स्वरूप को क्षणभगुर
इसका अनेक प्रकार से विश्लेषण किया है।

साहित्य और लावनी-साहित्य में व्यापारिक प्रतीकात्मक आध्यात्म

तो और लावनीकारो (दोनो) ने अनेक स्थानो पर अनेक व्यापारी प्रतीको
लेकर आध्यात्म चर्चा की है। आध्यात्म का बाजार सजाया है, उसमे
जौहरी बनाया हैं। विश्व रूपी बाजार मे यह जीव रूपी जौहरी अनेक
हित के हीरे-जवाहरातो का क्रय विक्रय करता है।

त कबीर मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि अरे मन ! तूने दूसरे
कागज भरा है। ये पाप जो तू अर्जित कर रहा है उसी प्रकार कल तक
ढ जायेंगे जिस भाँति बोहरे का सूद। यह तेज बोहरा कल तक तुम पर
र न जाने क्या क्या दोप निकाल देगा, जिसका फल तुझ चौरासी लाख
जन्म लेकर भटकते हुए उठाना पडेगा। सद्गुरु रूपी जमानती ही नये
हीरा देकर इससे मुक्त करा सकता है, आदि। यथा—

मन रे कागज कीर पराया।
कहा भया व्यौपार तुम्हारे कल तर बढ सवाया॥
बड बोहरे साठो दी हो कल तर काढयो खोट।
चार लाप अरु असी ठीक द, जनम लिख्यो सब चोटे॥

---

[1] प्र०, पृष्ठ—६०।

× × × ×

गुरु देव ग्यानी भयो सगनिया सुमिरन दीन्हो हीरा ॥'—आदि

प० रूपकिशोर (लावनीकार) ने 'ज्ञानमाला' नाम से एक लावनी में व्यापारिक प्रतीकों को इस प्रकार लिया है—वे कहते हैं कि नेह रूपी नगर में यह जीव रूपी जौहरी रूपों के रत्नों की पिटारी खोलकर बैठा हुआ है। पुण्य रूपी सज्जन लोग हित रूपी हीरे की परख कर रहे हैं। उन्होंने क्रिया रूपी कर्म को अंग में बांध कर अनहद रूपी आभरन पहने हुए हैं। पवित्रता की पिटारी को मणियों से परिपूर्ण किया हुआ है ग्राहकों को ज्ञानी जानकर गुण रूपी गद्दी पर आसन जमा लिया है और क्रम रूपी काटे से उन मणियों का वजन किया गया है। कल्याण रूपी कंचन और कुन्दन की कायारूपी कसौटी पर कसा गया है, आदि। यथा—

नेह-नगर में जीव जौहरी खोलके बैठा रूप रतन।
हित का हीरा परखते सुकृत रूप साधू सज्जन ॥
॥टेक॥ क्रिया करम को बाध अंग में अनहद के पहरे अभरन।
पवित्रता की, पिटारी करी मणों से परिपूरन।
ज्ञानी गाहक जान जमाया, गुण की गद्दी पर आसन ॥
काटा क्रम से, कम का बना मणों का किया वजन ॥
॥मि०॥ कसे कसौटी काया पर कल्याण रूप कंचन-कुन्दन—
हित का हीरा, '—आदि।

क्रय विक्रय विषयक कहते हुए कबीर अपने भगवान को कहते हैं कि, हे प्रभु मैं तुम्हारा दास हूं आप चाहे तो मुझे बेच देवें। मेरा तन, मन, धन सभी कुछ आपके लिए है। उस स्वामी ने कबीर को लाकर बाजार में उतार दिया है। वस्तुतः वही मेरा विक्रय करने वाला और वही क्रय करने वाला है, आदि। यथा—

मैं गुलाम मोहि बेचि गोसाईं तन मन धन मेरा रामजी के ताईं।
आनि कबीरा हाटि उतारा, सोई गाहक सोई बेचन हारा ॥' आदि

प० रूपकिशोर ने कबीर की भांति स्वयं को तो विश्व बाजार में ले जाकर खड़ा नहीं किया है परन्तु उन्होंने विश्व रूपी बाजार में दया रूपी दुकानें अवश्य खुलवाई हैं। वे कहते हैं कि विश्व रूपी यह बाजार सजा हुआ है, यहां दुख को दूर करने वाली दया रूपी दुकानें खुली हुई हैं। जीव रूपी जौहरी अमूल्य रूप रत्नों को परख रहे हैं। कर्म रूपी कसौटी पर काया रूपी कंचन को कसा गया है। ताव-

---

१ क० ग्र०, पृष्ठ—४०१, पद १०८।
२ ख्याल रत्नावली—प्रथम भाग—पृ० ५०।
कारोनेशन प्रेस आगरा में संवत् १९७२ में प्रकाशित।
१ क० ग्र०, पृष्ठ—४०४, पद—११३।

रूपी तमोगुण को बुझाकर चित्त रूपी चादी का वजन किया गया है। जोग रूपी जवाहरात के जौहर उत्तर और दक्षिण दिशाओ म जगमगा रहे हैं। साधु जन कहला कर काम रूपी कनी से कोई काम नही रखा है। दूसरो की भलाई रूपी पद्मराग रूपी कृपा की जिनमे किरनें प्रस्फुटित हो रही हैं, आदि। यथा—

लगा विश्व बाजार दया की खुली दुकानें दुख हरन।
जीव जौहरी परखने लगे अमोलक रूप रतन ।। आदि

यहाँ यह स्पष्ट है कि व्यापारिक प्रतीको के द्वारा दोनो ने ही (सन्तो और लावनीकारो ने) अपने-अपने ढग से आध्यात्म चर्चा की है। यह चर्चा दोना मे ही पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं, यहा विस्तार भय स केवल सकेत मात्र किया गया है।

१२ सन्त साहित्य और लावनी साहित्य मे—भाषा और छन्द

भाषा

सन्ता की भाषा के सम्बन्ध मे विद्वानो के अनेक मत हैं। किसी ने सन्तो की भाषा को सशक्त कहा है तो किसी ने उसे अपरिष्कृत कहा है। हमारी धारणा के अनुसार वह भाषा चाहे सशक्त है या अपरिष्कृत है पर तु उसम जनता की भावना अवश्य निहित है। वह जनभाषा है जिसने जनता को आज तक भी अपनी ओर आकृष्ट किया हुआ है। यही बात लावनीकारो की भाषा के सम्बन्ध म है। लावनी तो है ही 'लोक की, एतदय लावनी की भाषा अनिवाय रूप से लोक भाषा है जन भाषा है। इस प्रकार सन्त साहित्य और लावनी-साहित्य की भाषा स्थान और कालान्तर भेद के अतिरिक्त एक ही भाषा कही जायेगी।

स त कबीर ने भाषा के रूप को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"सस्कृत है कूप जल, भाषा बहता नीर।"[1]

अर्थात्—सस्कृत तो कूप के जल के समान कुछ ही लोगो के उपयोग मे आने वाली भाषा है और 'भाषा (जन भाषा) वहते हुए जल के सदृश है, जिसे कोई साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है।

लावनीकारो ने भी इस प्रकार की अनेक बातें कही हैं, केवल कही ही नही हैं, अपितु इस प्रकार के भाषा प्रयोग को उन्होन लावनीकार की विशेपता माना है। श्री बजरगलाल बगडिया (लावनीकार) अपनी लावनी की एक पक्ति म उक्त लावनी की विशेपता बताते हुए इस प्रकार कह रहे है—

" 'अ' तो बाँधा प्रथम कविजन और कुल भाषा 'र' आखीर।"[2]

---

१ क० ग्र०, पृ०-१८।

२ अप्रकाशित लावनी ग्रथ, पृष्ठ-७१।

अर्थात्—हे कविजन ! मेरी इस लावनी मे मैंने तीन विशेषताएँ रखी हैं—प्रथम विशेषता तो यह है कि लावनी की प्रत्येक पक्ति के आरम्भ में 'अ' की वन्दिश है। दूसरी विशेषता यह है कि इस सम्पूर्ण लावनी में मैंने कुल (केवल, सारी) भाषा का ही प्रयोग किया है कहीं भी अन्य कुछ नही आने दिया है। तीसरी विशेषता यह है कि समस्त लावनी मे प्रत्येक पक्ति का अन्त 'र' से हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट ही है कि भाषा' को लावनीकारा ने सन्तो के समान ही विशेष महत्वपूर्ण मानकर अपनी रचनाएँ रची हैं। जहाँ तक भाषा की शब्दावली का प्रश्न है सन्त और लावनीकार दोना न ही जन कवि होने के कारण लौकिक एव स्थानीय शब्दा का ही अधिक प्रयोग किया है। दोनो की ही भाषा म एकरूपता का अभाव है। कही वह भाषा संस्कृतनिष्ठ है तो कही उदू और फारसी मिश्रित है। कहीं वह साधारण बोल-चाल की भाषा है तो कही उसने ठेठ ग्रामीण रूप ही धारण कर लिया है। उदाहरणतया सन्तो और लावनीकारा में 'मूड' शब्द का प्रयोग दर्शनीय है—

सन्त कबीर कहते हैं—

> 'मूड मुडाए हरि मिल, तो सब कोई लेय मुडाय।
> बार-बार के मूडते भेड न वैकुठ जाय॥"

इसी शब्द का प्रयोग भिवानी के लावनीकार श्री बजरगलाल बगडिया ने भी किया है, जो इस प्रकार है—

> "राई देर न करी मुनि सुन, जल मे 'मूड' झुकाय दिया है।'

अर्थात्—मित्रगणो के द्वारा बताये जाने पर नारद मुनि ने तनिक भी विलम्ब नही किया और अपना मुह देखने के लिए उन्होंने तत्काल ही जल म अपना मुह झुका दिया। यद्यपि यहाँ शब्द एक ही 'मूड है, तथापि अर्थ की दृष्टि से कबीर और लावनीकार के अर्थ में किंचित अन्तर, प्रतीत होता है। लावनीकार का अभिप्राय केवल 'मुख ही है जबकि कबीर का अभिप्रेत अर्थ मुख और सिर दोनो या केवल सिर ही है। इस प्रकार के अन्य भी अनेक शब्द सन्त साहित्य और लावनी-साहित्य दोनो से ही प्रस्तुत किये जा सकते है। यहाँ हमने सकेत मात्र किया है।

प्रश्न हो सकता है कि सन्त और लावनीकार विशेष शिक्षित न होने के कारण जन भाषा के अतिरिक्त और लिख ही क्या सकते थे ? इस प्रश्न को समुचित मानते हुए भी, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनके लिए कुछ भी असम्भव नही था। यदि वे चाहते तो सस्कृत मे भी लिख सकते थे, अन्यथा 'सस्कृत है कूप जल' आदि कहने की बात उनके हृदय मे आती ही नही। यही कारण था कि महात्मा तुलसीदास ने सस्कृतज्ञ होते हुए भी 'रामचरितमानस की रचना भाषा

(जन भाषा) मे ही थी, संस्कृत म नही। इस प्रकार स्पष्ट ही है कि लावनी साहित्य पर भाषा की दृष्टि से भी सन्त साहित्य का समुचित प्रभाव पडा है।

छन्द

छन्दो की दृष्टि से सन्त साहित्य म, दोहा, पद, चौपाई, कवित्त और सवया आदि छन्दो का विशेष प्रचलन रहा है। इनम भी दोहा, चौपाई और पदो का अधिक प्रयोग हुआ है।

लावनी की अपनी ही अनेक रगतें होने के कारण, लावनीकार के लिए अपनी रचनाओ के निमित्त विस्तृत क्षेत्र था, उसे अन्य छन्दो का आश्रय लेने की आवश्यकता न थी। वह अपनी रचनाए लावनी की ही अनेक रगतो म (रगतो की विस्तृत चर्चा दूसरे परिच्छेद म की गयी है) कर सकता था एतदर्थ सन्तो द्वारा व्यवहृत 'दोहा', 'पद', 'चौपाई आदि का सीधा प्रयोग लावनी में सम्भव नही था, तथापि लावनीकार सन्तो के इस प्रभाव से भी अपने आपको सवथा मुक्त न रख सके। इसके लिए उन्होने परोक्ष रूप से सन्तो का अनुकरण करना आरम्भ किया। उन्होने अपनी रचनाए तो लावनी के अन्तगत आने वाली रगतो मे ही रची परन्तु उन रचनाओ के मध्य मे उन्होने दोहा, चौपाई आदि का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया और इस प्रकार वे इस दृष्टि से भी सन्तो का अनुकरण करने म समर्थ हो गये। शनै शनै दोहा आदि का प्रचार लावनी साहित्य म इतना अधिक हो गया कि लावनीकार दोहा चौपाई आदि का अपनी लावनी म प्रयोग करके अपने आपको गौरवान्वित मानने लगे। यही कारण है कि सन्तो के इस प्रभाव से आज लावनी साहित्य ओत प्रोत है। लावनी साहित्य म इस प्रकार की लावनियाँ प्रचुर मात्रा म उपलब्ध है, जिनम दोहा चौपाई आदि अन्य छन्दों का अति स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

लावनी—सिया स्वयम्वर की

॥टेक॥ सिया स्वयम्वर भूप जनक ने रचा परन करके ॥
॥चौपाई॥ जितने थे पृथ्वी पर राजे प्रेम सहित बजते हुए बाजे ॥
मिथिलापुर म आन विराज, एक से एक अधिक सिर ताजे ॥
॥दोहा॥ सब सम्मुख राजा जनक कहा वचन कर जोर।
परणगा सीता वही जो शम्भु धनुष दे तोर ॥
× × × ×
× × × ×
॥मि०॥ क्योकि ऐसे ऐसे भट महि पर, लाखो एकदम से धनु धर धर
उठा रहे तिस पर भी ना तिल भर सरकाया सरके—
सिया स्वयम्बर भूप जनक ने रचा परन करके ।—आदि

कवित्त, सवैया आदि अनेक अन्य छन्दों से पूर्ण भी अनेक लावनियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं परन्तु स्थान सीमा का ध्यान रखकर, यहाँ कुछ ही पंक्तियाँ उद्धृत की गयी हैं। इस उपरोक्त उद्धरण मे 'दोहा' और 'चौपाई' दोनो का प्रयोग किया गया है।

१३ सन्त साहित्य और लावनी साहित्य मे--रहस्यवाद

मनुष्य म जब से ज्ञान बुद्धि नामक तत्त्व की स्थिति हुई तभी से उसकी चिन्तन प्रक्रिया म सृष्टि के उद्गम और अपने मूल के सम्बन्ध म जिज्ञासा रही है। उसने जब इस सृष्टि नियन्ता के स्वरूप की गुत्थी को ज्ञान का आश्रय लेकर सुलझाने की चेष्टा की, तब यह दर्शन का विषय बन गया, लेकिन जब इसे कवि ने समझने का प्रयास कर अपने अनुभवों को वाणी की विशेष पद्धति म अभिव्यक्त किया तब इसे रहस्यवाद' कहा गया। ससार का प्राय प्रत्येक कवि किसी न किसी अग मे अवश्य ही रहस्यवादी होता है। अमेरिकन विद्वान प्रो० प्राट (Prof Prat) कहते हैं—

'Every poet has at least a touch of mysticism''

इसी के अनुसार सन्त कवियो और लावनीकारो म भी 'रहस्यवाद के दर्शन होते हैं।

सन्त कबीर ने सर्ववाद की सत्ता स्वीकार करते हुए कहा है कि मेरे उस प्रभु की लाली सर्वत्र लाल ही है जिस समय मैं वह लालिमा देखने गयी तो मैं भी लाल हो गयी। यथा—

लाली मरे लाल की जित देखू तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥[१]

इस रहस्यमय लालिमा को लावनीकारो ने भी सर्वत्र पाया है और कहा है कि हे भगवान! तुम्हारी कुदरत का भेद निराला ही है आप प्रत्येक वस्तु में विद्यमान हैं फिर भी आप ऐसे अपरम् अपार हैं कि वेदो म भी आप के इस रहस्य का (भेद का) पता नही चलता। यथा—

है तेरी कुदरत का भेद न्यारा, हर एक शै में शुमार तू है।
न 'भेद' वेदो मे पाया तेरा, के ऐसा अपरम् अपार तू है॥

सन्त कबीर ने आत्मा और परमात्मा के रहस्य को जानने की चेष्टा करते हुए कहा कि —

जल म कुम्भ, कुम्भ म जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल, जलहि समाना यह तत् कथौ गियानी॥[२]

---

१ क० ग्र०—पृष्ठ—५८।
२ —वही—पृष्ठ—५८।

इसी प्रकार प० अम्बाप्रसाद (लावनीकार) कहते हैं कि—

न पाँच पच्चीस चार दस हैं, न रज तमो गुण सतो रहा है ।
चले गये आप आपको सब न इन का वो अब जथों रहा है ॥

यहाँ कितना आश्चर्यजनक साम्य है ? कबीर का तो केवल जल ही जल में मिल कर एकाकार हुआ है परन्तु प० अम्बाप्रसाद इस रहस्य को जानने के लिए और भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं । उनके अनुसार ये तीनों गुण (सत्, रज, तम) तीनों गुणों में मिलकर एकाकर हो गये हैं । सम्भवतः इसीलिए यह रहस्य बना हुआ है कि आखिर यह सब है क्या ?

सिद्धों और योगियों की परम्परा में सन्त कबीर ने कहा है कि—

अष्ट दल कवल निवासिया, चहुको फेरि मिलाई रे ।
रहूँ मैं बीच समाधियाँ, तहाँ काल न पासे आइ रे ॥[1]—आदि

× × × ×

सन्त कबीर की इस उक्ति के रहस्य को समझने की चेष्टा करते हुए सन्त भगवतपुरी जी (लावनीकार) अपना रहस्य इस प्रकार प्रकट कर रहे हैं कि जोगी लोग पिंगला आदि को सम करके ध्यान मग्न हो जाते हैं, सुषमन में श्वासों को रोककर सुन्न (सन्त लोग) इडा (शून्य) शिखर में चढ़ जाते हैं, आदि आदि—यथा—

इडा पिंगला सम करके, जोगी जन ध्यान लगाते हैं ।
सुषमन में श्वासा को रोककर सुन्न सिखर चढ जाते हैं ॥
जप के अजपा जाप आप में आप रूप लख चेतन का ।—आदि

सन्त कबीर की विरहणी कह रही है कि यदि वह प्रियतम (भगवान) विदेश में हो तो उसे पत्र भी लिखूं, परन्तु जो तन, मन और नयन में सदा विद्यमान है, उसे भला क्या संदेश भेजूं ? यथा—

प्रियतम कूं पतिया लिखूं, जो कहिं होय विदेस ।
तन मे, मन मे नैन मे, ताको कहा सदेस ॥[2]

इसी रहस्य को लावनीकार ने इस प्रकार कहा है कि नजर में तो हम हैं और नजर हम में है । वह हममें है और हम उसमें हैं, परन्तु वह दिखाई नहीं देता है, इसलिए रात दिन वहम (रहस्य) रहता है । खुशबू में 'वह' है और उसमें खुशबू है, वह कहने में कम और ज्यादा कुछ नहीं है । पुष्प उसमें है और वह पुष्प में है, इस बात में कोई असत्यता नहीं है । वह हस्ती में है और हस्ती उसमें है वह अदम में है,

---

१ क० ग्र०—पृष्ठ—५६ ।
२ —वही—पृष्ठ ५५ ।

और अदम उसमे है, इस पर भी वह अलग रहता है, इसलिए उसका भरम (रहस्य) नही खुलता या फिर वह रग रग और रोम रोम मे रमा हुआ है। यथा—

नजर मे हम और हममे नजर है, वह हम म और उसम हम ।
मगर दिखाई नही देता या रहता है दिन रात बहम ॥
हस्ती मे वह उसमे हस्ती, अदम म वो और उसमे अदम ।
तिस पर भी वह अलग रहे है, उसका खुलता नही भरम ॥
॥मि०॥ या तो मिला है वह रग रग म, रोम रोम म रहा है रम
मगर दिखाई

इसी रहस्य को कबीर ने यह कहकर प्रकट किया है कि—

तेरा साई तुझ मे ज्यू पुहुपन मे बास ।
× × ×
मृगा पास कस्तूरी बास, आप न खोजै-खोजै घास ॥[1]
× × ×

श्री चुन्नीलाल भी अपनी एक लावनी मे इसी मृग की और खुशबू की बात कह रहे हैं, वे कहते हैं कि मृग दीवाना बनकर इधर-उधर मुश्क (कस्तूरी) को ढूढ रहा है उसे मालूम नही है कि वह कस्तूरी उसी मे है। वह उसी सुगन्ध मे मस्त होकर इधर उधर घूम रहा है, उसे उद्यान की अन्य हवा पसन्द ही नही है। लावनीकार श्री चुन्नी कहते हैं कि वह ईश्वर भी इसी प्रकार शरीर के अन्दर ही है परन्तु सन्तो और सुजनो की हवा लगे बिना यह प्रतीति सम्भव नही है। यदि कुछ भक्ति-भाव और भजन आदि हो तो वह अपने आप ही दृष्टिगोचर हो जाता है—आदि आदि। यथा—

दीवाना मग मुश्क को ढूंढता है, न खबर तन म मुश्क खुतन की हवा ।
हो सुगन्ध म मस्त फिरे इत उत, उसे भाती नही है चमन की हवा ॥
ऐसे ही वो ईश्वर देह मे है लग जाए जो सन्त सुजन की हवा ।
तो वो अपने मे आप दिखाई पड, कुछ भक्ति हो भाव भजन की हवा ॥—आदि

सन्त कबीर ने एक विचित्र रहस्य देखा है कि एक पेड बिना तने के खडा हुआ है तथा बिना ही पत्तो के उस पर फल लगे हुए हैं—आदि—

तरुवर एक पेड बिन ठाडा, बिन फूला फल लागा ।
शाखा पत्र कछू नहि वाके, अष्ट गगन मुख बागा ॥ आदि[2]

---

१ क० ग्र०, पृष्ठ—५६ ।
२ क० ग्र०, पृष्ठ—४३४ ३५ ।

पं० पन्नालाल ने भी ऐसे वृक्ष की चर्चा की है, जिसके लिए मन को कहा गया है कि अरे मन, तू जगल-जगल मे क्या मारा मारा फिर रहा है ? हरे वृक्ष की डाल पर बैठकर भगवान का नाम ले और कुशल-याचना कर। उस वृक्ष के फल चखते ही यह काया अमर हो जाती है। आवागमन और यम का डर भी समाप्त हो जाता है तथा 'चौरासी के चक्कर से भी पीछा छूट जाता है। जिसका गुरु पूर्ण सन्यासी होता है वही (गुरु कृपा से) कलासी (शिवजी के समान) बन सकता है अर्थात इस रहस्य को सभी नही जान सकते। यथा—

रे मन पछी छोड भिरमना क्यो फिरता जगल जगल।
॥टेक॥ हरे वृक्ष की डाल बैठकर राम नाम भज माँग कुशल॥
फल चाखे फल मिल अमर बुद्ध अमरापुर काया सी हो।
रहे न आवागमन मिटे जम त्रास, न फिर चौरासी हो॥

सत कबीर एक अन्य स्थान पर भी वृक्ष के बहाने से कह रहे हैं कि—

× × × ×

सहज समाधि विरष यहु सीच्या, धरती जल हर सोष्या।
कह कबीर तास मै चेला जिनि यहु तरवर पेष्या॥[1]

पं० रूपकिशोर जी इस वृक्ष के रहस्य को इस प्रकार समझने की चेष्टा रहे हैं —

पहिचान के प्रीत परमपद की ले साध समाधी सोय रहा।
अज्ञान अचम्मा मान अधर्मी पातक अपने धोय रहा॥

× × × ×

यहाँ कबीर और पं० रूपकिशोर, दोनो का ही रहस्य सहज समाधि मे परिलक्षित हो रहा है और दोनो ने ही घोषणा की है कि इस प्रकार के तरुवर देखना (समझना) तथा इस प्रकार के छन्दो का समझना किसी साधारण व्यक्ति का कार्य नही है। इस रहस्य को कोई जानकार 'साधु ही जानता है—आदि। इस प्रकार दोनो के रहस्यवाद मे विशेष विचारणीय साम्य है।

१४ सन्त-साहित्य और लावनी-साहित्य मे 'गुरू शिष्य परम्परा' और 'रचना-सकलन'

यद्यपि 'गुरू महिमा' की दृष्टि से इसी परिच्छेद मे पृथक से विचार किया गया है तथापि यह जान लेना भी आवश्यक है कि केवल 'गुरू महिमा की दृष्टि से ही लावनी-साहित्य पर सन्त-साहित्य का प्रभाव नही पडा है अपितु 'परम्परा' की दृष्टि से भी सन्तो की गुरू-शिष्य-परम्परा को ही लावनीकारो ने बहुत अश मे

---

१ —वही— ४३५।

अपनाया है, यही कारण है कि लावनी-साहित्य मे भी 'गुरू' को विशेष महत्त्व प्राप्त है। लावनीकारा की गुरू शिष्य परम्परा वास्तव मे ही एक 'कुटुम्ब' के समान होती है। जसे—सन्ता मे एक ही शिष्य-परम्परा से सम्बधित व्यक्ति को उसी कुटुम्ब का मानकर गुरू भाई' आदि कहा जाता है, वसे ही लावनीकारो म भी उस विशेष शिष्य-परम्परा के व्यक्ति को 'गुरु भाई आदि ही माना जाता है और उस 'अखाडे के' लावनीबाज प्रत्येक सम्भव यत्न द्वारा उसे अपने दुख सुख और विजय पराजय का साथी बनाये रखते हैं।

'रचना सकलन' की दृष्टि से यह सर्वविदित है कि कबीर जसे सन्ता ने 'कागद मसि छूयो नही, कलम गही नहिं हाथ' यह कहकर स्पष्ट कर दिया था कि उनके उद्गारो को उन्होंने स्वय लिपिबद्ध नही किया था, उनके शिष्यो ने उन रचनाओ को लिपिबद्ध ही नही किया अपितु उनकी सुरक्षा का भी पूण ध्यान रक्खा। इसी प्रकार की रचना-सकलन की परम्परा लावनीकारों मे भी स्पष्ट रूप स रही है। सन्ता की भाति लावनीकारा म भी अनेक व्यक्तियो ने केवल जीवन के ही विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त की थी, किसी साधारण विद्यालय या पाठशाला म नही। परन्तु उनके शिष्या ने उनके उद्गारों को नष्ट नही होने दिया, इधर उधर घूम घूम कर और गा-गा कर उनका प्रसार प्रचार किया। यही परिपाटी लावनीकारा मे आज तक भी अविकल्प रूप से चली आ रही है। यद्यपि उत्तरकाल मे अनेक लावनीकार अच्छे पडित भी हुए हैं तथापि उनकी रचनाओ का सकलन भी परम्परानुसार उनके शिष्या प्रशिष्यो आदि द्वारा ही किया गया। अनेक शिष्यो ने तो उन सकलनो को विशेष 'निधि' समझ कर इतना छुपाकर रक्खा कि शायद ही किसी निधि को भी कही किसी ने इतना प्रच्छन्न रक्खा हो। परन्तु ऐसे भी अनेक शिष्य हुए हैं जिन्होंने उन सकलना को छुपाने की अपेक्षा प्रकाशित तक कराने की भी चेष्टा की। यह पृथक बात है कि छुपा कर रखने वालों की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रो आदि ने उन सकलनो' का प्राय 'रद्दी म बेच दिया और प्रकाशित कराने की चेष्टा करन वाले धनाभाव आदि के कारण प्राय प्रकाशित न करा सके। इस प्रकार यह 'लावनी-साहित्य अधिक प्रकाश मे न आ सका, फिर भी जहाँ तहा बिखरे रूप म अब भी 'लावनी साहित्य' प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है जिसके प्रकाशन प्रबन्ध आदि की अतीव आवश्यकता है। सन्तो के साहित्य की भाँति लावनी साहित्य के प्रकाशन आदि का प्रबन्ध भी अनेक सस्थाओ को अपने हाथ मे लेना चाहिय।

१५ सन्त साहित्य और लावनी साहित्य में आत्म-परिचय और पडितो आदि से प्रश्नोत्तर

आत्म-परिचय की दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि सन्तों म जसे अपना परिचय देने की साधारण प्रथा सी पायी जाती है वही साधारण प्रथा लवनीकारो द्वारा भी अपना ली गयी और लावनीकारो ने यह आत्म-परिचय केवल अपने तक ही सीमित

नही रखा अपितु अपने अखाडे के अन्य लावनीकारो को भी इस परिचयात्मक परिपाटी म सम्मिलित किया।

सन्त साहित्य और लावनी साहित्य से इस सम्बन्ध मे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

सन्त कबीर न अपना आत्म-परिचय देते हुए कहा कि—हम काशी मे तो प्रकट हुए हैं और रामानन्द गुरु ने हम चेतना (ज्ञान) प्रदान की है —

काशी म हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताए।

× × × ×

तू तो ब्राह्मण है और मैं काशी का जुलाहा हू,
तू ने मेरे ज्ञान को नही पहिचाना—
तू ब्राह्मण म काशी का जुलाहा, चीन्ह न मोर गियाना।

× × ×

मैने अपना समस्त जीवन शिवपुरी (काशी) म व्यतीत किया परन्तु मरते समय मैं 'मगहर' म आ गया—

"सगल जनम शिवपुरी गवाइयाँ, मरती बार मगहर उठि धाइया'।[1] आदि—

लावनी-साहित्य म भी इस प्रकार की आत्म परिचयात्मक लावनियाँ प्रचुर मात्रा म उपलब्ध हैं। लावनीकार अपना और अपने अखाड क ही एक अन्य लावनी कार का परिचय इस प्रकार द रहा है—

धरम औ रूपराम सरनाम।
कचेहरी घाट, आगरा ग्राम॥

सन्त कबीर ने तो केवल नगर का ही नाम (काशी) बताया है परन्तु लावनी कार ने तो यहाँ अपना पूण पता ही बता दिया है कि धमचन्द और रूपराम नामक लावनीकार अतीव प्रसिद्ध (सरनाम) है, जो आगरे के कचेहरी घाट नामक स्थान के निवासी हैं।

एक अन्य लावनीकार कहते हैं कि—

रामरतन और गुब्दीसिंह के कथन के अनुसार जमनासिह जी महाराज का जन्म-स्थान 'नारनौल' है और नारनौल वही स्थान है, जहा गुरु गगासिंह न अतीव सम्मान और ख्याति प्राप्ति की है।—यथा—

'वजन मे तोले जमनासिह जी, नारनौल है जिनका वतन।
वतन म चर्चे गुरु गगासिह रामरतन गुब्दी की कथन॥

---

१ क० ग्र०, पृष्ठ २।

एक अन्य लावनी के अन्तिम चौक मे लावनीकार अपने अखाडे के अनेक लावनीकारो का परिचय देते हुए कह रहा है कि हमारे मुरशद (अखाडे के उस्ताद या गुरु) सन्त जमनासिह जी थे, जिन्होंने परमधाम की प्राप्ति कर ली है और हमारे ही अखाडे म गुरु गगासिह ने अतीव ख्याति अर्जित करके अन्य देशो में भी अपने नाम की प्रसिद्धि की है। देवीदत्त और भोलू सदैव दगल म (लावनीबाजी की सभा म) विजय प्राप्त करते हैं, क्योंकि वे प्रतिवादी को ज्ञान की लगाम लगाकर अपने वश म कर लेते हैं। यथा—

मुरशद जमनासिह सन्त जिन्ह बिच धाम परम सुख धाम किया।
मशहूर हुए जुज गगासिह मुल्को मे प्रकट निज नाम किया॥
महफिल मे करे देवीदत्त फतह, दगल भोलू ने मुदाम किया।
मुनकिर मुह जोरो को रानो तले, झट ग्यान की देके लगाम किया॥

× × ×

इस प्रकार परिचयात्मक दृष्टि से सन्त साहित्य और लावनी साहित्य मे अद्भुत साम्य है।

× × ×

सन्तों ने अपनी बात की स्थापना करने के लिए अनेक स्थानो पर अन्य पडितो से प्रश्नात्मक शली को अपनाया है इसी प्रकार लावनीकारा ने भी सन्ता की इस शैली को अत्यधिक मात्रा मे अपनाया।

सन्त कबीर कहते हैं—

'पडित बाद बदन्ते झूठा।'[1]
× × ×
पाडे कौन कुमति तोहि लागी,
तू राम न जपहिं अभागी॥ टेक॥[2]
× × ×
जौ पै बीज रूप भगवाना,
तौ पडित का कथिसि गियाना॥ टेक॥[3]
× × ×

---

१ क० ग्र०—पृष्ठ ३६१।
२ क० ग्र०—पृष्ठ ३६०।
३ —वही— ३६०

पडित देखहु मन मह जानी।
कहुधो छूत कहाँ तें उपजी,
तबहिं छूत तुम मानी॥[1] —आदि

लावनीकार कहते हैं—

गुनी, एक घोडा हमने देखा, जिसका सानी नही तुरग।
चार पर छह गन हैं जिसके, बता गुनी घोडे का रग?

× × ×

गुनी, क्यों करते सोच विचार,
फूल खिल कर मुरझायेगा॥

× × ×

पाखडी पाखड छोड दे, शरत का यहाँ गाना होगा।
जमा अखाडा कविश्वरो का, वृथा न फरमाना होगा॥

× × ×

सन्त कबीर कहते हैं कि—

मस्जिद ऊपर मुल्ला पुकारे, क्या साहेब तेरा बहरा है?
चीटी के पग नेवर बाजे सो भी साहेब सुनता है॥

सन्त भरूसिंह जी भी काजी से इसी प्रकार का प्रश्न कर रहे हैं—

भला बताओ काजीजी हासिल क्या शोर मचाने म।
है क्या तुम से दूर बाग जो देते फिरो जमाने म॥

इसी प्रकार इस प्रश्नात्मक शैली को लावनीकारो से बहुत बल मिला है।

१६ सन्त साहित्य और लावनी साहित्य में—कुछ विशिष्ट प्रतीक

सन्तो ने अनेक स्थानो पर अपनी बात कहने के लिए अनेक प्रतीको का आश्रय लिया है। वस तो य प्रतीक सख्या मे बहुत हैं परन्तु कुछ विशेष स्थानो पर कुछ विशेष प्रतीको को अपनाया गया है। यथा—

सन्त कबीर ने शरीर के लिए 'चदरिया' का प्रयोग किया है—

झीनी झीनो बीनी चदरिया।'

सन्त कबीर ने वृक्ष को भी प्रतीक के रूप म ग्रहण किया है—

तरवर एक पेड बिन ठाढा, बिन फूल्या फल लागा।[2]

---

१ स० वा० पृष्ठ १५६, क्रमाक—१८।

२ क० ग्र०—पृष्ठ—४३४।

× × ×

तरुवर एक अनन्त मूरति सुरता लेहु पिछाणी।[1]

इसी प्रकार कुछ अन्य अनेक प्रतीकों के अतिरिक्त लावनीकारों ने भी कुछ विशेष प्रतीकों को अपनाया है जिनमे से प्रमुख इस प्रकार कहे जा सकते हैं—घोडा, अँगरखा, कामधेनु, गाय, वृक्ष आदि।

घोडा

'घोडा' लावनी साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखता है। इसे लावनीकारों ने मनुष्य, शरीर, विश्व आदि अनेक वस्तुओ के प्रतीक के रूप मे पृथक पृथक लिया है। इसकी चर्चा या तो प्राय प्रश्नो के रूप मे या उत्तरो के रूप मे हुई है। लावनी साहित्य म इनका अतीव विचित्रतापूण (उलटबाँसियो की भाँति) वणन किया गया है।

श्री बेगराज जालान का एक घोडा द्रष्टव्य है

वे कहते हैं कि एक घोडा ऐसा है, जिसने लाखो दगलो मे विजय प्राप्त कर ली है, उस घोडे से युद्ध करके कितने ही घोडे मात हो गए। इस दुनियाँ की सभी बातें उसके जहन मे जची हुई हैं। सात द्वीप और नौ खण्डो में उसी की धूम मची हुई है। उसकी कमर से काठी कसी हुई है। बताइए, उस पर कौन सवार होता है और यह सब माया किसकी रची हुई है—आदि आदि। —यथा—

मार दिये लाखो के दगल, तोड दिये कितनों के तग।
गये मात हो कितने घोडे, उस घोडे से लडकर जग॥
तमाम इस दुनिया की बातें जहन मे उसके जची हुई।
सात द्वीप नौ खण्ड दर्म्याने धूम उसी की मची हुई॥
तग नहीं कतग का घोडा, कमर से काठी खिची हुई।
कहो कौन होता सवार, ये किसी माया रची हुई॥—आदि

यह एक प्रश्नात्मक घोडा है, इसी प्रकार उत्तरात्मक घोडे भी होते हैं। विस्तार भय से यहाँ अधिक उदाहरण नही दिय जा रह हैं।

अँगरखा

घोडे की भाँति 'अगरखा' भी लावनी साहित्य म विशेष महत्वपूण समझा जाता है। सन्त कबीर के पास 'चदरिया' है ता लावनीकारा के पास अगरखा है। व कहते हैं कि—

विरहनगी का लिवास जेबा है गर्मी सरदी मे ये अँगरखा।
पनाह देता है रज गम से, वह दस्त गरदी मे ये अँगरखा॥ —आदि

---

१ क० प्र०—पृष्ठ ४३४।

इसी प्रकार 'कामधेनु' और 'वृक्ष' आदि को प्रतीक मानकर भी अनेक लावनिया लिखी गई हैं, जो विस्तार भय से यहाँ नही दी जा रही हैं।

वास्तव मे ही यह एक विचित्र बात है कि लावनीकारो ने इस प्रकार की छोटी-छोटी बातो से भी प्रभावित होकर तदनुसार रचनाएँ रची हैं।

१७ सन्त-साहित्य और लावनी साहित्य मे—काम क्रोध आदि त्यागन

काम क्रोध आदि मनुष्य के ऐसे दुगुण हैं जिनसे बचना बहुत कठिन है। सन्तो एव लावनीकारो ने स्थान-स्थान पर इनसे बचने का उपदेश दिया है। रदास महाराज ने कहा है कि लोग भेप (भगवें वस्त्र) तो ले लेते हैं परन्तु असली भेद तक नही पहुच पाते। अमृत तो पिया परन्तु प्रेम विपयो के विप में ही रहे। सारा जीवन काम और क्रोध मे ही गवा दिया, साधुओ के साथ बठकर कभी राम का गुण गान नही किया—आदि। यथा—

भेप लियो पै भेद न जायो।
अमृत लेइ विपय सा सायों॥
काम क्रोध मे जनम गवायो।
साधु सगति मिलि राम न गायो॥[१] —आदि

ऐसे ही व्यक्तियो को प० अम्बाप्रसाद ने भी सुन्दर ढग से उपदेश देते हुए कहा है कि अरे भाई निन्दा, चुगली और काम तथा क्रोध आदि का मन से त्यागन करके सतुगुर को पालागन कर निपट, हमने तेरे को सोन से जगा दिया है। देख, तू इस ससार से नग्न ही जाएगा तेरे साथ एक नग भी नही जायेगा, तू जोड-जोडकर यह धन क्या रख रहा है? जिस समय तुझे यमराज के गन (मृत्यु) आकर घरेंगे, उस समय तेरा सारा नखरा बिगड जायेगा—आदि। यथा—

निन्दा चुगली काम-क्रोध का कर भाई मन से त्यागन।
निपट मुझे सोते से जगाया, कर सतुगुरु को पालागन॥ —आदि

सन्त कबीर काम क्रोध आदि के विषय मे कहते हैं कि योगी वही है जो रात दिन सावधान रहता हुआ, मन मे ही खेचरी मुद्रा को धारण करता है। वह मन में ही समाधिस्थ होकर रहता है एव जप तप आदि साधना के जितने भी सोपान हैं सब की पूर्ति वही करता है। योगी का खप्पर और सीगी अनहद नाद—य सब सम्भार उनके मन म ही रहते हैं। कबीर कहते हैं कि शून्य लोक रूपी लका को वही प्राप्त कर सकता है जो काम, क्रोध आदि पाँच विकारो को नष्ट कर दे। यथा—

---

१ स० वा०—वियोगी हरि—चौथा सस्करण, सन् १९४७ पृष्ठ—१९४, क्रमाक १२।

सो जोगी जाके मन में मुद्रा,
राति दिवस ना करई निद्रा ॥
पच परजारि भसम करि भूका, कहै कबीर सोलहसि लका ॥'

सन्त कबीर की उपरोक्त उक्ति को मानो हृदय मे धारण करके ही प० अम्बा प्रसाद ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि माया, ममता, मद, मगरूरी और मनमय (काम) आदि को मार कर हम अपने मन से भगा देंगे। मन का मनियाँ और मथन की माला को हम अपने मन रूपी मन्दिर में घुमायेंगे। वह राम मेरे अन्दर ही है, अतएव उसी मे हम अपने मन को रमा लेंगे। मक्का मदीना, मन्दिर और मस्जिद सब हम अपने घट म ही मिल जायेगा। हमारे मन मे ही गगा-यमुना आदि पवित्र नदियाँ हैं, हम उन्ही मे मल मल कर स्नान कर लेंगे। यह सम्भव (मुमकिन) है कि हम अपने मन की क्रोध आदि वृत्तियो को मार मार कर इस ससार म मद कहा येंगे, आदि। यथा—

माया, ममता, मद मगरूरी, मार के मनमय भगायेंगे हम।
मन का मनियाँ, मथन की माला मन मन्दिर में घुमायेंगे हम ॥

यहा प० अम्बाप्रसाद पर सन्त साहित्य का सीधा प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। प० अम्बाप्रसाद ने केवल काम क्रोध आदि की दृष्टि से ही नही अपितु सन्त कबीर के उपरोक्त पद को इस लावनी मे अक्षरश स्वीकारोक्ति दी है। इस लावनी म एक अन्य विशेषता यह है कि इसकी प्रत्येक पक्ति म आठ आठ 'म' अवश्य आए हैं इससे लावनीकार की बुद्धि कुशलता तथा लावनी रचि का परिचय प्राप्त होता है।

सन्त कबीर कहते हैं कि योगी इस ससार म अपने ढग का एक ही होता है, उसे तीर्थ, व्रत, मले आदि से कोई प्रयोजन नही होता। उस योगी का मैं चेला बन जाऊँ जो पाँच विकारों की (काम, क्रोध आदि) सेना को नष्ट कर दे। यथा—

बाबा जोगी एक अकेला, जाकै तीर्थव्रत न मेला। ॥टेक॥
× × ×
पाच जना की जमात चलाव, तासु गुरु म चेला ॥ —आदि

सन्त कबीर की यही बात सुनकर मानो लावनीकार स्वय को सम्बोधित करक कह रहा है कि—

लखा जो चाहो तो मैं अलख हू न बद्ध त्रैगुण के जाल का हू।
लपेट माया सके न मुझ को अभूत भक्षक मैं काल का हू।
× × ×

१ क० ग्र०—पृष्ठ—४६०, पदाक—२०६।

।।शेर।। लज है लोभ की ग्रीवा प्रवल अविलोक के ममबल ।
लज है मोह मत्सर, दह सके मुभ को न क्रोधानल ॥
।।मि०।। ललच के भोगों में नभ्रमू मैं, न मीन त्रगुण के जाल का हूँ—
लपेट माया सके न मुझ को

अर्थात्—लावनीकार अपने आपको भगवान के रूप म सम्बोधित करते हुए वह रहा है कि यदि तुम मुझे देखना चाहो तो देख नही सकते क्याकि मैं 'अलख' हूँ और तीना गुणो के जाल मे आबद्ध नही हू। मुझ माया भी नही लपेट सकती क्योंकि मैं काल का भी भक्षक हूं। मेरे बल को देखकर लोभ, मोह, क्रोध आदि मेरा कुछ नही कर सकते। ये काम आदि विषय वासना मुझे प्रभावित नही कर सकते, आदि-आदि।

इस प्रकार लावनीकारा मे काम क्रोध आदि दुगुणो के त्यागन का विशेप महत्व दशनीय है।

१८ सन्त साहित्य और लावनी साहित्य में—नारी बहिष्कार

सन्ता ने जहाँ काम क्रोध आदि विकारो को साधना के लिए बाधक माना है, वहाँ नारी की चर्चा भी विशेप रूप से की है। यही बात लावनीकारा में भी दशनीय है। यद्यपि लावनी साहित्य मे नारी का सुन्दर चित्रण भी उपलब्ध है तथापि वह चित्रण कुछ मन चले उत्तरकालीन लावनीकारो की ही थाती कहा जाएगा। पूर्वकालीन लावनीकारा मे यदि ऐसा चित्रण कही है भी तो वहाँ महबूबा और दिलरबा आदि शब्दो का प्रयोग देखने म भले ही लौकिक नारी का स्वरूप प्रतीत हो परन्तु वास्तव मे वहा पर य शब्द भगवान के ही पर्यायवाची हैं। नारी के नख शिख आदि का वणन लावनीकारो ने अवश्य किया है, जिसे हम रीतिकालीन प्रभाव मान सकते हैं परन्तु सन्त प्रभाव की दृष्टि स सन्त भैरूंसिह प० शम्भुदास, प० अम्बाप्रसाद, सन्त भगवत पुरी जी, श्री वेगराज जालान, श्री बजरगलाल बगडिया, आदि अनेक लावनीकारो ने नारी को साधना क्षेत्र मे बाधक ही स्वीकार किया है।

सन्त कबीर कहते हैं कि हे मन ! तू क्या व्यथ ही भ्रमित होना फिरता है ? तू विषयानन्दो मे सलिप्त है परन्तु फिर भी तुझे सन्तोप नही है—यदि तुम विषयों के भोग और नारी के ससग का परित्याग कर दो तो वह आनन्दस्वरूप ब्रह्म सहज ही मे प्राप्त हो जाएगा, आदि आदि। यथा—

काहे रे मन दह दिसि धावै, विपिया सगि सन्तोप न पावै ॥
× × × ×
आनन्द सहत तजौ विष नारी, अब क्या झीष पतित भिखारी ॥[1]

---

१ क० ग्र०—पृष्ठ ३८६, पद—८७।

प० शम्भुदास (लावनीकार) भी यही उपदेश देते हुए कह रहे हैं कि हे मनुष्य ! बिना सत्संग अच्छी बुद्धि और पूर्ण ब्रह्म पद की प्राप्ति नही हो सकती क्योंकि यह मन रूपी भ्रमर फल फूल के बिना व्यर्थ ही भ्रम रहा है, गुरु के ज्ञान बिना मनुष्य को गति नही मिल सकती। तू दूसरो की स्त्री को देखकर आकर्षित हो रहा है और कह रहा है कि बिना द्रव्य के कोई पत ही (इज्जत) नही है। अरे दुष्ट ! तैनें ऐसे ही तीनो पन खो दिये, तू विष ही बोता रहा। तूने अमृत नही पिया, आदि। यथा—

पद पूरन ब्रह्म परम पदवी, पावे बिन सत् सग सुमत ही नही।
मन भ्रग भ्रमत फल फूल बिना, गुरु ज्ञान बिना मिले गत ही नही ॥

× × × ×

पर नार को देख लुभाय रह्यो, कहे द्रव्य बिना कुछ पत ही नही।
पन तीनों दिये शठ खोय रहा, विष बोय पिया अमृत ही नही ॥ —आदि

यही 'परनार' की बात सन्त कबीर ने भी कही है। वे कहते हैं कि जो मनुष्य पर स्त्री मे अनुरक्ति रखता है एव चोरी के धन बल पर समृद्ध होता है वह कुछ समय के लिए चाहे फल फूल ले, अन्त म उसे समूल नष्ट होना पडता है क्योंकि इन कुकृत्यो से लोक और परलोक दोना ही बिगडते हैं। यथा—

'परनारी' राता फिर, चोरी विढता खाहि।
दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जाहि ॥[१]

प० रूपकिशोर जी ने 'मृग और मीन' के युद्ध का सुन्दर रूपक बाध कर 'मृग' को एक साधारण साधक' और 'मीन' को स्त्री क रूप मे बाधक मानते हुए कहा है कि मृग और मीन म युद्ध हो रहा है क्योंकि जल का जीव जल म ही देखता है अर्थात मीन तो जल वासी है ही, यह मृग भी भव जल का वासी होन के कारण उधर ही आकर्षित होकर निहार रहा है। परन्तु यह कोई साधारण मीन नही है मृग के चाल चूक जाने की पूर्ण सम्भावना है तनिक चाल चूकी और प्राण गए, ऐसी दशा म वह भगवान का नाम पुकारता है। देखो तो सही, इस राड (स्त्री रूपी) छोटी-सी मछली ने कितना को ही सत्त से डिगा दिया। जड और जीव क्या, दिग्गज सिंह जसे अटल और अविचला को भी इसने विचलित कर दिया। जब यह सिंह (अच्छे-अच्छे साधक) पर भी गोली मार देती है तब भला बेचारे हिरन की (साधारण साधक की) क्या चले ?—जसे—

मृग मे और मीन में युद्ध मच्यो, जल म जल-जीव निहारत है।
गए चाल जो चूक तो प्राण गए तब रामहि राम पुकारत है ॥

× × × ×

---

१ —वही— पृष्ठ २०६, दोहा–३।

या तनिक सी राड मछुरिया ने, सब के सत धर्म डिगाय दिये।
जड, जीव अजीव, अटल, अविचल, दिग्गज और सिंह भगाय दिये।।

× × × ×

।।मि०।। एक हिरन बिचारे की चाले कहा, जब सिंह पे गोली मारत है
गए चाल जो चूक

यहाँ लावनीकार ने स्पष्ट ही घोषणा की है कि इस भव जल में स्त्री-रूपी मछली के समक्ष साधारण मग रूपी साधक तो ठहर ही नही सकते अपितु बडे बडे दिग्गज साधकों के मार्ग मे भी यह एक बहुत बडी बाधा है। सन्त कबीर ने भी मछली की ही उपमा देते हुए जीव के विषय म कहा है कि—ससार-जल मे लिप्त रहने वाला मछली रूपी जीव विषय वासना का आकर्षण देख कर उसमे फँस गया किन्तु उसने काल (मृत्यु रूपी जाल) का भय न जाना। आदि-आदि—यथा—

रजसि मीन देखि बहु पानी, काल-जाल की खबरि न जाणी।[1]

यहाँ प० रूपकिशोर और सन्त कबीर म (मछली की ही उपमा देकर विषय वासना की चर्चा करने में) अद्भुत साम्य है यदि साधारण अन्तर है तो यही है कि प० रूपकिशोर ने स्त्री लिंग होने के कारण मीन को स्त्री के प्रतीक के रूप मे ही रखा है और सन्त कबीर ने मीन को जल वासी और जीव को भव जल वासी मानते हुए मीन को जीव का प्रतीक मान कर चर्चा की है जिसे लावनीकार ने 'जल मे जल जीव निहारत है कह कर स्वकारोक्ति दी है।

एक अन्य लावनीकार ने सन्त कबीर की इसी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि—अरे मनुष्य, सुत, सम्पत्ति परिवार पिता माता, नारी और अन्य नेह रखने वाले लोगो का यह सब व्यवहार व्यर्थ है परन्तु इस सार को कोई निस्पृही जोगी-जन ही जान सकते हैं—जसे—

सुत, सम्पत्ति, परिवार, पिता, माता अरु मित्र नार नेही।
है मिथ्या व्यौहार सार जानें जोगी जन निस्प्रेही।।-आदि-

केवल यही नही अपितु लावनीकारो ने नारी-बहिष्कार की दृष्टि से भर्तृहरि और पिंगला आदि के उदाहरण देकर अनेक कथात्मक लावनियाँ भी रची हैं जिनसे प्रत्यक्ष ही प्रतीति होती है कि साधक के लिए 'नारी एक बहुत बडी बाधा है, एतदर्थ सन्त और लावनीकार दोनो ने ही साधना पक्ष मे नारी को एक बाधा के रूप म मान कर नारी के बहिष्कार को ही श्रेयस्कर माना है।

---

१ क० ग्र०–पृष्ठ–२८९, पद–८६।

हिन्दी लावनी-साहित्य पर अन्य हिन्दी भक्त-कवियों का प्रभाव

*

प्रेम मार्गी सूफी कवियों का लावनी-साहित्य पर प्रभाव

(मलिक मुहम्मद जायसी के सदर्भ में)

यद्यपि इसी परिच्छेद म प्रथम खड म यह स्पष्ट कर दिया गया है कि हमने इस शोध प्रबन्ध म सन्त कबीर की रचनाओ को ही प्रमुख मान कर लावनी साहित्य पर सन्त साहित्य का प्रभाव दिखाने की चेष्टा की है तथापि यह निश्चित सत्य है कि निगुण भक्ति की प्रेम मार्गी शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी, सगुण भक्ति की राम शाखा और कृष्ण शाखा के प्रमुख कवि क्रमश महात्मा तुलसीदास और सूरदास का भी साहित्य म अपना विशेष स्थान है।

यद्यपि लावनी साहित्य पर केवल सन्त साहित्य का ही नही अपितु सम्पूर्ण भक्ति साहित्य का प्रभाव अत्यधिक मात्रा म पड़ा है तथापि इन उपरोक्त अन्य कवियो को स्पशमात्र करने के विचार से एव अन्य शोधार्थियो का माग प्रशस्त करने की दृष्टि से यहाँ अतीव सक्षिप्त रूप मे अन्य भक्त कवियो के प्रभाव की चर्चा की जा रही है।

१ प्रेमाख्यान

प्रेम-मार्गी सूफी कवियों का विशाल भवन प्रेम के आधार पर ही आधारित है, सूफी साधना के अन्तगत प्रेमाख्यानो की अत्यधिक रचना हुई है। लावनी-साहित्य म भी इस प्रकार के अनेक प्रेमाख्यान दशनीय हैं।

प्रेम-मार्गी शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने तथा अन्य कवियो ने जहाँ 'पद्मावत,' 'नैनावत' आदि प्रमाख्यानों की रचना की, वहाँ लावनीकारों ने भी

'सीरी फरहाद', 'लला मजनू' किस्सा शाहजादा जाने आलम' आदि की रचना करके अपनी प्रेम भावना का परिचय दिया है। जिस प्रकार 'पद्मावत' आदि की कथाओ का विस्तारपूर्वक वणन किया गया है, उसी प्रकार लावनीकारो ने भी इस प्रकार के आख्यान अतीव विस्तृत एव रोचक ढग से लिखे हैं। इस दृष्टि से लावनी-साहित्य म प्रेमाख्याना की अत्यधिक सम्भावनाए हैं।

२ गायन कला तथा भ्रमणशीलता

प्रेम मार्गी कविया के विषय मे यह विशेष रूप से प्रसिद्ध है कि वे अच्छे गायक होते थे और स्थान स्थान पर घूम घूम कर गाते थे। जायसी के शिष्या की गायकी सुनकर अमेठी के राजा का प्रभावित होना तथा जायसी से मिलने की इच्छा प्रकट करना और उनका सम्मान करना इतिहास प्रसिद्ध घटना है। इसी प्रकार लावनीकारा मे भी प्रभावपूण गायकी एव भ्रमणशीलता के विशेष दशन होते हैं। गायन-कला की दृष्टि से आज भी लावनीबाजो मे जो आकषण है वह अयत्र नही। भ्रमणशीलता तो लावनीबाजो म सदा ही विशेष रही है। राजकीय सम्बन्धा की दृष्टि से भी प० शम्भुदास (दादरी निवासी) का जीद राज्य म विशेष सम्मान होना, काशी नरेश आदि का प० रूपकिशोर (आगरा निवासी) का शिष्य होना इस बात का स्पष्ट सकेत है कि 'जायसी' आदि की भाँति लावनीकारो का भी राज्यो मे सम्मान होता था।

३ बारहमासा और ऋतु वणन आदि

प्रेम मार्गी कवियो म ऋतु वणन तथा बारहमासा आदि के वणन की भी परम्परा रही है। श्री वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित पद्मावत' के (पृष्ठ ३४० ३७५) नागमती वियोग खड और नागमती सन्देश खड म वियोग शृगार का उत्तम वणन किया गया है। इसी 'वियोग शृगार' म पृथक् पृथक् बारहो महीनों के नाम गिना कर विरहिणी की दशा का चित्रण किया गया है। यथा—

लागेउ माह परे अब पाला।
विरहाकाल भयेउ जड काला॥ (पृ० ३५०)

× × ×

फागुन पवन झकोरे बहा, चौगुन सोउ जाइ किमि सहा॥

× × ×

चत बसन्ता होउ धमारी, मोहि लेखे ससार उजारी॥ (पृ० ३५२)

इससे आगे कवि स्वय लिखता है कि—

रोइ गवाएउ बारहमासा सहस-सहस दुख एक एक सासा॥ (पृ० ३५८)

इसी प्रकार 'बारहमासा' की भाति ही उक्त ग्रन्थ के (पृष्ठ ३३० ३४०) 'षट ऋतु वणन खण्ड' मे बसन्त, ग्रीष्म आदि ऋतुओ का भी सुन्दर वणन हुआ है।

इसी प्रकार के 'बारहमासा' और ऋतु वर्णन लावनी-साहित्य में भी उपलब्ध हैं। प० शम्भुदास (दारी निवासी) ने भी 'ऋतु वर्णन' तथा 'बारहमासा' आदि के वर्णन में सूफी कवियों की भाँति विरह का ही वर्णन किया है, वे कहते हैं कि—विरहिणी अपनी सखियों से कह रही है कि—हे सखी! देखो, वर्षा ऋतु में भी मैं विरह के वश में हूँ, मेरे पिया (पति) घर में नहीं आये। मैं अपना 'जीव-त्याग' कर दूँगी!—आषाढ़ का महीना है अन्य सब सखियाँ अपने अपने पतियों की सेज सजा कर केलि कर रही हैं परन्तु यह विरहिणी पड़ी-पड़ी अपने दुःख को रो रही है।—यथा—

वर्षा ऋतु में विरहा वश हूँ, घर आये नहीं, सखी, मेरे पिया।
तज दूँगी जिया तज दूँगी जिया, तज दूँगी जिया, तज दूँगी जिया॥
आषाढ़ समय पिया सेज सजा, रस-केलि करें सखियाँ सगरी।
दुख रोवे परी, दुख रोवे परी, दुख रोवे परी, दुख रोवे परी॥

इस लावनी के अन्तिम 'चौक' में प० शम्भुदास विरहिणी का 'कार्तिक मास' में अपने पति के साथ अतीव सुन्दरतापूर्वक मिलन कराते हैं—कार्तिक मास आ गया है, 'विरहा' उदास खड़ी हुई है तथा पति मिलन की इच्छा से व्रत नेम, भजन आदि कर रही है उस की इसी ध्यानावस्थित अवस्था में पति देव भी आ जाते हैं और यह वियोग शृंगार संयोग शृंगार में परिणत हो जाता है—यथा—

आया कार्तिक मास उदास खड़ी, पति के व्रत नेम कर थी भजन।
मिले आके सजन, मिले आके सजन, मिले आके सजन, मिले आके सजन॥ आदि

यहाँ वियोग में भी संयोग की कल्पना करना और वह भी कार्तिक मास में, लावनीकार की अपनी विशेषता है। इसी प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण भी लावनी साहित्य में उपलब्ध हो सकते हैं।

४ ककेहरा तथा नख शिख वर्णन आदि

जायसी आदि सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में 'ककेहरा' जैसी बन्दिशों को भी विशेष महत्व दिया है, जो लावनी साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

जायसी ने ककेहरे की बन्दिश में 'न' की बन्दिश इस प्रकार की है—

ना नारद तब रोइ पुकारा, एक जुलाहे सौं मैं हारा॥[१]

लावनी-साहित्य में भी इस प्रकार की बन्दिशों की न्यूनता नहीं है।—यथा—

"ना-नाम की एक लगी है रटन, रसना नामामृत चख पाए॥" आदि

---

१ जा० ग्र०—पृष्ठ—३६५।

सूफी काव्य म 'नख शिख' आदि का वणन भी विशेष रूप से उपलब्ध है। 'पद्मावत' म तो 'नख शिख खण्ड' नाम से एक खण्ड ही पृथक स दिया गया है। लावनी साहित्य मे भी इस 'नख शिख' का वणन विस्तृत एव व्यापक रूप से किया गया है।

जायसी की 'पद्मावती' तालाब क किनारे स्नान करने के लिए आई। उसने अपने केशो के बधे हुए जूडे का खालकर बिखरा दिया। रानी पद्मावती का मुख चन्द्र के समान और देह यष्टि मलयगिरि के समान थी और केश रूपी नागो ने मानो सुगन्ध के लिए उसके अग को ढक लिया था।—यथा—

> सरवर-तीर पदुमनि आई, खोंपा छोरि केश मोकराई।
> ससि मुख अग मलगिरि रानी, नागन्ह झापि ली ह अरघानी॥[1]

लावनीकार की नायिका ने भी अपने केशो की 'लट' लटकाई हुई है, वह 'लट' इतनी काली है कि 'नागिन' भी अपना 'फन' पटकने लग गई है। परन्तु उस नायिका का मुख सम्भवत चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर है क्योकि उसके द्वारा घूघट के हटाये जात ही चन्द्रमा का रथ भी स्तम्भित होकर एक तरफ ही रुक गया। —यथा—

> लगी नागिन फन पटकन अपना, लटकत जो लखी लट एक तरफ।
> पर घूघट नेक पलटते ही, रथ चन्द्र गयो डट एक तरफ॥ आदि

यहाँ विशेष दशनीय बात यह है कि—जायसी की पद्मावती ने बालो का जूडा खोलने पर नागो की उपमा प्राप्त की है परन्तु लावनीकार की नायिका की लट अभी बँधी हुई ही है, तभी नागिन ने फन पटकना आरम्भ कर दिया है, इसके अतिरिक्त पद्मावती (स्त्रीलिंग) की देह यष्टि को नागो (पुल्लिग) ने ढका है, जिससे कवि पद्मावती के सतीत्व की रक्षा नहीं कर पाया है परन्तु लावनीकार का अपनी नायिका के सतीत्व का ध्यान बराबर बना हुआ है, उसकी लट को देखकर नाग नही 'नागिन' ही अपना फन पटकती है। दूसरी पक्ति मे जायसी की पद्मावती का मुख केवल 'चन्द्रमा' के समान मात्र है जबकि लावनीकार की नायिका के मुख की सुन्दरता को देखकर चन्द्रमा स्वय स्तम्भित हो गया है। इस प्रकार लावनीकार का नख शिख वणन निश्चित रूप से अपना विशेष महत्त्व रखता है।

अन्य समानताएँ

(क) नशीली वस्तु सेवन—सूफी कवियो म नशीली वस्तुओ का भी प्रचलन था। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार—जायसी के गुरुजी स्वय अमल करते

---

१ पद्मावत—सम्पादित द्वारा—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ—६२।

थ।"[1] लावनीकारो मे भी इस प्रकार की नशीली वस्तुओ का सेवन प्रचुर मात्रा मे चलता रहा है।

(ख) ईश्वर चिन्तन—सूफी कवियो ने 'लिसा हिये पेम कर दीया' कह कर परमात्मा को प्रेमिका के रूप मे देखा है। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं कि—'ईश्वर को प्रमिका मानकर उसके लिए जीवन की आकुलता का वणन वैष्णव, सहजयान, सूफीमत या ईसाई मत सब की विशेषता है। सब धम इसमे एकमत हैं कि स्त्री से बढ़ कर स्फुट, साक्षात्, प्रेममय और मधुर प्रतीक हमारे इस लोक म पुरुष के लिए दूसरा नही है। उसी प्रतीक की व्यजना ने प्रेम माग और प्रेम-काव्य के उपकरणो का निर्माण किया।[2]

ईश्वर चिन्तन की दृष्टि से यद्यपि लावनीकारो ने ईश्वर को सन्त कबीर की भाँति, पुरुष रूप म देखने की चेष्टा की है तथापि उन्होने उसे स्त्री रूप मे भी देखा है। प्रेमिका के रूप मे ईश्वर चिन्तन भी 'लावनी साहित्य' म अत्यधिक परिमाण म प्राप्त है। एक लावनीकार अपनी दिलरुबा (प्रेमिका) से मिलने के लिए काशी और काबे तक भी गये, उन्होने अनेक प्रकार के कष्ट भी उठाये परन्तु वे उस दिलरुबा को नही पा सके।—यथा—

> गया मैं काशी में और काबे, हर एक तरह का अलम उठाया।
> सफर के चलने से तग आया, मगर न उस दिलरुबा को पाया॥ आदि

सूफी कवियो की दृष्टि मे भी वह दिव्य आत्मतत्व ही मनुष्य की प्रेमिका है फिर लावनीकार को काशी और काबे मे वह कैसे प्राप्त हो सकती थी वह तो दिव्य-आत्म भाव की समरसता है जो प्रेम की सहायता से प्रेमिका कहलाती है।

---

१ पद्मावत—पृष्ठ—३१।
२ " पृष्ठ—५१।

राम मार्गी सगुण भक्त कवियों का लावनी-साहित्य पर प्रभाव

दूसरा अध्याय

(गोस्वामी तुलसीदास के सन्दर्भ मे)

१ 'श्री राम'—अवतार के रूप मे

यह सवविदित है कि महात्मा तुलसीदास के राम अवधेश दशरथ के पुत्र होते हुए भी घट घट के वासी और 'बिनु पद चलहि सुनहि बिनु काना हैं और ऐसा होते हुए भी वे मनुष्य की भांति सुख-दुख का अनुभव करते हैं तथा भुजा उठा कर प्रण करते हैं कि—'निशिचर हीन करौ मही',—यह सब इसीलिए है कि उन्होंने नर लीला करने के लिए अवतार लिया है। गोस्वामी तुलसीदास ने अवतार का कारण भी स्पष्ट कर दिया है कि—

> असुर मारि थापहि सुरन्ह, राखहि निज श्रुति सेतु।
> जग विस्तारहि विसद जस, राम जन्म कर हेतु॥[1]

इस प्रकार तुलसी के 'राम' ने भूमि का भार उतारने के लिए अवतार लिया है, फिर भी वे अवतार लेकर भी अजन्मा और अमर अजर हैं तथा अजर अमर होकर भी अवतार लेते हैं, इसी प्रकार की विचार धारा लावनी साहित्य मे भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। 'राम' पर अनेक लावनियो की रचना हुई है, यहाँ तक कि लावनी मे सम्पूर्ण रामायण की रचना तक के भी प्रयास हुए हैं। लावनी साहित्य मे राम के अन्य विभिन्न स्वरूप भी हैं। परन्तु तुलसी का अमर अजर तथा अवतार लेने वाला 'राम' भी लावनी साहित्य म विद्यमान है।

एक लावनीकार उनके 'अवतार' की स्पष्ट घोषणा करते हुए कह रहे हैं —

> 'अवध के औतार आ रहे हैं सुनो उन्हो के ये नाम दो हैं।
> बडे लडाके अदा के बाके, लखण और श्याम राम दो हैं॥'

---

१ रा० च० मा०—पृष्ठ—१३८, दोहा—१२१,—श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार द्वारा सम्पादित पन्द्रहवां संस्करण।

एक अय लावनीकार (श्री बजरग लाल बगडिया) रावण की सभा मे 'अगद' से कहला रहे हैं कि—हम उन्ही श्री रामचन्द्र जी के दूत हैं, जो मनुष्य हैं और अपने भ्राता सहित आये हैं, जो अवधेश के पुत्र हैं और शरीर से अतीव कोमल हैं। –यथा–

हम दूत उ हीं श्रीराम के हैं, जो भ्राता दो नर जात के हैं।
सुत अवध ईश गुणधाम के हैं, बडे सु दर कोमल गात के हैं॥

परन्तु यही अवतार लेने वाले 'राम' केवल नर नही हो सकते। खर-दूषण की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण स्वय कह रहा है कि–खर-दूषण को बिना रघुवर के नर भूप के पुत्र नही मार सकते, एसा लगता है कि चराचर के नाथ ने अवतार लिया है जिनका तीर लगते ही मुझे मोक्ष प्राप्त हो जायेगी —

नर भूप के पुत्र न मार सकें, खर दूषण को बिन रघुवर के।
चर अचर के नाथ औतार लिया, तो ही मोक्ष मेरी लागत-सर के॥–आदि–

लक्ष्मण की मूर्छा पर राम रो रहे हैं परतु लावनीकार के शब्दों मे वे नर-राम नहीं हैं वे अलख अगोचर हैं जिनका विलाप सुनकर कपि, नमचर कीर आदि सभी दुखी हो गये हैं —

'अलख अगोचर का विलाप सुन विकल भए कपि, नभचर कीर॥'

इस प्रकार लावनी साहित्य मे तुलसी के राम का अच्छा चित्रण हुआ है। अनेक स्थानो पर तो लावनीकारो ने 'रामचरित मानस' के अशों का अनुवाद मात्र सा ही कर दिया है। तुलसीदास ने लिखा है—

'उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती, शिव, विरचि पूजे बहुभांती॥'[1]

लावनीकार ने लिखा है—

'नाती पुलस्त्य का उत्तम है घरियाना।
पूजे विरचि, शिव, तुमने बहुत विधाना॥

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण लावनी साहित्य म उपलब्ध हैं, जो अनुसधान का विषय हो सकते हैं।

२ शब्द प्रयोग

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी-साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास क पृष्ठ-४५७ पर तुलसीदास के शब्द प्रयोग की चर्चा करते हुए लिखा है कि—"केवल 'मानस म ही नहीं अपितु तुलसीदास ने अपने अय ग्रन्थों म भी अरबी, फारसी के अनेक शब्द बड़ी स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयुक्त किये हैं। वे अपनी रचना को जनता की वस्तु

---

१ रा० च० मा०—पृष्ठ—५४७ (गीता प्रेस गोरखपुर)

बनाना चाहते थे इसीलिए उन्होने अपने ग्रन्थो की रचना सरल भाषा मे की। उनका काव्यादश भी यही था —

> सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान ।
> सहज बयरू बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान ।।

लावनी-साहित्य के लिए भी यही बात पूणतया चरिताथ होती है, परन्तु परन्तु 'लावनी' के लिए एसा कहना अधिक युक्ति-सगत भी है क्योकि 'लावनी' तो है ही जनता की वस्तु। यही कारण है कि लावनीकारो ने उदू, फारसी, अरबी और साधारण अग्रेजी के शब्दो तक का भी प्रयोग किया है।

यद्यपि कही कहीं लावनीकारो ने अपने पाडित्य प्रदशन हेतु कठिन शब्दो का भी प्रयोग किया है तथापि वह अधिक मात्रा मे नही है। अधिक मात्रा म तो साधारण शब्दो का ही प्रयोग किया है। —यथा—

> उसे गज नहीं तो बला से तेरे कोई फज तो बाकी अदा न रहा ।
> हुए हम एक हाल हकीर तो क्या, कोई दुनिया में शाह सदा न रहा ।।

यहाँ उदू के (हाल, हकीर आदि) साधारण शब्दो का प्रयोग स्वतन्त्रतापूवक किया गया है।

३ विविध

महात्मा तुलसीदास ने राम चरित्र वणन हेतु विविध भावनाओ का द्योतन किया है जो लावनी साहित्य मे भी ज्यो का त्यो या किंचित परिवतन के साथ प्राप्त है। —यथा—

क हनुमान स्तुति

यदि तुलसीदास ने हनुमान की स्तुति म हनुमान चालीसा आदि लिखा है तो लावनीकारो ने भी हनुमान के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है और उनकी वीरता का वणन किया है। —यथा—

> सागर से अब पार हो गई, सेना श्री भगवान की है ।
> चल उठ के देखले फरक रहो ध्वजा बली हनुमान की है ।।"

× × × × ×

> वो पवन पूत बल अकूत महा सुखदाई ।
> सौ योजन का दिया लाघ सेतु जिन भाई ।। —आदि—

ख रावण मन्दोदरी सम्वाद

'राम चरित मानस मे रावण-मन्दोदरी सम्वाद की विस्तृत रूप से चर्चा हुई है। मन्दोदरी रावण को समझा रही है कि —

रामहिं सौंपि जानकी, नाइ कमल पद माथ ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन, जाइ भजिअ रघुनाथ ।।[१] —आदि—

प० शम्भुदास भी 'मन्दोदरी' से रावण को कहला रहे है कि—हे मेरे पिया, मरी बात मानो, इसमे कुछ अभिमान की बात नही है । श्रीराम चराचर के स्वामी और सीता समस्त ससार की माता है । इससे आपकी कोई हानि नही है, सीता श्रीराम को देकर उनसे जाकर मिलो, क्योकि सीता राम को प्राणों से भी प्यारी है ।
—यथा—

मान मान पिया, मान कहूँ मैं बात न कुछ अभिमान की है ।
चरा-अचर के, पिता वो, सिया माता सब जहान की है ।।
देके सिया जा मिलो पिया, नही बात ये तेरे हान की है ।
जान, जानकी, प्राण से प्यारी कृपा निधान की है ।। —आदि—

ग अगद रावण सम्वाद

तुलसीदास जी के अनुसार—बालि-तनय श्री राम के दूत के रूप मे लकाधीश के पास आया है । अगद को देखते ही रावण के सभासद् उठ खडे हुए, यह देखकर रावण के हृदय मे बडा क्रोध हुआ । जसे मतवाले हाथियो के झुण्ड म सिंह नि शक होकर चला जाता है, वैसे ही श्रीराम जी के प्रताप का हृदय मे स्मरण करके वे सभा म सिर नवा कर बैठ गये । रावण ने कहा अरे बन्दर ! तू कौन है ? अगद ने कहा, हे रावण मैं श्रीराम का दूत हू । मेरे पिता में और तुम मे मित्रता थी इसलिए मैं तुम्हारी भलाई के लिए आया हू । —आदि—यथा—

उठे सभासद कपि कहु देखी, रावण उर भा क्रोध विशेष ।
।।दो०।। जथा मत्त गज जूथ महु पचानन चलि जाइ ।
राम प्रताप सुमिरि मन, बैठ सभा सिरु नाइ ।।
कह दस कठ कवन त बन्दर, मैं रघुबीर दूत दसकन्धर ।।
मम जनकहि तोहि रही मिताई तव हित कारन आयऊँ भाई ।।[२]

यही बात लावनीकारो ने भी अनेक लावनियो मे गाई है। श्री बजरग बगडिया ने तो ज्यो का त्यो पद्यानुवाद ही कर के रख दिया है —यथा—

जब बालि-तनय चल लक बसीठो आया ।
उस समय सभा सब उठी, सनाका छाया ।।

---

१ रा० च० मा०—पृष्ठ ७४५ ।
२ —वही— पृष्ठ ७५६ ५७ ।

तब सारी सभा ने रावण को धमकाया।
फिर बैठे शूर राजा को शीष नवाया॥
सब सभा उठी लख क्रोध बदन में छाया।
तू कौन है बन्दर रावण ने फरमाया।
कह अंगद, दशानन! दूत हूँ मैं रघुराया॥१॥
था मेरे पिता का तुम से बहुत याराना।
तेरे हित कारन हुआ मेरा यहाँ आना॥—आदि—

इसी प्रकार 'सीता स्वयम्वर', मेघनाथ लक्ष्मण-सम्वाद', 'रावण-सुलोचना सम्वाद', 'रावण मारीच सम्वाद' आदि प्रसंगों से लावनी साहित्य भरपूर है।

कृष्ण-मार्गी सगुण भक्त कवियों का लावनी-साहित्य पर प्रभाव

तीसरा अध्याय

(भक्त कवि सूरदास के सन्दर्भ में)

कृष्ण मार्गी भक्त कवियों का हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है, विशेष रूप से इस आन्दोलन के अग्रणी महात्मा सूरदास का। महात्मा सूरदास ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण का यद्यपि बाल-वर्णन एवं दधि मंडित वदन वर्णन विशेष किया है तथापि सूर का कृष्ण केवल छुपकर मिट्टी खाने वाला, छीनकर और चोर कर माखन खाने वाला, गोपियों का चीर हरण करने वाला, बाल कृष्ण ही नहीं है अपितु कंस को संहारने वाला, इन्द्रकोप से व्रज की रक्षा करने वाला, द्वारिकापुरी में राज्य की स्थापना करने वाला तथा ऊधो को अपने सन्देश वाहक के रूप में भेज कर सूर से भ्रमर-गीत आदि की रचना कराने वाला भी है।

इसी प्रकार लावनी-साहित्य में भी श्रीकृष्ण को लावनीकारों ने अनेक रूपों में देखा है। किंचित स्पष्टतार्थ कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं —

१ लावनी में 'श्रीकृष्ण'—अनेक रूपों में—

कहम कमल लोचन कुमार करुणानिधि कुंज बिहारी तुम।
खल दल खंडन खडग धारी खग नाथ खरारी तुम॥
॥टेक॥ गौ पालक गोविन्द, गदाधर गोकुलेश गिरधारी तुम।
घट घट वासी घटजपति घन-आभा अघ हारी तुम॥
नित्य निरामय निर्विकार, निगति निरीह अविकारी तुम।
चमर, चक्र धर, चपल चामीकर चाव विदारी तुम॥
॥मि०॥ छलो छपाकर छटा छबीले छिद्र हरन छलकारी तुम—

॥ १ ॥

पं० रूपकिशोर ने यह उपरोक्त लावनी श्रीकृष्ण के विविध रूपों का वर्णन करते हुए इस प्रकार के सात चौकों में समाप्त की है। यहाँ पर केवल एक ही चौक प्रस्तुत किया गया है।

२ कृष्ण विरह मे गोपियो की दशा

महात्मा सूर के कृष्ण के विरह मे गोपियाँ ही नही अपितु सारे व्रज के लोग दुखी हैं—'व्रज के विरही लोग दुखारे' परन्तु मधुवन को उनके दुख से फिर भी कोई सहानुभूति नही प्रतीत होती, इसीलिए वह (मधुवन) अभी भी हरा भरा है, यही कारण है कि दुखित एव विरहणी गोपियाँ उससे (मधुवन) पूछती हैं कि—

> मधुवन ! तुम क्त रहत हरे।
> विरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े, क्यों न जरे ॥

परन्तु रूपकिशोर (लावनीकार) की गोपियाँ व्रज की कुजो से ऐसा नही पूछती क्योंकि उन्ह पहले स ही विदित है कि—श्रीकृष्ण जी के व्रज छोडकर जाते ही सभी दुखी हैं—सभी सखियाँ तडप रही हैं व्रज के बालक उनकी राह देख रहे हैं, सारी की सारी मथुरा नगरी अतीव दुखी है, सभी गोप गनो की कृष्ण के चरणो म लौ लगी हुई है। श्री श्याम की विरह-व्यथा के कारण सब कुजें सूनी पडी हैं और कृष्ण की विरह रूपी अग्नि के कारण सभी तालाब तक सूख गए (मधुवन की तो बात ही क्या है ?) हैं। यहाँ तक कि कदम कमल, किंसुक और पलास आदि भी मुरझा कर उनके माग मे पग पग पर बिखर गए हैं।—यथा—

> व्रज-तज नवलकिशोर गए इत तलफत हैं सखियाँ सगरी।
> विरह बिथा मे, विकल व्रज बाल विलोकत हैं मगरी ॥
> × × × ×
> सूनी सब व्रज कुज श्याम बिन, विरह बिथा घर घर-बगरी।
> सूखे सरवर श्याम की विरह ज्वाल मे दग दगरी ॥
> × × × ×
> ॥मि०॥ कदम, कमल, किंसुक, पलास, मुरझाय परे पग पग पगरी।
> विरह बिथा म

यहाँ स्पष्ट ही लावनीकार सूर से भी एक कदम आगे बढ गया है।

३ श्रीकृष्ण-गोपी सयोग

केवल वियोग ही नही अपितु सयोग का भी लावनीकारो ने विशेप ध्यान रखा है।

कृष्ण और राधा तथा बृज बाला (गोपी) मिलकर झूला झूल रहे हैं क्योकि श्रावण जसा पवित्र मास आरम्भ हो गया है आकाश मे बादलो की घटा छाई हुई है। छोटी छोटी बूँदें भी गिर रही हैं, निराली छटा के साथ इन्द्र धनुष भी तना हुआ है—आदि।—यथा—

कृष्ण भी है, राधा भी है, झूल रहे बन-बीच,
सग मे वृज बाला भी है।
जलद भी और घटा भी है, श्रावण पावन मास सुहावन,
आन लगा भी है ॥
बूंद भी है मेहा भी है, छटा निराली इन्द्र धनुष ले,
तना हुआ भी है ॥

एक अन्य लावनी म भी, लावनीकार (श्री बजरग लाल बगडिया) द्वारा श्रीकृष्ण--गोपियो की झूला झूलने की बात कही गई है। लावनीकार कहता है कि--कदम के वृक्षों की लताएँ झुक गई हैं, तीना प्रकार की सुगंधित हवा चलने लगी है और वृषभानु की लली (राधा) श्रीकृष्ण के साथ मिलकर हिंडोले पर झूला झूल रही है। इस झूले में रेशम की डोरी और फूलो की बेलें सजी हुई हैं। प्रेम रूपी पटरी पर मखमली झूल बिछी हुई है आदि।—यथा—

लता कदम्ब बन की झुक रही है त्रिविध सुगंधित हवा चली है।
लिपट अग श्याम सग झूले, हिंडोला वृषभान की लली है ॥
ललित है रेशम की डोर जिसमे वो बेल फूलों की नवली है।
लसे है सुचि प्रेम की वो पटरी, बिछी झूल जिसम मखमली है ॥—आदि—

इस प्रकार लावनी साहित्य मे अन्य भी अनेक 'झूला झूलने के तथा 'सयोग' आदि के उद्धरण प्राप्त हैं।

४ चीर हरण लीला

कृष्ण मार्गी भक्तो मे चीर-हरण की भी चर्चा यदा कदा सुनने मे आती है। लावनीकारो ने भी चीर हरण की अच्छी चर्चा की है।

लावनीकार के शब्दो मे एक सखी दूसरी सखी से कह रही है कि—हे आली। आज उस नट-खट (कृष्ण) ने हमसे बहुत सीना-जोरी की है उसने मन मे जरा भी डर नही माना और एकदम से हमारी सारी शान बिगाड दी। हम यमुना पर स्नान करने गई थी, तभी मोहन ने घाट पर से हमारे वस्त्र चुरा लिये और कदम के वृक्ष पर चढ गया। जब हम पानी से बाहर निकली और वस्त्र नही मिले तो हमे बडी हैरानी हुई और हम सोचने लगी कि हम सयानी (युवतियाँ) अब बिना वस्त्रा के घर कैसे जायेंगी। आदि।—यथा—

करी है नट-खट ने आज हमसे, ये सीना जोरी महान आली।
खतर न मन मे किया सबन की, बिगाडी एकदम से शान आली ॥
गई थी यमुना पे करने मज्जन, तभी आ मोहन जवार आली।
घाट से बस्तर चुरा कदम चढ, लगा वो करने मिलान आली ॥

निकल सलिल से, निहारें बाहर, न पाए पट हो विरान आली।
चलेंगी कैसे सदन को अपने वसन बिना हम सयान आली ॥—आदि—

एक सखी तो अपितु यहाँ तक कह रही है कि—हे सखी ! देखो, उधर (यमुना की ओर) न जाओ, वहाँ पर श्रीकृष्ण वंशी धारण किए 'कदम' के नीचे खड़े हैं। आदि—यथा—

मत जाओ अली, आगे बठयो छली, दब जाओगी नाजो नियम के तले।
मुख वेनु धरे घनश्याम खरे, जरा देखो अली वो कदम के तले॥

यहाँ स्पष्ट ही प्रतीति हो रही है कि मानो गोपियो ने 'चीर हरण' आदि से तग आकर एक सखी को वहाँ माग म खड़ा ही कर दिया है कि वह कृष्ण की पूरी देख भाल रखे और अपनी सखियो को सकेत देती रहे।

५ मुरली-वादन

वास्तव म कृष्ण की मुरली ने केवल गोपियाँ ही नहीं अपितु सुर नर मुनि जन, सभी मोहित कर लिये हैं, यहाँ तक कि सूर की गोपियाँ तो इस मुरली को चुरा लेने तक की भी योजना बना रही हैं—

'सखी री मुरली लीज चोर॥

क्योंकि इस मुरली के कारण ही उन्हें परेशान रहना पडता है। यह 'मुरली' स्वय तो श्रीकृष्ण की अधर सया पर सोती है और श्रीकृष्ण से अपने पाँव दबवाती है परन्तु आश्चय की बात तो यह है कि यह मुरली फिर भी श्रीकृष्ण को अच्छी लगती है —

'मुरली तऊ गोपालहिं भावति।

× × × ×

'आपुन पौढि अधर सया पर, कर पल्लव पलुटावति॥ आदि

यही कारण है कि गोपियो की विरहाग्नि इससे अधिक प्रज्वलित हो उठती है और मुरली से ईर्ष्या हो जाने के कारण वे उधर से जाना भी पसन्द नही करती। एक लावनीकार की गोपी स्पष्ट घोषणा कर रही है कि—मैं तो यमुना तट पर फिर कभी भी नही जाऊँगी, क्योंकि वहाँ पर कृष्ण बन्शी बजाता रहता है। हे सखी ! मैं उसके ननो की सनें सहन नहीं करूगी और मुरली भी तो 'विरहा' को और जगा देती है। जसे—

यमुना-तट जाऊंगी मैं ना कभी उत मोहन बेनु बजावत है।
वाके ननो की सन सहू ना सखी, मुरली विरहा को जगावत है॥ आदि

श्री बेगराज जालान के कृष्ण ऐसी बन्शी बजा रहे हैं जो सब के हृदय मे बस रही है और जिसने सभी का सवस्व मोहित कर लिया है —

श्रीकृष्ण नन्दलाल बजाई, ऐसी बंशी हस-हस री।
रही मन बस री,—सखी मन सब को ले गई सरवस री॥ आदि—

इस प्रकार की अन्य भी अनेक लावनिया प्रस्तुत की जा सकती हैं।

६ माखन चोरी

यद्यपि कुछ विद्वानो की दृष्टि मे यह सब (लीलाएँ आदि) विनोदमात्र ही हैं, फिर भी कृष्ण मार्गी भक्तो म श्रीकृष्ण की माखन चोरी का विशेष महत्त्व है। श्रीकृष्ण माखन की चोरी करते हुए ग्वाला बालो के साथ घूम रहे हैं। इधर गापियाँ भी सतर्क होने लगी हैं यहाँ तक कि कृष्ण को पकड भी लेती हैं परन्तु सूर का कृष्ण कोई साधारण बालक नही है प्रमाण रूप म मुख पर मक्खन लगा हुआ होने पर भी वह साफ निकल जाता है और कहता है कि—मा मैंने तो मक्खन नही खाया, ये सभी ग्वाल बाल मुझसे ईर्ष्या रखते हैं, इसलिए इन्होने जबरदस्ती मेरे मुख पर यह मक्खन लगा दिया है, तू ही देख, इन छोटे छोटे हाथो से मैं छीके पर ऊँचे रखा हुआ मक्खन कैसे निकाल सकता हू ?—

मया मैं नहिं माखन खायौ।
× × × ×
ग्वाल बाल सब बर परे हैं बरबस मुख लपटायो।
× × × ×
देख तुही नाहें कर अपने छीको केहि विधि पयायो॥—आदि—

लावनी-साहित्य मे भी कृष्ण की माखन चोरी प्रसिद्ध है। श्री बेगराज जालान के कृष्ण अब बडे हो गए हैं और वे चोरी करना भी जान गए हैं तथा अपने घर का माखन छोड कर अब व दूसरा के घरो का माखन उडाते हैं।—जसे—

बडे कृष्ण हो गये ये तब चोरी का करना जान गए।
अपने घर का,—छाड, पर घर का माखन खान गए॥

सूर का कृष्ण चाहे 'नाह कर अपने छीका केहि विधि पयायो' ? की घोषणा करता है परन्तु लावनीकार का कृष्ण अपनी चालाकी मे किसी भी भाति कम नही है। वह छीके पे रखे हुए मक्खन की भी युक्ति जानता है—वह पीढ़े पर पटडा और पटडे पर उखल रखता है, फिर अपने साथी को पास म खडा करके उसी के सहारे बिना किसी डर के ऊपर चढ जाता है और झटपट (शीघ्र ही) छीके से उतार कर खानेलुटाने का काय आरम्भ हो जाता है।—जसे—

छीके पे रक्खा हो कही तो उसकी वो युक्ति करें।
पीढ़े पे पटडा वो रखें, पटडे पे फिर ऊखल धरें॥
साथी को वो करके खडा, ऊपर चढें और ना डरें।
छीके से झट तारें लुटावें, एसा नित करते फिरें॥

७ होली खेलन लीला

व्रज भूमि म ही नही अपितु भारत भर में कृष्ण और गोपियो का होली खेलना अतीव प्रसिद्ध है। कृष्ण भक्त कवियो ने इसे अतीव रसीलेपन से गाया है। गोपियो के मध्य कृष्ण की दुर्गति कराने मे इन भक्त कवियो ने जिस बुद्धि-कौशल और रसिकता का चमत्कार दिखाया है, वह अपने आप मे अनूठा है, यहाँ तक कि कृष्ण की पूरी दुर्गति बना कर निकालते हुए भी कवि 'ग्वाल' की गोपियाँ कहती हैं कि 'लला फिर आइयो खेलन होरी' रीतिकाल के उत्तर कालीन कृष्ण भक्तो ने ही नही अपितु सूर ने भी गोपियों द्वारा अबीर के थाल सजवा कर उन्ह कृष्ण के साथ होली खिलाया है।

यह 'होली' का रग लावनी-साहित्य मे भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। सखियों के झुड के झुड (उनमे 'राधा' भी है) मस्त होकर घूम रहे हैं। होली खेली जा रही है और श्रीकृष्ण जी पिचकारी भर भर कर मार रहे हैं।—यथा—

> फिरे मुड सखियो का झुड म मगन ये राधा प्यारी है।
> खेलत होरी, कृष्ण भर भर मारत पिचकारी है॥

कोई सखी रग घोल रही है कोई कृष्ण पर डाल रही है और कोई कृष्ण का मुख चूम रही है, इस प्रकार सभी कृष्ण को चारो ओर से घेर रही हैं। सारे व्रज मे होली की धूम मची हुई है। आदि—

> कोई सखी रग घोल रही और कोई सखी रग गेर रही।
> कोई मुख चूमे,—कृष्ण को चारो ओर से घेर रही।।—आदि—

इसी प्रकार अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

इस प्रकार भक्ति साहित्य मे अनेक ऐसे विषय हैं, जिन्ह लावनी साहित्य म अतीव सुगमता पूवक प्राप्त किया जा सकता है और अनुसन्धान के क्षेत्र में अनूठी देन दी जा सकती है।

उपसहार

चार परिच्छेदो के अन्तगत २६ अध्यायो म विभाजित इस 'प्रबन्ध' को प्रकरणानुसार अनेक शोपको मे विभक्त किया गया है। परिच्छेदो और अध्यायो के क्रमानुसार इस विभाजन की चर्चा प्राक्कथन मे कर दी गयी है।

किसी अच्छे साहित्य मे जिन बातो की आवश्यकता होती है, वे सब लावनी-साहित्य म विद्यमान हैं, आवश्यकता तो केवल इतनी ही है कि इसे अगीकार किया जाए और विद्वान लोग इसे अपनी चर्चा का विषय बनायें।

लोक प्रियता की दृष्टि से हमने प्रथम परिच्छेद मे स्पष्ट किया है कि एक बार लावनी का दगल आरम्भ होते ही श्रोता समुदाय आत्मविभोर हो जाता है। सख्या की दृष्टि से लावनी के 'दगल' मे इतने श्रोता होते हैं कि बडे से बडा स्थान भी उनके लिए छोटा पड जाता है। यदि उस श्रोता समूह की किसी उच्च स्तरीय विशाल कवि सम्मेलन के श्रोता समूह से तुलना की जाए तो सम्भवत 'दगल के श्रोताओं की सख्या अधिक ही रहेगी।

'खग जाने खग ही की भाषा' के अनुसार सामान्य जीवन पर लावनी का प्रभाव स्वाभाविक ही है। जिस लावनी का प्रादुर्भाव सामान्य जीवन से हुआ और जिसे सामान्य लोगो ने अपनाया, भला इस लावनी का प्रभाव सामान्य जीवन पर कसे नही पडता ? 'प्रबन्ध' के प्रथम परिच्छेद मे इस पर सकेतात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। सामान्य जीवन से ही उद्भूत होने के कारण लावनी मे सामान्य जीवन को प्रभावित करने की ही नही, अपितु उसे प्रेरित करने की भी क्षमता विद्यमान है।

लावनी मे सगीतात्मकता प्रशसनीय है। 'गाने के लिए वाद्य' शीपक से प्रथम परिच्छेद म स्पष्ट किया गया है कि अनेक बार लावनीबाज केवल चग बजाकर ही अपनी सगीतात्मकता के प्रभाव से श्रोताओ को मन्त्र मुग्ध-सा कर देता है। इस सगीतात्मकता के कारण भी लावनी-साहित्य का अच्छा प्रचार हुआ है और अपनी गायकी मे अच्छा सगीत उत्पन्न करना लावनीबाज की विशेपता मानी जाती है।

जनता का सुसस्कृत बनाने मे लोक गायकों का जितना योग रहा है उतना सम्भवत उच्चकोटि के कवियो का नही रहा। यही कारण है कि विशाल नगरो म चाहे पारस्परिक जीवन अस्त व्यस्त होता जा रहा है परन्तु ग्रामीणो म जहाँ-तहाँ अब भी वही प्राचीन सस्कृति और परम्पराएँ जीवित हैं।

लावनी-साहित्य को भी लोक-साहित्य का ही एक अग माना गया है एतदथ स्वाभाविक रूप से ही इस प्रकार की लावनिया की प्राप्ति सम्भव है जिनम भारत भर की सस्कृति एव परम्पराओ के दशन होते है। इस प्रकार की लावनिया मे रीति नीति सम्बन्धी विशेष उपदेश आदि होते है। 'उपदेशात्मक लावनियो' की चर्चा भी प्रबन्ध म यथास्थान की गयी है।

लावनी भारत की प्राय समस्त भाषाओ मे प्राप्त है परन्तु हमने केवल हिन्दी की लावनिया पर ही अपनी दृष्टि रखो है। फिर भी—सस्कृत, मराठी और कन्नड आदि अन्य भाषाओ के भी कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं। ऐसा करने से हमारा मतव्य केवल इतना ही बताना है कि अन्य भाषाओ म भी लावनी उपलब्ध है।

हिन्दी क्षेत्र मे भी लावनी किसी निश्चित भाषा नियमो म बध कर चली हो, ऐसी बात नही है। जिस प्रकार सन्तो म भाषा मे एकरूपता नही रहती उसी प्रकार लावनी की भाषा भी मिलीजुली होती है। ऐसी लावनियाँ बहुत कम है जिन पर स्थानीय प्रभाव दृष्टिगोचर नही होता हो परन्तु किसी भी लौकिक विधा के लिए यह सब स्वाभाविक ही है। उर्दू फारसी के प्रभाव के कारण यद्यपि खडीबोली हिन्दी मे ही लावनियाँ अधिक रची गयी है तथापि व्रजभाषा की सहज मिठास को लावनीकार पूणतया त्याग भी नही सके हैं।

केवल गाने बजाने के सामान्य ढग तक ही 'लावनी सीमित नही है अपितु 'लडियाँ लडाना,' 'दखला देना', 'प्रश्न करना', आदि के साथ चित्र काव्य' आदि रचना तक की बुद्धि-कुशलता लावनी साहित्य मे दशनीय है। हमने इस प्रबन्ध मे यथा स्थान इस प्रकार की अनेक बातो का सोदाहरण उद्घाटन किया है। लावनी साहित्य मे लावनीकारा का यह बुद्धि चातुय यत्र-तत्र अत्यधिक मात्रा म बिखरा पडा है। 'दगल म लावनीकार की जय पराजय इस बुद्धि चातुय पर ही अधिक निभर होती है।

यद्यपि लावनी-साहित्य म अनेक प्रकार के विचारो को सजोया गया है और रीति-नीति से लेकर भक्तिपरक तथा अन्य अनेक विषयो पर लावनियो की रचना हुई है तथापि लावनी-साहित्य के समग्र विश्लेषण से ज्ञात होता है कि विशेष रूप से दो प्रकार की लावनियो की रचना अधिक हुई है। प्रथम—भक्ति परक रचनाएँ और द्वितीय—शृगार परक रचनाएँ।

भक्तिपरक रचनाओ के अन्तर्गत ऐसी अनेक रचनाएँ आयेगी जिनमे भक्ति भावना के साथ वराग्य भावना, काम क्रोध आदि का त्यागन, तथा जीवन को सुखी एव मधुर बनाने की दृष्टि स रची गयी, इसी प्रकार की अय रचनाएँ। इस प्रकार की रचनाएँ लावनी जगत के स्याति प्राप्त लावनीकारो और लावनीबाजो ने स्वय अपने मुख से गायी हैं। यही कारण था कि लावनीकार जन जीवन म इतने व्याप्त हो सके। लावनी-साहित्य म सगुण निर्गुण ज्ञान मार्गीय प्रेम मार्गीय, राम मार्गीय, कृष्ण-मार्गीय आदि सभी प्रकार की भक्तिपूर्ण लावनियाँ प्राप्त हैं। लावनीकारा ने भक्ति को अनेक रूपो म देखा है। काम क्रोध आदि का त्यागन और वैराग्य भावना की दृष्टि से लावनीकारों ने सन्त कवियो से किसी भी प्रकार से कम काय नही किया। सतो ने अपने ढग से जन जागरण किया तो लावनीकारा ने अपने ढग से जनता को अपनी ओर आकर्षित किया।

'नख शिखवणन, 'नायक नायिका भेद', 'चित्रनी-पद्मनी' आदि नारी भेद आदि विषया में उपल घ लावनिया शृगारपरक लावनिया के अतगत आयेंगी। लावनी साहित्य म इस प्रकार की लावनिया प्रचुर मात्रा मे प्राप्त हैं। यद्यपि ये लावनियाँ हमारे 'प्रब घ के मुख्य विषय के अतगत नही आती तथापि प्रकरण वशात्, रसा आदि के वणन मे या अयत्र भी कुछ उद्धरणा के रूप मे हमने शृगारपरक लावनिया की भी चर्चा की है।

शृगारपरक लावनिया को विशेष रूप से तो उदू और फारसी से प्रभावित कहा जा सकता है परतु हिदी लावनिया भी शृगार की दृष्टि से कम प्रभावशाली नही हैं। केवल यही नही राजनतिक, सामाजिक और धार्मिक आदि सभी प्रकार से लावनी साहित्य अपने आप मे पूण है और हमने यूनाधिक रूप से इन सब पर इस लघु प्रब घ मे विचार किया है।

हमारे मुख्य विषय तथा लावनी से सम्बन्धित अय अनक आवश्यक जानकारिया हमने इस 'प्रब घ मे देने की चेष्टा की है। यदि इस अध्ययन से लोक साहित्य की लोकप्रिय विधा 'लावनी साहित्य की महत्ता तथा उपादयता की ओर साहित्य के अध्येताओ का ध्यान आकृष्ट हुआ तो इस लेखक का अल्प प्रयास सफल समझा जायेगा।

परिशिष्ट

सहायक सामग्री सूची

हिन्दी

	पुस्तक	लेखक
१	अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	श्री सरयू प्रसाद अग्रवाल
२	बेला फूले आधी रात	श्री देवेन्द्र सत्यार्थी
३	गोरख बानी	श्री पीताम्बरदत्त बडथ्वाल
४	गीति काव्य	श्री रामखेलावन पाण्डेय
५	कबीर वचनावली	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय (काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन)
६	भारतेन्दु युग	श्री रामविलास शर्मा
७	भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि	श्री किशोरी लाल गुप्त
८	कविता कौमुदी (भाग १)	श्री रामनरेश त्रिपाठी
९	कविता कौमुदी (भाग २)	" "
१०	लोक साहित्य विज्ञान	डॉ० सत्येन्द्र
११	काव्य के रूप	श्री गुलाबराय
१२	हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास	"
१३	पुरुषोत्तम	श्री तुलसीराम शर्मा दिनेश
१४	तेलुगु और उसका साहित्य	श्री हनुमच्छास्त्री अयाचित'
१५	हिन्दी काव्य धारा	श्री राहुल सांकृत्यायन
१६	हिन्दी के आधुनिक कवि	श्री रवीन्द्र कुमार
१७	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	श्री रामकुमार वर्मा
१८	नाथ सम्प्रदाय	श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
१९	कबीर ग्रन्थावली (द्वि० सं०-सन् १९६५)	प्रो० पुष्पपालसिंह
२०	उत्तरी भारत की सन्त परम्परा	श्री परशुराम चतुर्वेदी

	पुस्तक	लेखक
२१	पद्मावत	श्री वासुदेव अग्रवाल
२२	वृहत् साहित्यक निबन्ध	डा० रामसागर त्रिपाठी और डा० शान्तिस्वरूप गुप्ता
२३	साहित्यिक निबन्ध	श्री राजनाथ शर्मा
२४	लावनी ब्रह्म ज्ञान	श्री काशीगिरि बनारसी
२५	स त वाणी	वियोगी हरि
२६	तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खड	—सम्पादक—प० रामचन्द्र शुक्ल, भगवान दीन, व्रजरत्नदास
२७	हिन्दी की निगुण कान्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि	डा० गोविन्द त्रिगुणायत
२८	नाथ और सन्त-साहित्य (तुलनात्मक अध्ययन)	डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय
२६	व्रज भाषा के कृष्ण भक्ति कान्य मे अभिव्यजना शिल्प	डा० सावित्री सिन्हा
३०	हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य	डा० शकरलाल यादव
३१	मथिली लोक गीता का अध्ययन	डा० तेजनारायण लाल
३२	तुलसीदास (एक समालोचनात्यक अध्ययन)	डा० माताप्रसान्द गुप्त
३३	भोजपुरी लोकगाथा	डॉ० सत्यव्रत सिन्हा
३४	हिन्दी कान्य शास्त्र का इतिहास	डा० भगीरथ मिश्र
३५	हिन्दी और तेलुगू के कृष्ण काव्या का तुलनात्मक अध्ययन	डा० एन० एस० दक्षिणामूर्ति
३६	गुलजार सखुन तुर्रा (पहला भाग)	
३७	,, , ,, (दूसरा भाग)	मुशी सुखलाल सिह शहादरे वाले
३८	,, ,, , (तीसरा भाग)	
३६	रुक्मणी मगल	प० शम्भुदास, दादरी वाले
४०	मनोहर बाग, दूसरा भाग (मरहटी तुर्रा)	मथुरा मन्त्रालय, मथुरा
४१	ख्याल रत्नावली (प्रथम भाग)	प० रूपकिशोर, आगरा
४२	ओम् तुर्रा (पहला भाग) (गुजराती भाषा म)	सुबोध विचार भडार, बोम्बे, —राणा भगवानदास ईश्वरदास,
४३	ढोल की वरील लावण्या (पहला भाग) (मरहटी भाषा मे)	जगदीश्वर बुक डिपो, माधवबाग, बम्बई ४

	पुस्तक	लेखक
४४	राजस्थान के तुर्रा कलगी	डा० महेन्द्र भानावत
४५	लावनी अर्थात् मरहटी ख्याल	काशगिरि, बनारसी
४६	लावनी कुंज (ह० लि० लावनियां)	श्री बजरंगलाल बगडिया, भिवानी
४७	लावनी पुंज प्रकाश (ह० लि० लावनियाँ)	प० अम्बा प्रसाद दादरी
४८	लावनी माला (ह० लि० लावनिया)	श्री दीनदयाल अग्रवाल, भिवानी
४९	लावनी संग्रह (ह० लि० लावनियाँ)	मा० कन्हैयालाल कालकवि, —प्राप्त—श्री बजरंगलाल गुप्त
५०	ख्याल गुलशन तुर्रा	श्री बेगराज जालान, भिवानी
५१	प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा	श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर —भारतीय विद्या-मंदिर, शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर
५२	हिन्दी काव्य शास्त्र	आचार्य शान्तिलाल बालेन्दु, —साहित्य भवन, इलाहाबाद
५३	शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त	श्री गोविन्द त्रिगुणायत —भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली
५४	हिन्दी साहित्य का इतिहास	प० रामचन्द्र शुक्ल
५५	हिन्दी काव्य शैली का विकास	डा० हरदेव बाहरी
५६	संस्कृत कोष	सर मानियर विलियम्स
५७	हेमचन्द्र शब्दानुशासन	हेमचन्द्र सूरि
५८	प्रामाणिक हिन्दी-कोष	रामचन्द्र वर्मा
५९	हिन्दी साहित्य-कोष, भाग १ (पारिभाषिक शब्दावली)	वाराणसी ज्ञान मंडल द्वारा प्रकाशित
६०	श्री गग्रड अय कोष (कन्नड भाषा म)	श्री शिवराम कारथ
६१	संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर	नागरी प्रचारिणी सभा काशी(५वां संस्करण)
६२	नालन्दा विशाल शब्द-सागर	” ”
६३	संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी	श्री वामनशिवराम आपटे
६४	अवधी कोष	रामाज्ञा द्विवेदी
६५	लोक साहित्य	झवेरचन्द मेघाणी
६६	भारतीय लोक साहित्य	डा० श्याम परमार

	पुस्तक	लेखक
६७	पुरातत्व निबन्धावली	श्री राहुल सांस्कृत्यायन
६८	हरियाना के लोकगीत	एस० एस० रन्धावा और देवीन्द्र प्रभाकर
६९	कुरु प्रदेश के लोकगीत	गणेशदत्त गौड़
७०	हिन्दी लोकगीत	रामकिशोर श्रीवास्तव
७१	उर्दू साहित्य परिचय	हरिशंकर शर्मा
७२	राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा	मोतीलाल मेनारिया
७३	घाघ और भड्डरी की कहावतें	श्रीकृष्ण शुक्ल
७४	हिन्दी काव्य धारा	राहुल सांस्कृत्यायन
७५	विसलदेव रासो	नरपति नाल्ह
७६	हिन्दी के मुसलमान कवि	अखौरी गंगा प्रसाद
७७	लोक साहित्य की भूमिका	डा० कृष्णदेव उपाध्याय
७८	आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास	डा० श्रीकृष्णलाल
७९	एकान्तवासी योगी	श्रीधर पाठक
८०	प्रचारक हिन्दी शब्दकोष	प० लालधर त्रिपाठी प्रवासी
८१	भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोष	श्री आर० सी० पाठक
८२	मदुराई-तमिल पेररादि (तमिल शब्दकोष)	गोपालकृष्ण कौन
८३	महाकवि सूरदास	आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी
८४	तुलसी और उनका काव्य	रामनरेश त्रिपाठी
८५	सूर की काव्य-कला	मनमोहन गौतम
८६	ग्राम साहित्य की रूपरेखा	रामनरेश त्रिपाठी
८७	लोकगीत	श्री रणजीत राव मेहता
८८	भक्तमाल	नाभादास
८९	मध्यकालीन धर्म साधना	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
९०	सूरदास	प० रामचन्द्र शुक्ल
९१	कबीर की विचारधारा	श्री गोविन्द त्रिगुणायत
९२	कबीर	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
९३	सन्त कबीर	डॉ० रामकुमार वर्मा
९४	कबीर साहित्य की परख	प० परशुराम चतुर्वेदी
९५	गुरु ग्रन्थ साहिब	भाई सोहनसिंह

पुस्तक	लेखक
९६ हस्त लिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (सन् १९००—१९५५—प्रथम खण्ड)	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
९७ कबीर और जायसी का रहस्यवाद	गोविन्द त्रिगुणायत
९८ भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ (१९५५)	प० परशुराम चतुर्वेदी
९९ जायसी ग्रन्थावली	श्री वासुदेव शरण अग्रवाल
१०० रामचरितमानस (पन्द्रहवाँ सस्करण)	श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार द्वारा सम्पादित
१०१, 'हिन्दी तथा कन्नड साहित्यों की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन' (आरम्भ से सन् १९०० ई० तक)—(टंकित शोध प्रबन्ध)	डा० एम० एस० कृष्णमूर्ति

सस्कृत

१ ऋग्वेद
२ अथर्ववेद
३ यजुर्वेद
४ शतपथ ब्राह्मण
५ एतरेय ब्राह्मण
६ निरुक्त
७ रघुवंश

अंग्रेजी

1 Kittle s Cannad a English Dictionary
 Edition 1894
2 Carnataca & English Dictionary — William Reeve
 Edition 1832
3 Bhargava s Standard Illustrated Dictionary — R C Pathak
4 The Modern Encyclopaedia for children
5 Routledge s Universal Encyclopaedia
6 The Great Encyclopaedia of Universal knowledge
7 The Golden Home and High School Encyclopaedia —Volume—7
8 Orient Pearls—Shrimati Shobhana Devi

पुस्तक	लेखक

9 Folklore of the Telugus—Shri G R Subrahmia Pantalu
10 Folk Songs of Southern India —C I Cover
11 *Old Ballad—(Frank Sidgvick)*
12 The Oxford Book of Ballads (foreword) —Arthor Quillar Couch
13 *English and Scotish Popular Ballads (Foreword)* —Prof —Karces
14 The English Ballads (Foreword) (Robert Craves)
15 *The Legends of Panjab (Tample)*
16 Standard Dictionary of Folklore Mythology and Legends (Funks & Wagnalls)
17 Hindi Folk Songs —(A C C heriff
18 Dictionary Eng —Sanskrit (William Morrier)
19 An Introduction to Mythology —(Lavis Spence)
20 'Psychology and Folklore —(R R Marett)
21 Brahmanism & Hinduism— —Monier William
22 Vashnavism, Shaivism & Minor Religious Systems —Dr Bhandarkar
23 Out lines of Hinduism —T M P Mahadevan
24 Archaeological Survey of India (New Series) North Western Provinces Part 2

पत्र पत्रिकाएँ

१	मानसी	मानस हिन्दी परिषद् —स्नातकोत्तर हिन्दी-अध्ययन तथा अनुसंधान विभाग मानस गंगोत्री, मसूर—६ (मसूर विश्वविद्यालय)
३	शोध पत्रिका	साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर
३	साहित्यालोक	६/१६७ डा० रांगेय राघव मार्ग (बाग मुजफ्फर खां) आगरा २ (उ० प्र०)
४	आज की आवाज हिन्दी दैनिक	आगरा
५	हिन्दी स्मारिका (शोध पत्रिका)	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
६	नागरी प्रचारिणी पत्रिका (शोध पत्रिका)	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
७	हिन्दुस्तानी (शोध-पत्रिका)	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
८	सरस्वती	हीरक जयन्ती अंक, (सन् १६०० ५६ तथा अन्य अंक)

९	हिंदी साप्ताहिक धर्मयुग	टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई
१०	उत्थान कन्नड मासिक	बंगलूर

कुछ विशेष व्यक्तिगत पत्र

१	श्री माताप्रसाद गुप्त	कें० एम० मुंशी इंस्टीटयूट आफ हिंदी स्टडीज, आगरा
२	डा० उदयनारायण तिवारी	जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर
३	डा० शंकरलाल यादव	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
४	बा० रायकृष्णदास	भारत कला भवन, बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी, बनारस ५
५	श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वाणी वितान भवन, ब्रह्मनाल, वाराणसी १
६	श्री अगरचंद नाहटा	नाहटों की गुवाड़, बीकानेर (राजस्थान)
७	श्री वीरेंद्र श्रीवास्तव	भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)
८	साहित्य सम्मेलन प्रयाग	इलाहाबाद
९	हिंदुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद	इलाहाबाद
१०	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	वाराणसी
११	श्री प्रभुदयाल यादव (एक वयोवृद्ध ख्यातिप्राप्त लावनीकार)	उड़िया मुहल्ला, जबलपुर (मध्य प्रदेश)
१२	श्री दीनदयाल अग्रवाल (एक ख्याति प्राप्त लावनीकार)	अम्बिका पुर (मध्य प्रदेश)
१४	डायरेक्टर ब्रिटिश म्यूजियम,	ग्रामव्यल रोड, लंदन, एस० डब्लू ७

कुछ विशेष भेंट वार्ताएँ

१	श्री मैथिलीशरण जी गुप्त (उनके नई दिल्ली आवास काल में)	
२	बा० रायकृष्णदासजी (श्री मथिलीशरण गुप्त के स्थान पर ही)	बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी
३	श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वाराणसी
४	श्री वीरेंद्र श्रीवास्तव	भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
५	श्री आर० के० मुदलियार	करनाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़
६	श्री किसनलाल छकड़ा (एक वयोवृद्ध लावनीकार)	बिचला बाजार, भिवानी (अखाड़ा आगरा)
७	श्री आसाराम (एक वयोवृद्ध लावनीकार)	बिचला बाजार, भिवानी (अखाड़ा श्री नत्थासिंह)

८	पं० सीताराम शर्मा (एक वयोवृद्ध शास्त्री लावनीकार)	(अखाड़ा दादरी)
९	श्री दीनदयाल अग्रवाल (एक ख्याति प्राप्त लावनीकार)	अम्बिकापुर (मध्यप्रदेश) (अखाड़ा नारनौल)
१०	श्री किशोरीलाल केसर (एक ख्याति प्राप्त लावनीकार)	स्वराज्य कटली भिवानी (अखाड़ा-श्री उमरावसिंह)
११	श्री मघराज शर्मा और उनके भ्राता गण आदि ख्यातिप्राप्त लावनीकार पं० रूपकिशोर के पौत्र)	सीटी रलवे स्टेशन, आगरा (अखाड़ा आगरा)
१२	श्री ताराचन्द जैन टोपियो वाले (वयोवृद्ध लावनीकार)	आगरा (अखाड़ा-आगरा)
१३	श्री सी० सुब्बण्ण (कन्नड़ के वयो वृद्ध लावनीकार)	श्री हरिदासर लावनी संघ (रजिस्टड) बेंगलूर